डा॰ लक्ष्मीनारायण लाल

पारसी-हिन्दी रंगमंच

पारसी-हिन्दी रंगमंच

पारसी-हिन्दी रंगमंच

डा॰ लक्ष्मीनारा

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली

शिक्षा एवं समाज कल्याण मंत्रालय, भारत
प्रकाशकों की योजना के अंतर्गत प्रकाशित
: डॉ० रामकुमार वर्मा

ओं के कानी राइट लेखक के अधीन है।

संस्करण 1971 ... नाम
CII (Essay) by Dr. Lakshmi Narain Lal
Rs. 20.00

दो शब्द

हिन्दी के विकास और प्रसार के लिए शिक्षा एवं समाज कल्याण मंत्रालय के तत्वावधान में पुस्तकों के प्रकाशन की विभिन्न योजनाएं कार्यान्वित की जा रही हैं। हिन्दी में अभी ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में पर्याप्त साहित्य उपलब्ध नहीं है, इसलिए इस साहित्य के प्रकाशन को विशेष प्रोत्साहन दिया जा रहा है। यह तो आवश्यक है ही कि ऐसी पुस्तकें उच्च कोटि की हों, किन्तु यह भी जरूरी है कि वे अधिक महंगी न हों ताकि सामान्य हिन्दी पाठक उन्हें खरीदकर पढ़ सकें। इन उद्देश्यों को सामने रखते हुए जो योजनाएं बनाई गई हैं, उनमें से एक योजना प्रकाशकों के सहयोग से पुस्तकें प्रकाशित करने की है। इस योजना के अधीन भारत सरकार प्रकाशित पुस्तकों की निश्चित संख्या में प्रतियां खरीद कर उन्हें गद्दर पहुंचाती है।

प्रस्तुत पुस्तक इसी योजना के अन्तर्गत प्रकाशित की जा रही है। इसके कापी राइट इत्यादि की व्यवस्था प्रकाशक ने स्वयं की है तथा इसमें शिक्षा-मंत्रालय द्वारा स्वीकृत शब्दावली का प्रयोग किया गया है।

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में लगभग काफी शताब्दी तक समस्त उत्तर भारतीय जनता की उत्कंठा, आकांक्षा और चेतना को अभिव्यक्ति देने तथा उसे सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक जागरण को नये करनेवाले पारसी थिएटर के अनेक नामों से प्रचलित हिन्दी-उर्दू तथा अन्य उत्तर भारतीय भाषाओं के रंगमंच के विकास का इस पुस्तक में समग्र चित्र है। प्रचलित नाटक-परम्परा के ह्रास और चलचित्र के आरम्भ ने पूर्व इस पारसी रंगमंच का बोलबाला रहा है। किसी समय भारतीय जनमानस को पूर्णतः प्रभावित करनेवाले इस नाटक के हर पक्ष पर विस्तृत कार्य हुआ है, इस तथ्य का मूल्यांकन यहां किया गया है जो अपने आपमें रोचक और मनोरंजक है।

हमें विश्वास है कि शासन और प्रकाशकों के सहयोग से प्रकाशित साहित्य हिन्दी को समृद्ध बनाने में सहायक सिद्ध होगा और साथ ही इसके द्वारा ज्ञान-विज्ञान से संबंधित अधिकाधिक पुस्तकें हिन्दी के पाठकों को उपलब्ध हो सकेंगी।

आशा है, यह योजना सभी क्षेत्रों में उत्तरोत्तर लोकप्रिय होगी।

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय
(शिक्षा एवं समाज कल्याण मंत्रालय)
भारत सरकार, नई दिल्ली

(गोपाल शर्मा)
निदेशक

"बह गई रंग में सारा मतलब।
खूब समझा मैं तुम्हारा मतलब ॥"

(अमीर-हिंदी : आधा दृश्य)

"ग़ाफ़िल पड़े सोते हैं जो, बैठे हुए जो मौन हैं,
समझें तो दिल में जान लें भारत निवासी कौन है।
जो वीर थे कायर बने ज्ञानी बने अज्ञान हैं,
यह भी तो हैं भूले हुए किस बाप की संतान हैं।
जो कह दिया करके रहें ये बात के धनी बनो,
छोड़ो नहीं निज धर्म को प्राणों पै चाहे आ बनो।"

(महाभारत : नारायणप्रसाद 'बेताब')

"सुन्दर गले की तान एक सुनहरी सीढ़ी है। उस सीढ़ी से स्वर्ग का सुख धरती पर उतरकर सोए हुए हृदय को चुम्बन लेकर जगा देता है।"

(भीष्म प्रतिज्ञा : आगा हश्र)

"यह चाहे तो ब्रह्माण्ड को, पलकों में समेट दें।
राजा को रंक, रंक को राजा में बदल दें॥
दुनियां 'मिट्टी है इनकी, यह दुनियां की जान है।
जीवन है चंदमा के, तो सूरज के प्रान हैं॥"

(ईश्वर-भक्ति : राधेश्याम)

प्रस्तुति

आज से करीब अठारह-बीस वर्ष पहले जब मैं हिन्दी रंगमंच जगत् में आया और आने जब सम्पूर्ण रूप से उससे प्रतिबद्ध हुआ तो नाट्य-लेखन, प्रस्तुतीकरण, अभिनय, निर्देशन, रंगालोचन, रसग्रहण (दर्शक) इन सभी धरातलों पर मैंने बड़ी तीव्रता से अनुभव किया कि हमारे आधुनिक या वर्तमान रंगमंच में हमारी निजी परम्परा के बीच कोई बहुत बड़ा व्यवधान है। स्पष्ट शब्दों में मुझे अनुभूत हुआ कि आधुनिक हिन्दी रंगमंच के पीछे प्रायः सात वर्षों तक जिस पारसी थियेटर का जीवन जिया जा चुका है, वह न तो आधुनिक रंगमंच की परम्परा के रूप में काम दे रहा है और न ही उससे हमारा साक्षात्कार हो रहा है। वह महज हमारे बीच एक ठंडे अंतराल के रूप में उपस्थित है।

इस अनुभव को लेकर जब मैं समस्त भारत के कोनों से, अहिन्दी क्षेत्रों के रंगकर्मियों से मिला और उनसे इस विषय में विचारों के आदान-प्रदान हुए तो किसी न किसी स्तर से सभी ने यह स्वीकार किया कि किसी भी रंगमंच के लिए उसका निकटतम अतीत और उसकी समझ तथा उससे साक्षात्कार बहुत ही अनिवार्य है। बिना निकट अतीत को जाने और बिना उसके हर पहलू से साक्षात्कार किए अपनी वर्तमान की रचना नहीं की जा सकती।

इसी तत्व ने वास्तव में मुझे 'पारसी थियेटर' (थेटर, या थियेटर इसी नाम से जाना-पुकारा जाता था) के बीच 'पारसी-हिन्दी थियेटर' के प्रति आकर्षित किया और जैसे-जैसे मैं इस अध्ययन में लगा तो मैं उसकी विशालता, इसके फैलाव और उसकी गहराई से आश्चर्यचकित रह गया। पारसी नाटकों को प्रकाशित-अप्रकाशित रूप में पाना और उन्हें पढ़ना इतना आसान न था। इससे अधिक संकट यह था कि उस काल के महत्वपूर्ण रंगकर्मी अब इस संसार में नहीं हैं। वे ऐसे रंगकर्मी थे जिन्होंने न अपने बारे में कुछ लिखा और न उनके बारे में किसी ने कुछ लिखा। वे लोग बस अपनी कला में मस्त थे और पूरा पारसी थियेटर-काल उनके पास विसोहित था। हिन्दी में तो इस प्रसंग में कुछ भी संतोषपूर्ण सामग्री मुझे नहीं मिली। कुछ सामग्री उर्दू, गुजराती में अवश्य मिली; लेकिन उस रंगमंच के अध्ययन की सामग्री को रंगमंचीय मुहावरे में प्रकट करना और उस पूरी सामग्री को नाट्य-शिल्प की भाषा और परिप्रेक्ष्य में अभिव्यक्त होना, ऐसा मुझे कहीं नहीं मिला।

पिछले जितने वर्षों के अध्ययन और परिश्रम के बाद जो कुछ मैंने पाया उसे विस्तृत रूप में प्रस्तुत कर रहा हूँ। इस 'थियेटर' को इसकी समग्रता में

देखने और उसके नाट्य-तत्त्वों को पहचानने का यह एक संकल्प फल है। मैंने अनुभव किया कि यह प्रवृत्ति हमारी परम्परा की है और यह पारसी नाट्य-परम्परा जिस तरह से भी शुरू हुई हो, अपना प्रभाव हमारी किसी परम्परा और हमारी संस्कृति की है। इसका प्रभाव अब तक हमारी हिन्दी फिल्मों पर है, हमारे साहित्यिक नाटकों और हमारे रंगमंच पर है और यही वह सूत्र है जिसे जाने बिना हम आज आधुनिक रंगमंच की कल्पना नहीं कर सकते।

मैंने अनायास और स्वभावतः अपनी अध्ययन का आधार पारसी थियेटर की नाट्य-कृतियों को ही बनाया। अनेकानेक नाटकों को पढ़कर उनकी भीतर से हम रंगमंच को उनकी किसी अवस्था और समयता में पकड़ने का प्रयत्न किया है। विभिन्न कालाओं की, विशेषतः हिन्दी क्षेत्र की, उन दिनों की पत्र-पत्रिकाओं की फाइलों से भी पर्याप्त सहायता मिली है। इसके अतिरिक्त मुझे पारसी थियेटर के दिनों के कुछ निर्देशक, अभिनेता, संगीत-निर्देशक और रंग-कर्मियों से भी मिलने का सौभाग्य हुआ। इनमें सर्वश्री पृथ्वीराज कपूर, मास्टर छैलाराम, मास्टर फतेलाल, श्री मुल्कराज भाखड़ी, श्री मुल्कराज आनंद का विशेष रूप से कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने तरह तरह से मेरी सहायता की है। साथ ही इस विषय पर फारसी और हिन्दी तथा अन्य भाषाओं के जितने विद्वान और अध्येता रहे हैं, उनसे भी मैंने परामर्श लिया है। श्री भारतभूषण, कवि और श्री आनन्दसिंह सेठी के प्रति आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने इसकी पाण्डुलिपि टंकित करने में मेरी मदद की है।

पारसी-हिन्दी थियेटर का यह अध्ययन मेरे लिए इतना महत्त्वपूर्ण और साथ ही भारतकर था कि अब मैं इसके द्वारा उस काल के लेखकों और कलाकारों तथा उस विशाल दर्शक समाज को याद करता हूँ तो मेरा मन कृतज्ञता से भर जाता है। अपनी अनेक सीमाओं के बावजूद, आशा है हिन्दी रंगमंच और इसकी नाट्य-परम्परा को समझने में यह कार्य मदद देगा। और नाटकों को इसमें हिन्दी रंगमंच और इसकी गतिशील परम्परा के प्रति एक नई समझ और दृष्टि मिलेगी।

9 मई, 1973
नई दिल्ली

— लक्ष्मीनारायण लाल

पहला अध्याय —पार
पारसी थियेटर
परम्परा में —
दूसरा अध्याय रंगम
पृष्ठभूमि राज
नवोत्थानकाल—
स्थिति—38।
तीसरा अध्याय— पार
राजस्थान का थि
रंगमंच—56।
चौथा अध्याय—नाट
साहित्य
प्रथम चरण (उ
— 1[illegible], तृतीय च
काल) 1[illegible], न
नाट्य-लेखकों की
— 1[illegible] प्रौढ़ता
साधन —7[illegible], रंग
उद्देश्य और साध
पांचवां अध्याय— नाट
कथावस्तु और च
प्रस्तुति—8[illegible], रं
— 8[illegible], संवाद
छन्द 97, तुकां
राधेश्याम का ना
विधान —10[illegible], अ
रंग-व्यापार और
विधान के कुछ त
छठा अध्याय —पारसी
निर्देशन—1[illegible]

अनुक्रम

पहला अध्याय —पारसी थियेटर की मूल प्रकृति और उसका रंगमंच 17

पारसी थियेटर की संज्ञा—17, पारसी-हिन्दी रंगमंच—21, हिन्दी परम्परा में —25, इस रंगमंच का नया स्वरूप —26।

दूसरा अध्याय —रंगभूमि : पारसी थियेटर क्या था ? 31

रंगभूमि— राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक—31, इंग्लैंड का नवोत्थानकाल —35, थियेटर : एक पूरक मंच —36, हिन्दी रंग-स्थिति—38।

तीसरा अध्याय— पारसी-हिन्दी रंगमंच : प्रकृति और मर्यादा 40

राधेश्याम का योग—42, 'इंद्रसभा' की भूमिका —53, अगा हश्र का स्थान—56।

चौथा अध्याय—नाटक कम्पनियाँ, रंगमंच के विभिन्न चरण और नाट्य-साहित्य 60

प्रथम चरण (उद्भव-काल) —60, द्वितीय चरण (विकास-काल) —61, तृतीय चरण (उत्कर्ष-काल)—62, चतुर्थ चरण (उत्तर-काल) —63, नाट्य-साहित्य—65, प्रतिनिधि नाटककार —65, नाट्य-लेखन की परिस्थितियाँ और उद्देश्य—66, पौराणिक नाटक —68, पौराणिक नाटक के कथानक—69, नाट्य-उद्देश्य और नाटक —72, रोमांटी नाटक —73, कथावस्तु-विधान —74, नाटक : उद्देश्य और नाटक —74, यथार्थवादी नाटक—77।

पाँचवाँ अध्याय— नाटक का रचना-विधान 78

कथावस्तु और चरित्र-विधान —79, अंक और दृश्य —85, प्रवेश और प्रस्थान—88, रंगकार्य और व्यवहार—89, अभिनय और दृश्यत्व —89, संवाद और वाचिक-आंगिक अभिनय —91, भाषा—96, छन्द— 97, हमारी धारा पुराण और पुनरुत्थान की : इंद्रसभा और राधेश्याम का नाट्य— 98, कथा और चरित्र-विधान— 98, रंगमंच-विधान —100, अंक और दृश्य—101, अन्त और उपसंहार— —103, रंग-व्यापार और अभिनय—103, भाषा-संवाद —104, प्रस्तुतीकरण विधान के कुछ तथ्य—106, संगीत और नृत्य 108।

छठा अध्याय—पारसी रंगमंच के आधारभूत तत्त्व 110

निर्देशन— 112, निर्देशक : सर्वव्यापी व्यक्ति —113, कुछ प्रसिद्ध

अनुक्रम

पहला अध्याय —पारसी थियेटर की मूल प्रकृति और उसका रंगमंच 17

पारसी थियेटर की संज्ञा—17, पारसी-हिन्दी रंगमंच—21, विदेशी परम्परा में —25, इस रंगमंच का नया स्वरूप —26।

दूसरा अध्याय —रंगभूमि : पारसी थियेटर क्या था ? 31

रंगभूमि— राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक—31, डेमुस्ली नरोत्थानकाल —35, थियेटर : एक पूरक मंच —36, विदेशी रंग-स्थिति—38।

तीसरा अध्याय— पारसी-हिन्दी रंगमंच : प्रकृति और मर्यादा 40

राधेश्याम का योग—42, 'इन्द्र' की भूमिका —53, अन्य दृश्य का स्थान—56।

चौथा अध्याय—नाटक कम्पनियाँ, रंगमंच के विभिन्न चरण और नाट्य-साहित्य 60

प्रथम चरण (उद्भव-काल) —60, द्वितीय चरण (विकास-काल) —61, तृतीय चरण (उत्कर्ष-काल)—62, चतुर्थ चरण (उत्तर-काल) —63, नाट्य-साहित्य—65, प्रतिनिधि नाटककार —65, नाट्य-लेखन की परिस्थितियाँ और उद्देश्य—66, पौराणिक नाटक —68, पौराणिक नाटक के कथानक—69, नाट्य-उद्देश्य और साधन —72, रोमांसी नाटक —73, कथावस्तु-विधान —74, नाटक : उद्देश्य और साधन —74, यथार्थवादी नाटक—77।

पाँचवाँ अध्याय— नाटक का रचना-विधान 78

कथावस्तु और चरित्र-विधान —79, अंक और दृश्य —85, प्रवेश और प्रस्थान—88, रंगकार्य और व्यवहार—89, अभिनय और दृश्यत्व —90, संवाद और वाचिक-आंगिक अभिनय —91, भाषा—96, छन्द —97, इन्द्र की धारा पुराण और पुनरुत्थान की : इन्द्र और राधेश्याम का नाट्य— 98, कथा और चरित्र-विधान —98, रंगमंच-विधान —100, अंक और दृश्य—101, अन्त और उपसंहार—103, रंगव्यापार और अभिनय—103, भाषा-संवाद —104, प्रस्तुतीकरण विधान के कुछ तथ्य —106, संगीत और नृत्य —108।

छठा अध्याय—पारसी रंगमंच के आधारभूत तत्त्व 110

निर्देशन— 112, निर्देशक : सर्वव्यापी व्यक्ति —113, कुछ प्रसिद्ध

निर्देशक —115, रिहर्सल—116, रिहर्सल की प्रक्रिया—116 ।

सातवां अध्याय अभिनय 119

1. अभिनेता : मूलतत्त्व—120, 2. भाव-विविधता—121, 3. वाक्-अभिनय—124, 4 अंग अभिनय—126, 5. गति और संकेतों —131, प्रसिद्ध अभिनेता —134, प्रसिद्ध हास्य-अभिनेता—134, प्रसिद्ध अभिनेत्रियां—134 ।

आठवां अध्याय—संगीत और नृत्य-परम्परा और प्रकृति 138

मंच पर संगीत की प्रकृति—141, प्रभाव—145, गीतों का संगीत —145, रंग —145, लावनी गायन—146, पारसी थियेटर के संगीत में विविध प्रयोग—147, शुद्ध शास्त्रीय—148, शुद्ध लोक के प्रयोग —149, विदेशी प्रभाव—149, उर्दू संगीत—150, राजस्थानी —150, पंजाबी—151, बंगाली —151, उत्तर प्रदेशीय—151, पारसी थियेटर में गीत, गानों तथा नृत्य के प्रकार—151, वंदना, मंगलाचरण, सलाम और हमदो—153, चरित्र-गान और नृत्य —156, गम्भीर 'बम्बमोर' के गान और नृत्य—159, बम्बमोर के कामिक गाने और नृत्य —160, एकल नृत्य (गोकुल दास) और समूह-नृत्य तथा गाने—162, कड़ीवाली या डेढ़ लड़ने के गाने और नृत्य —164, उपदेश और संदेश के गाने—165, नृत्य-पक्ष के कुछ विशिष्ट आयाम —166, पहली किस्म के रूप हैं—166, और दूसरी किस्म के रूप हैं—167, संगीत-नृत्य का रंगमंचीय महत्त्व —169, शास्त्रीय बोलों पर नृत्य —169, अंग्रेजी बोलों और धुनों पर नृत्य —170, कुछ प्रसिद्ध गायक-गायिकाएं, नर्तक और नर्तकियां —171, संगीत निर्देशक—171 ।

नवां अध्याय —पारसी थियेटर-काल का हिन्दी नाटक और रंगमंच 173

अन्य नाटककार —180 ।

परिशिष्ट —1

कुछ नाटकों के सारांश 189

परिशिष्ट—2

प्रचार और विज्ञापन 209

परिशिष्ट —3

सहायक पत्र-पत्रिकाएं, तथा पुस्तकें 211

—110 ।
119
—121, 3. बाकू-
ति और संस्कार
अभिनेता- 134,
138
नौटंकी का संगीत
विशेषज्ञ के संगीत
ड़ लोक में प्रयोग
130, राजस्थानी
प्रदेशों —151,
—151 वंदना,
और नृत्य —150,
स्वरों के मानिक
) और नाटुक-नृत्य
और नाच 154,
छ विशेष आकर्षक
मनी किस्म के रूप
, शास्त्रीय बोलों
नृत्य—170, कुछ
ों—171, संगीत
और रंगमंच 173
199
209
211

पारसी-हिन्दी रंगमंच

1

पारसी थियेटर की मूल प्रकृति और उसका रंग-सत्य

पारसी रंगमंच या थियेटर अथवा पारसी नाटक एक व्यापक शब्द है। अपनी ऐतिहासिकता में यह रंगमंच एक तरह से भारतीय रंगमंच था और उसका नाट्य-लेखन समूचे भारतीय स्तर पर फैला था। इसलिए इसके अंतर्गत कई भाषाओं का रंगमंच शामिल हो जाता है। उन सभी भाषाओं और क्षेत्रों में से हिन्दी, गुजराती, उर्दू, मराठी, बंगला आदि भाषाओं का रंगमंच और नाट्य-लेखन विशेष रूप से प्रकट होता है। इसकी व्यापकता में यदि हम जाएं तो जब हम पारसी रंगमंच या थियेटर कहते हैं तो इसमें एक साथ पारसी-हिन्दी, पारसी-गुजराती, पारसी-उर्दू, पारसी-मराठी और बंगला रंगमंचों का समवेत अर्थबोध होता है।

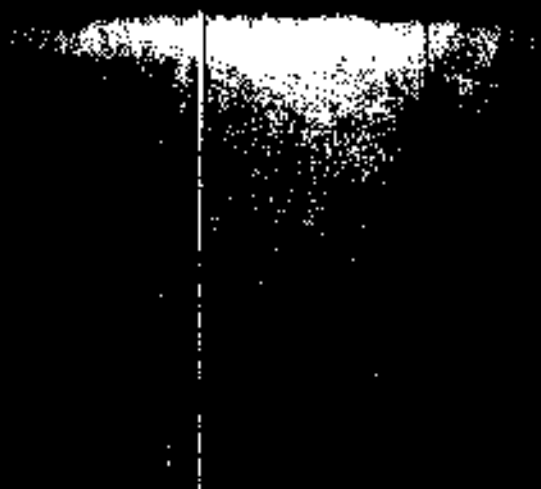

अन्य सब भाषाओं की अपेक्षा सबसे अधिक पारसी नाट्य-लेखन और उसका रंगमंच-प्रदर्शन हिन्दी भाषा में ही हुआ है। इसलिए प्रस्तुत ग्रंथ में हिन्दी भाषा, हिन्दी-क्षेत्र और हिन्दी-संस्कृति के संदर्भ में उस पारसी-हिन्दी रंगमंच और नाटक कहना ही अधिक युक्तिसंगत है। इस पारसी-हिन्दी रंगमंच का प्रारंभिक ऐतिहासिक छोर है सन् 1874 में आगरा में गोपीचंद से हुआ और उसका अन्त व्यावसायिक रूप से 1940 के आसपास हुआ। यद्यपि इस रंगमंच की परम्परा 1969 तक जीवित रही, जबकि पारसी-हिन्दी रंगमंच का एकमात्र अवशेष कलकत्ता का एलफिंस्टन थियेटर भी बन्द हो गया। लेकिन दूसरी ओर पारसी थियेटर का गुजराती रंगमंच, मराठी रंगमंच, मारवाड़ी भाषा रंगमंच विभिन्न रूपों में आज भी बम्बई और अन्य शहरों में जीवित है।

व्यावसायिक आगमन और अव्यावसायिक हिन्दी रंगमंच के उदय के पारसी-हिन्दी का व्यावसायिक रंगमंच बीसवीं सदी के तीसरे-चौथे दशक में निश्चय ही वह न रहा जो बीसवीं सदी के प्रथम, द्वितीय और तृतीय दशक में था। किन्तु इस रंगमंच का इतिहास साक्षी है कि बम्बई से लेकर कलकत्ता तक और गमरन इस्लाम मानते थे—सारे सभ्य देश में व्यापक यह रंगमंच चौथे दशक के बाद भी किसी न किसी रूप में जीवित बना रहा : जिस जहांआरा फरदून का डॉइयन आरिस्ट्रम एसोसिएशन, कलकत्ता (1936 या इससे पूर्व), पारिजात-लाल पारसाली की शाहजहां थियेट्रिकल कम्पनी, कलकत्ता (1938), नरसी थियेट्रिकल कम्पनी, कानपुर (1941), पटाक्र अल्फ्रेड, बम्बई (1942), न्यू बालीवाला ड्रामेटिक्स, बम्बई, मोहन नाटक मंडली, दिल्ली (1945), हिन्दुस्तानी थियेटर्स, कलकत्ता (1946), आल इंडिया थियेट्रिकल कम्पनी, कराची (1946 या इसके आसपास), 'मिनर्वा थियेटर' कलकत्ता (1945), पारसाली मित्र मंडल, बम्बई (1947-48), पलाश थियेटर्स, मूनलाइट थियेटर्स, कलकत्ता (1949) तथा भारतीय नाट्य निकेतन, बम्बई (1949 या पूर्व) इस ध्रुव सत्य के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि पारसी-हिन्दी रंगमंच केवल चालीस वर्ष का ही नहीं, लगभग एक शताब्दी का इतिहास अपने गर्भ में छिपाए हुए है। उसमें से अनेक संस्थाएं तो कुछ ही वर्षों के भीतर समाप्त हो गईं, किन्तु मूनलाइट थियेटर्स सन् 1969 के प्रारम्भ तक चलता रहा।

'ओरिजिन आफ दि मराठी थियेटर', 'थियेटर इन महाराष्ट्र', तथा बम्बई में लिखित पारसी थियेटर से सम्बन्धित अनेक पुस्तकों तथा 'बम्बई हाइमस' पत्र के अध्ययन से यह बार-बार पता चलता है कि पारसी थियेटर का सूत्रपात उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यद्यपि बम्बई शहर से हुआ तथापि इसकी बुनियाद हिन्दी-क्षेत्र में ही रही और जब बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में पारसी थियेटर का केन्द्रबिन्दु बम्बई से हटकर कलकत्ता शहर में आया तो हिन्दी-क्षेत्र को समूचा प्रतिनिधित्व मिल गया।

पारसी थियेटर के प्रतिनिधि नाटककार आगा हश्र काश्मीरी के जीवन-

बात से यह स्पष्ट है कि जब आगा हश्र बम्बई में रहकर उर्दू भाषा में नाटक लिख रहे थे तब उन्हें उस नाटककार का दर्जा नहीं मिल सका जो बम्बई से कलकत्ता में आकर और हिन्दी भाषा और उसकी संस्कृति के माध्यम से अपनी नाट्य-रचना शुरू करने पर उन्हें मिला।

पारसी थियेटर के तीसरे बड़े नाटककार नारायणप्रसाद 'बेताब', आगा हश्र काश्मीरी और राधेश्याम कथावाचक विशुद्ध रूप से हिन्दी-क्षेत्र की ही उपज थे। काश्मीर से आगा हश्र के पिता कश्मीरी आगा सन् 1865 में शालों का धन्धा लेकर बनारस आए थे। शालों का वह व्यापारी घर न बनारस में ही बस गया। 3 अप्रैल, 1879 को इसी व्यापारी के घर सैयद मुहम्मदशाह आगा का जन्म हुआ। बचपन में उन्होंने घर पर और फिर अठारह वर्ष की अवस्था में बनारस के प्रसिद्ध जगन्नाथप्रसाद स्कूल में शिक्षा पाई। सन् 1895 में बम्बई की अल्फ्रेड कम्पनी में अपना हेर फेर जमाया था। उस समय अल्फ्रेड के नाम से बनारस, इलाहाबाद, कानपुर, पटना, मेरठ, दिल्ली आदि हिन्दी नगरों में जादू फैल जाता था। उस समय के नाटककार थे—अहसन लखनवी। उन्होंने नाटक 'चन्द्रावली' के आधार पर मोहम्मदशाह के 'आगाजी महबूब' की रचना की, जिस अल्फ्रेड कम्पनी ने यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि "हम हिन्दी संस्कृति का नाटक हिन्दुस्तानी जबान में चाहिए।"

आगा हश्र के नाट्य-लेखन के तीन चरण थे। उनका पहला चरण (1910-1913) था—जब उन्होंने 'नफीस खून', 'पीरे-हरम' और 'शहीदे-नाज' नाटकों में अंग्रेजी के प्रसिद्ध नाटक कमश, 'पिन्स लियर', 'रिचार्ड तृतीय' और 'मेजर फार केज' के आधार पर हिन्दुस्तानी रूपान्तरण किया था। दूसरे दौर अर्थात् 1910 से 1916 तक के बीच इन्होंने ऐसे नाटक लिखे जिनमें हिन्दी और उर्दू-संस्कृति की मिली-जुली कला थी। इसके उदाहरण हैं—'खाबे-हस्ती', 'खूबसूरत बला', 'सिल्वर किंग', 'पहली की रात', 'सूरदास', 'बनदेवी', 'शामे-जवानी' और 'खुदाखुदा'। लेकिन आगा हश्र के सांस्कृतिक नाटक काल का तीसरा और महत्त्वपूर्ण दौर तब शुरू हुआ जब 1913 में कलकत्ता के पारसी नाटक घर 'मुरा जिसका नाम था 'जे० एन० मदन थियेटर', सन् 1924 तक दिल्ली, मेरठ, बनारस, इलाहाबाद, जयपुर जैसे नगरों में नारायणप्रसाद 'बेताब' और राधेश्याम कथावाचक के हिन्दी नाटक पारसी कम्पनियाँ खेलने लग गई थीं। यह वह काल था जब आर्यसमाज और स्वतंत्रता-संग्राम की स्वर्णिम वेला में भारतीय संस्कृति, उसकी गौरव-गाथा और इस देश के महापुरुषों के चरित्रों की चारों तरफ धूम मची हुई थी। व्यावसायिक पारसी लोग इन कम्पनियों के मालिक हुआ करते थे और उनके ही कारण जनता में इन थियेटरों को 'पारसी थियेटर' कहा जाने लगा था। इन लोगों ने यह भी साफ समझ था कि जनता, चाहे हिन्दू हो या मुस्लिम या सिख या पारसी, चाहे गाँव के लोग हों चाहे कस्बे के या शहर के, सभी लोग भारतीय संस्कृति के महान

पत्नियों और उनकी शौर्यगाथा, प्रेम और बलिदान की ही कथाओं को देखना चाहते हैं तथा ऐसे ही नाटकों के प्रदर्शनों से थियेटर हाल खचाखच भरा जा सकता है।

कलकत्ता आकर आगा हश्र का वही बनारसी रूप पहली बार उभरा। नाटककार ने देखा कि कलकत्ता में पारसी थियेटर वाली उर्दू नहीं चलने की। उसने यह भी देखा कि राधेश्याम और 'बेताब' के नाटक बंगाल में लोकप्रिय हो रहे हैं। अब वे उर्दू में लगभग पन्द्रह नाटक लिखने के बाद कलकत्ता आकर हिन्दी में 'वतनदेवी' ('भारत रमणी' नाम से भी), 'मथुर मुरली', 'भारतीय वीर', 'श्रवणकुमार', 'धर्मी बालक', 'प्रेमी बालक' जैसे नाटक लिखने लगे। ये सब नाटक मेरठ थियेटर के लिए प्रस्तुत किए गए थे। आगा हश्र के भतीजे-सम्बन्धी पत्रिकार का रहस्य कलकत्ता निवासी श्री प्रेमशंकर जी (जनाब फिदा हुसैन) से भी स्पष्ट हुआ। मूनलाइट कम्पनी, कलकत्ता के प्रधान निर्देशक श्री प्रेमशंकर नरगी उन नाटक-अभ्यासियों में हैं, जिनके सम्बन्ध में पण्डित रूपेणामजी ने लिखा था कि 'जिसने नरगी मेहता का पार्ट करके इतनी शोहरत हासिल की कि लोग उसका नाम लेने लगे 'फिदा हुसैन नरगी'" और लिखा कि "'मणिकी हूर' की सफलता के फिदा हुसैन का काम सर्वप्रशंसनीय रहा। गौरतलब बात-फिर उसने जो दासों की 'बन्दमोर' की है, वह परिमाण के लिहाज से भी उपादेय रही है।"

"प्रेमशंकरजी ने इन पंक्तियों के लेखक को बतलाया कि आगा हश्र साहब की लोकप्रियता सर्वसाधारण बहुत थी और वे इसे दुनिया की आला किताबों में ऊंचा दर्जा देते थे। स्पष्ट है कि जनसाधारण की पृष्ठभूमि और बनारस के वातावरण के कारण आगा हश्र के लिखाव में पौराणिक कहानियों का होता नहीं था। उर्दू का 'रुस्तम व सोहराब' और हिन्दी का 'मीरा-बलवाह' आगा हश्र के नाटकों में सबसे अधिक लोकप्रिय थे।"[1]

पारसी थियेटर की संज्ञा

हम पहले कह चुके हैं कि 'पारसी थियेटर' यह संज्ञा अन्वर्थक रूप से सही सटीक नहीं है। लेकिन दरअसल यह संज्ञा उस विशाल रंगमंच के अनन्य भारतीय दर्शक समाज को ही रूढ़ सहज संज्ञा है, इसका मात्र कारण यह था कि थियेटर कम्पनियों के मालिक प्रायः पारसी लोग ही हुआ करते थे। दूसरी ओर 'पारसी थियेटर' को संज्ञा में प्रायः अंग्रेजी कम्पनियों के अनुकरण भी दिखाई देते थे। स्पष्टतः प्रायः सभी पारसी नाटक कम्पनियां अंग्रेजी नामों के ही तर्ज पर चलती थीं जैसे अल्फ्रेड थियेटर, कोरेन्थियन थियेटर, न्यू थियेट्रिकल कम्पनी आदि। यह सच है कि पारसी नाटक मंडलियों के नामकरण प्रारम्भ में अंग्रेजी

1. रंगमंच, रविवार 27 नवम्बर, 1966 को प्रकाशित। आलेख मुख्यतः से लेखा लिखागए तक : मुहम्मदगढ़ आगा हश्र काश्मीरी, हश्रगाथा

में अथवा अंग्रेजी नाम पर किए गए। लेकिन बाद में धीरे-धीरे इन कम्पनियों के नामकरण के लिए भारतीयता के बोध से भी आकृष्ट हुए। उदाहरण के लिए आप बम्बई अथवा 'आर्य कलकत्ता' अर्थात् 'बम्बई की', 'कलकत्ता की' के स्थानीय रूप से इसकी ओर ध्यान दिया गया। लेकिन यदि हम बम्बई और कलकत्ता की सभी नाटक कम्पनियों के नाम-रूप देखें तो और हिन्दी-क्षेत्र के विभिन्न नगरों की कम्पनियों के नाम देखें, जैसे—सूर विजय नाटक समाज, शाहूल भारत मंडली थियेटर; रामदास नाटक मंडली, लक्ष्मी थियेटर कम्पनी, हिन्दुस्तान थियेटर, विनता थियेटर, मंजार थियेटर, बुलाखाद थियेटर, शाहजहां थियेट्रिकल कम्पनी, स्वराज अल्फ्रेड थियेटर, मोहन नाटक मंडली, मदनमोहन थियेटर तो कहना है कि ये नाटक कम्पनियां और उनके नाम विशुद्ध रूप में भारतीय विद्वों से ही उपजे हैं और इनके व्यवसाय में हिन्दी-क्षेत्र की अधिक रुचि है।

यह भी विचारणीय है कि नाटक कम्पनियों के नाम से किसी प्रादेशिक या क्षेत्रीय बोध नहीं था। ये नाम नाटक-व्यवसायिकता के स्तर पर थे। पर यदि हम इन कम्पनियों से खेले गए नाटकों और उनके प्रदर्शनों की प्रकृति और उनके सारे स्वरूप का अध्ययन करें तो प्रकट है कि ये कम्पनियां अंग्रेजी कम्पनियों के अनुकरण या प्रभाव से उत्पन्न नहीं हुई।

वेस्टन-युग (1880-1915) के हिन्दी नाटकों का विश्लेषण करने पर अंग्रेजी के शास्त्रीय नाटकों, मराठी, गुजराती और उर्दू नाटकों के साथ इनमें पारसी नाटकों की छाप भी दिखाई पड़ती है। इस युग के नाटकों की नाट्य-पद्धति में एक ओर गद्य-प्रधान भाषा, संस्कृत में मंगलाचरण, प्रस्तावना आदि, मराठी के संगीत नाटकों एवं लोकनाटकों से गीति-तत्त्व और रागबद्ध संगीत, पारसी-गुजराती और उर्दू नाटक से कॉमेडी, 'कॉमिक' या हास्य-प्रधान कथा में नये कथानक, संवाद आदि की रूढ़िबद्धता, और उर्दू नाटकों से उनकी विलास शैली-वाली आई। रंग-व्यवहार (कैनारिज़्म) भी इस युग के हिन्दी नाटकों पर पारसी गुजराती और पारसी उर्दू नाटकों से प्रभावित हुए, जो कुछ हद तक अंग्रेजी अभिनय-पद्धति एवं व्यवहार से प्रभावित थे। रंग-व्यवहार का बहुत कुछ विकास इतनेतर इस युग की मांग के अनुरूप हुआ। बुद्ध उच्चारण, संवादों की धीर-गंभीर स्वर में योजना, अभिनय की कृत्रिम पहचान, प्रकाश-व्यवस्था के अपर्याप्त होने के कारण हाथ-पैरों की क्रिया द्वारा ही विविध प्रकार के भावों का प्रकटीकरण, पुतला द्वारा ही स्त्रियों का अभिनय आदि पारसी रंगमंच की अपनी विशेषताएं हैं।

पारसी-हिन्दी रंगमंच

इस अंश में हम यह देखेंगे कि हिन्दी भाषा और उसकी परम्परा

1. नाटक, भाग 4, अंक 15-16, पृष्ठ 32

के संदर्भ में पारसी रंगमंच के अन्तर्गत कितना अधिक कार्य हुआ और कितना अधिक और विपुल नाट्य लेखन हुआ ; साथ ही हम यह भी देखेंगे कि भारतीय संस्कृति का नाट्य-परम्परा के अवशेष के रूप में ही सही, इन नाटकों की प्रकृति और इनकी नाट्य-पद्धति, इनके अंक-विधान, दृश्य-विधान विशेषतः मंचसज्जाकरण-व्यवस्था में किस प्रकार समन्वय हुआ। साथ ही किस धरातल से इन नाटककारों और निर्देशकों ने हिन्दू-संस्कृति और उनके आदर्श तत्त्वों को अपने ढंग से इस रंगमंच में समाहित किया। अतः हिन्दी के और हिन्दी की संस्कृति के विशेष संदर्भ में इसे पारसी हिन्दी-रंगमंच कहना अधिक युक्ति-संगत है।

हमारे अब तक इस विशाल रंगमंच-संसार को अवाहिलिक नाटकों इसकी उपेक्षा ही नहीं की, बल्कि इस समूची रंग-विधि को हमने अहिन्दी समझकर दूर अपने से बाहर फेंक दिया। हम तब अध्याय में यह देखेंगे कि इस रंगमंच ने किस प्रकार हिन्दी के साहित्यिक नाटकों को भी कितनी गहराई और व्यापकता से अनुशासित और प्रभावित किया।

इस नाट्य लेखन के अन्तर्गत जितने राष्ट्रीय गौरव-सम्बन्धी नाटकों का सृजन हुआ है और यह सारा लेखन और प्रदर्शन अन्तर्राष्ट्रीय रूप से हमारी अपनी परम्परा से भी जुड़ा हुआ है। यानी हम देखेंगे कि किस तरह संस्कृत, मध्ययुगीन भाषा नाटक और लोक-रंगमंच की विशेषताएँ भी इस रंगमंच में समाहित हुई थीं।

हम पारसी-हिन्दी नाटकों में एक प्रमुख विशेषता यह देखते हैं कि प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण नाटकों में वीरता के साथ शृंगारपरक का संयोग हुआ है। पर क्या यह परंपरा हमारे संस्कृत नाटकों, मध्ययुगीन भाषा नाटकों और हमारे लोक-रंगमंच में नहीं रही है?

संस्कृत नाटकों के वीरत्व-कथन में केवल राजाओं तथा राजाओं के वीरत्व-गान के लिए नाटक लिखे जाते थे, सो भी पूरे सफल नहीं हैं। नाटकों में वीरत्व के प्रसंग अलग होते थे। 'अभिज्ञानशाकुन्तल', 'उत्तररामचरितम्', 'मुद्राराक्षस', 'मालती-माधव', इन सभी नाटकों में शृंगार के अतिरिक्त एक ओर से दूसरा स्वतंत्र कहानी चलती है। इस युग के नाटककारों का यह विशेषता—शृंगार के प्रसंग के बीच वीरता का आह्वान संस्कृत नाटकों के बाद भी भाषा नाटक लिखे गए, उनमें भी अपनाई गई। जैसे गोकुल माथुर और गोपाल जी की एकल प्रायोग भाषा नाटक संग्रह में अनेक ऐसे नाटक हैं जिनमें शृंगार-विलास के बीच राष्ट्रप्रेम की अनेक दुहाई चलती है और सहसा नाटक के वातावरण को बदल दिया जाता है।

[illegible] के नाटक 'पाञ्चजन्य हरण' (रचना-काल [illegible]) में कृष्ण और [illegible] के बीच युद्ध का आह्वान इसका उदाहरण है। इसके अतिरिक्त [illegible] नहीं आये और अन्दिग जातियों की सन्तानों का संयोग हुआ, वहाँ ऐसे

नाटक रंगमंच पर
लेकिन न तो संस्कृत
सम्बन्धी तथा देशभ

यह समूचा हि
था, जब यह देश अ
इस देश का जन मान
आपको एक पहाड़ म
और रंगमंच इन दो
प्राचीन संस्कृति की
युद्ध में आर्यसमाज,
उत्साह दिया, नहीं
नाट्य-साहित्य में अ

उन्नीसवीं सदी
को प्रभावित किया
समाज में [illegible]
इस एकसूत्रता का
विदेशी समाज के
विकसित और सभ्य
आगे चाहे वह भार
प्रसाद 'आजिर' अ
हो और चाहे आगा
की जो भारतीयों
लिए अपना हाथ
संस्कृति की कथा
संस्कृति के वीर
लिखा [illegible]
वह अपने ढंग से
भाव का विरोध
फैलने की थी
समाजसुधार की
प्रताप', 'लैलीमजनू'
पुत्र' आदि नाटक

दरअसल यह
कई आयाम हैं

नाटक रंगमंच पर खेलाये गए, जिनमें शौर्य और संघर्ष की प्रधानता थी। लेकिन न तो संस्कृत गौरव-कालीन नाटक, न ये भाषा नाटक वस्तुतः राष्ट्र गौरव-सम्बन्धी तथा देशभक्ति से प्रेरित नाटक कहे जा सकते हैं।[11]

यह समूचा हिन्दी नाट्य-लेखन और उसका प्रदर्शन भारतवर्ष में तब हुआ था, जब यह देश अंग्रेजों का गुलाम था और अंग्रेजों से स्वतन्त्र होने के लिए इस देश का जन-मानस विदेशी हुकूमत से संघर्षरत था और साथ ही वह अपने-आपको एक महान संस्कृति और सभ्यता का प्रतीक मानता था। अतः साहित्यिक और रंगमंच उन दोनों स्तरों से कलाकारों और लेखकों ने यह संघर्ष अपनी प्राचीन संस्कृति की महानता और श्रेष्ठता के आधार पर छेड़ा था। इस युद्ध में आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज, तिलक, गोखले, गांधी आदि ने जो बल और उत्साह दिया, वही हिन्दू अथवा मुस्लिम संस्कृति के माध्यम से इस विशाल नाटक साहित्य में अभिव्यक्त है।

गंगा-यमुनी नदी के रूपक से ही अंग्रेजी राज्य ने जहां देश की विचारधारा को प्रभावित किया वहां इस दूसरी वस्तु की भारतीय एवं सुरक्षा का भी उसके समान ने जन्म हुआ, जो शायद भारतवर्ष में पहले पूर्व उस रूप में नहीं था। इस एकरूपता का कारण यह था कि पहली बार भारतीय समाज को एक ऐसे विदेशी समाज के संपर्क और संघर्ष में आना पड़ा जो अपने को हमसे अधिक विकसित और श्रेष्ठ समझता था। इसीलिए इन्हीं दोनों शताब्दी के दरम्यान में आने वाले वह भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हों, जयशंकर प्रसाद हों, लक्ष्मीनारायण मिश्र हों, चाहे राधेश्याम कथावाचक हों और चाहे आगा हश्र काश्मीरी हों, इन सभी लेखकों ने ऐसे नाटकों की रचना की जो भारतवर्ष की प्राचीन गरिमा और गौरव को प्रदर्शित करते थे। इसके लिए आगा हश्र ने विशेषकर 'रुस्तम व सोहराब' नाटक के माध्यम से मुस्लिम संस्कृति की कथा लेकर यही कार्य किया जो राधेश्याम कथावाचक ने हिन्दू-संस्कृति से वीर अभिमन्यु की कथा लेकर और 'सावित्री' के माध्यम से सत्य कथा लेकर किया। इन नाटककारों ने लेखकों का यह विशेष प्रयत्न रहा है कि उनके यह प्रयास हमें अपनी संस्कृति के लड़ रहे थे और दूसरी ओर यह दीनता के भाव का विरोध कर रहे थे जो स्वभावतः गिरती दशा के नीचे दुनी। उसके फैलने को थी। विश्वनाथप्रसाद 'सावित्री' मिश्र, और राधेश्याम के नाटकों के समानान्तर ही भारतेन्दु और जयशंकर प्रसाद के नाटकों में 'चन्द्रावली' 'पाखण्ड-विडम्बन', 'भारत-दुर्दशा', 'नीलदेवी', 'अन्धेर नगरी', 'भारत-दुर्दशा', 'अजातशत्रु', 'चन्द्रगुप्त' आदि नाटक भी लिखे गए।

इसमें यह तथ्य है कि ऐसी राष्ट्रवादी विचारधारा की अभिव्यक्ति भी जिनके पीछे आधार थे। यदि एक ओर भारतेन्दु, जयशंकर प्रसाद आदि नाटककारों

1. साप्ताहिक हिन्दुस्तान, [illegible], 1972 से साभार। [illegible] जगदीशचन्द्र माथुर

में प्रकट हो रहा था, तो दूसरा पारसी रंगमंच के हिन्दी नाटककारों में अभिव्यक्त हो रहा था। तीसरी ओर एक दूसरे रूप में यह परंपरा रंगमंच पर प्रतिबिम्बित हुई। बंगला के प्रसिद्ध नाटककार दीनबंधु मित्र ने 'नील दर्पण' नामक नाटक में अंग्रेज नीलहों के अत्याचारों का मार्मिक चित्रण हृदयग्राही कथानक में किया। बिल्कुल इसी तरह जैसे पारसी-हिन्दी नाटक लिखे जाते थे। इन नाटकों ने तभी उभरी भारत के मंच पर मनमानी किया की। इस तरह डॉ० एम० राय के बंगला नाटक और उनके हिन्दी अनुवाद 'आहुती', 'किसान-पतन' आदि नाटकों ने भी एक नई प्रभावोत्पादकता इस क्षेत्र में जोड़ दी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बलाद, डी० एम० राय आदि यद्यपि राष्ट्रीयता के उस पहलू को दीनबंधु मित्र जैसी कटु दृष्टि से नहीं देख सके, फिर भी उनके सभी नाटक किसी न किसी रूप में इस राष्ट्रीय आधार को ही व्यक्त कर रहे थे, ठीक इसी तरह जैसे पारसी रंगमंच के हिन्दी नाटककार अपने को व्यावसायिकता के भीतर से अपनी रचनाओं में राष्ट्रीय चेतना और समाज-सुधार की भावनाओं से ओतप्रोत थे।

यहाँ यह उल्लेख है कि जिन शख्सीयतों की कथाएं और चरित्र तत्कालीन साहित्यिक हिन्दी नाटकों में उभरी और दूसरी ओर पारसी रंगमंच की हिन्दी नाटक शैलियों में प्रकट हुए, उन दोनों में यह एक समानता देखी जा सकती है कि राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण की भावना इनमें अप्रत्यक्ष रूप में व्यक्त हुई है। इसके कई कारण थे। प्रथम तो यह कि स्वामी दयानन्द के प्रभाव से आर्य-समाज ने हिन्दुत्व की भावना को इस प्रकार उत्तेजित किया था कि नाटककार महान चरित्रों और शख्सीयतों की तलाश में उस पुराण और इतिहास-युग की ओर गए, जब देवताओं और हिन्दू राजाओं ने राक्षसों और यवन आक्रमणकारियों से लोहा लिया था।

"पुनरुत्थानी आदर्श पर प्रवृत्त राष्ट्रीयता की लहरें, वह उस्मे एक कृत्रिम प्रकार की राष्ट्रीयता को जन्म दिया क्योंकि देश के वास्तविक वैरी तो न विदेशी अधिपति थे जो सात समुन्दर पार से आए थे।

"अब कथ्य एक नई भावना का आश्रय लेने लगा, किन्तु बहुतेरे साहित्यिक नाटकों के माध्यम से नहीं, वरन् लोकप्रिय तथाकथित पारसी नाटकों द्वारा। पारसी रंगमंच ने पौराणिक नाटकों के नायकों और प्रतिनायकों के रूप में विशेषतः तत्कालीन समाज से दमित गुलामी की भावनाओं को अभिव्यक्त किया। महाराष्ट्र और बंगाल में यह भावना सबसे अधिक उभरी और चूंकि पारसी रंगमंच था, विकास बम्बई और कलकत्ता इन दोनों ही स्थानों में हुआ था इसीलिए आगा हश्र काश्मीरी, राधेश्याम, 'कलाकार' तथा अन्य तथाकथित मूर्तियों ने राष्ट्रीयता की दमित भावनाओं से भरपूर नाटकों को लोकप्रिय बनाया।"[1]

1. साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 30 जनवरी, 1972, पृष्ठ 11

प्रसिद्ध

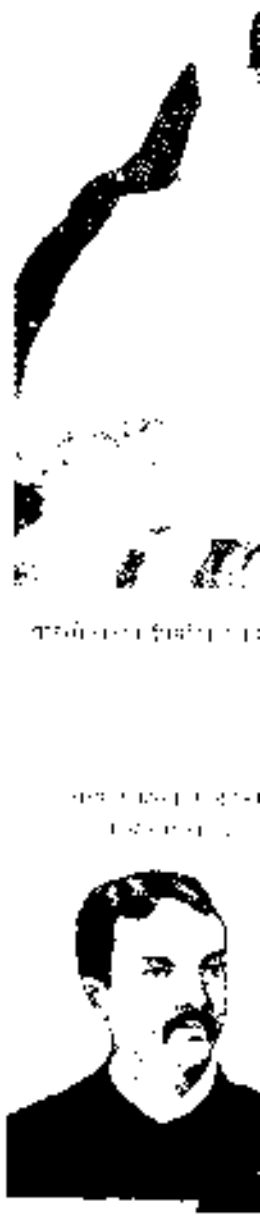

प्रसिद्ध कम्पनियों के मालिक, निर्देशक आदि

निजी परम्प

पारसी-हि
रामलीला, रा
लिया गया है।
एवं नानक
पारसी नाट्य-
मंचीकरण में
पर प्रायः प्रच
पार्थ का परि
मंचीकरण मं
नौटंकी की कथ
आरम्भ राजर
पर मंचीकरण
द्वारा नाटक के
लेकिन इस अव
एक-दूसरे को प्र
पारसी थियेटर
प्रभाव डाला।
रंगमंच के प्रक
लीला की नाटक
का प्रभाव स्प

इस क्षेत्र
हिन्दी के पौरा
अध्ययन में पिछ
(1884) और
की रचना चिन
इस नाट्य
है कि हिन्दी
भारतेन्दु एवं
पहली में पहली
पारसी का
लिखा, वह प्रदर्श
अन्य के उपन्यास के
अंग्रेजी की
मूलकथावली

निजी परम्परा में

पारसी-हिन्दी नाटक और रंगमंच में भारतीय लोक-नाट्यों, यक्षगान, रासलीला, रामलीला, स्वांग और नौटंकी की नाट्य-परंपराओं से संगीतात्मकता लिया गया है। पारसी-हिन्दी रंगमंच ने विशेषकर लोक-नाट्यों से दीर्घलय एवं गानमय संगीत को ग्रहण किया है, यद्यपि लोक-नाट्यों की नाट्य-पद्धति पारसी नाट्य-पद्धति से सर्वथा भिन्न है। उदाहरण के लिए, रामलीला के मंगलाचरण में शिवजी और गुरु की वंदना और अन्त में नाट्य-क्रिया के उद्देश्य पर प्रकाश डाला जाता है। रामलीला में कथावाचक द्वारा प्रारम्भ में पात्रों का परिचय कराने की परंपरा है। लोक-नाट्य दोनों के विपरीत नौटंकी में मंगलाचरण परम्परा पद्धति का है और इसके स्थान पर सूत्र अर्थात् सूत्रधार नौटंकी की कथा के रूपान, राग, पदों और प्रमुख पात्रों का वर्णन कर कथा का प्रारम्भ करता है। इन सबसे विपरीत पारसी नाटक में दृश्य के अंत पर मंगलाचरण का गान कराए जाने की परंपरा थी और इसके बाद प्रस्तावना द्वारा नाटक के नाम, परिस्थिति और पात्रों का परिचय दिया जाता था। लेकिन इस अवधि में रामलीला, नौटंकी तथा पारसी थिएटर इन तीनों ने परस्पर एक-दूसरे को प्रभावित किया और अध्ययन से पता चलता है कि इस समय में पारसी थिएटर ने हिन्दी-क्षेत्र के प्रचलित नाट्य-रूपों और पद्धतियों पर काफी प्रभाव डाला। उदाहरण के लिए नौटंकी के स्थान-नाम ने आगे चलकर पारसी रंगमंच के प्रभाव से अतीक का रूप ले लिया। नौटंकी और रामलीला, रास-लीला की एकल-नायक और आगे नायकीयता के रूप पर भी पारसी रंगमंच का प्रभाव स्पष्ट है।

इन दोनों के बहुत-से इतिहासकारों ने 'बेताब' के 'महाभारत' को अभिनय से हिन्दी के पौराणिक नाटकों तथा हिन्दी रंगमंच का पुनरुत्थान बताया है। लेकिन अध्ययन से सिद्ध होता है कि 'किशनलाल प्रसाद 'तालिब' के 'अल्ह हरिश्चन्द्र' (1884) और 'रामायण', 'कृष्णलीला' (1902) तथा 'नलदमयन्ती' (1902) की रचना 'बेताब' के 'महाभारत' से बहुत पहले की थी।

इन नाट्य-प्रयोगों में हिन्दी भाषा और हिन्दी-संस्कृति का अपना योगदान है। जिस समय 29 जनवरी, 1913 को 'बेताब' का पारसी-हिन्दी नाटक 'महाभारत' स्व० सेठ कावसजी खटाऊ की कम्पनी द्वारा रंगमंच थिएटर, देहली में पहली बार खेला गया था, वह समय ऐतिहासिक तथा पौराणिक नाटकों का समय था, इसलिए मालिक-कम्पनी ने इसके खेलने का जो साहस किया, वह प्रशंसनीय है। जब यह नाटक रंगशाला में आया तो मंच के गुण-बल ने अभिनय के प्रकटन-स्वर पर विजय प्राप्त की। इसके प्रदर्शन ने रंगमंच का अंधकार की धुंध छटा दिया, दुर्लभ को पार की सफल कला दिया, नाट्यकला, दृश्य-योजना और अभिनय-कला के लिए नई राह खोल दिया। इसकी अपनी

सफलता देखकर नाटक कम्पनियों के मालिकों ने अपना रुख बदल दिया, लेखकों ने इसका अनुकरण कल्याणकारक समझा। अश्लील नाटकों से घृणा करने वाले शिष्ट मुहल्ले के लोगों ने नाटक न देखने की प्रतिज्ञा कर रखी थी, उनकी प्रतिज्ञा टूट गई। जो लोग अपने कुटुम्ब की स्त्रियों को नाटक दिखाना पाप समझते थे वे बेधड़क साथ ले-लेकर दिखाने लगे। देवियों ने तो इसका इतना आदर किया कि पेशवाई के विरोध करने से केवल स्त्रियों के लिए इन्हें सात एक नाटक करना पड़ता था जिसमें पुरुष दर्शक नहीं होते थे।"[1]

इस रंगमंच का नया स्वरूप

पारसी थिएटर के प्रारंभ में मुख्यतः पारसी और मुसलमान निर्देशक, अभिनेता और संगीतज्ञों द्वारा चलाये थे। किन्तु बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक से जब उसमें मराठी, गुजराती, मारवाड़ी और उत्तर भारत के हिन्दीभाषी अभिनेता, निर्देशक, गायक और 'बेताब' तथा राधेश्याम जैसे नाटककार अवतरित हुए तब से पारसी रंगमंच का नया स्वरूप और उसकी सारी प्रकृति ही बदल गई। इसमें एक ऐसा नया रंगमंच प्रकट हुआ जिसमें मराठी, गुजराती और उर्दू-भाषी कलाकार भी हिन्दी भाषा तथा हिन्दी संस्कृति को ... हुए, गानों के बोल हिन्दी में होने लगे और इस विषय के संस्कृत भी हिन्दी भाषा और हिन्दू विषयवस्तु की ओर आकृष्ट हुए। जब से यह परम्परा शुरू हुई तब से अनेक मराठी, गुजराती, मारवाड़ी अभिनेता अदलोंगों में सराबोर होकर अपना कार्य करने लगे। गाने अब शास्त्रीय रागों पर आधारित होने लगे।

मारवाड़ी और काठियावाड़ी लोग प्रायः धार्मिक नाटकों में अधिक रुचि रखते थे। उस काल की दो कम्पनियाँ—नन्दू अलवरे और नन्दू अलकेश ऐसी थी जो पुराणों से नाटक लेकर पौराणिक दृष्टि से उसे इतिहास अदल-बदलकर प्रस्तुत करने लगीं। उन्हीं दिनों 'नरसी मेहता' और 'विल्वमंगल' थी, जिनके लेखक थे राजकोट के राजकवि नाथूरामजी सुन्दर शुक्ल, खूब चली। इसी प्रभाविता होकर आगा हश्र ने अपना हिन्दी नाटक 'सूरदास' लिखा।

यह वह काल था जब मराठी और गुजराती भाषा में पारसी रंगमंच प्रायः पौराणिक अथवा धार्मिक नाटक खेलता था और इसकी सफलता देखकर कावसजी खटाऊ जैसे कम्पनियों के मालिकों ने नारायण प्रसाद 'बेताब' से 'महाभारत' लिखवाया। यह वह काल है जब 'बेताब,' राधेश्याम जैसे नाटककारों ने अपना ध्यान संस्कृत नाटक-प्रणाली की ओर दिया।

"बम्बई में खेलकर मैंने —वीर अभिमन्यु के पहले अंक के जितने भी सीन लिखे थे—सब बाद दिए, अच्छे-अच्छे 'भाव' जहाँ थे—वे 'बाकी' रहने दिए, सीनों की तादाद भी बढ़ा डाली। गुलबार के पास तो पहला ही सीन-'श्रीकृष्ण का अर्जुन को गीता का उपदेश' रख दिया। वास्तव में 'और अभि-

1. नवरत्नराम, दुर्गाप्रसाद की भूमिका से, पृ० ... नारायण प्रसाद 'बेताब'

मन्यु' मेरे ... आखिर ... अभिमन्यु को ... सीनों को ... कथा ... कहीं सुना ... खयाल ... बेकार ...

इस ... और हिन्दू ... विश्वविद्यालय ... और उनके साथ ... गीत ... की ...

हमारे ...
...
और ...
हिलमिल ...
...
मलम ...
हम ...

यह वह गीत-प ... मित हुई और इ ... पड़ा था, इसका उ ... है। "मालवीयजी को ... फिर कहा, 'मेरे पि ... भागवत और महाभार ... मूर्ती—अपनी रामाय ... सा छप है? ... तो चार-चार ... है ... तो अर्थ ही ... तो 'दोबोला' है, दो ... वे बहुत ही ...

1. मेरे नाटककार ...

मन्दु' मेरे शौक का एक 'खेल' था; जरूरी या पसन्दी की वस्तु नहीं।

"आखिर 'वीर अभिमन्यु' यहाँ तक लिख गया कि उत्तरा और सुभद्रा ने अभिमन्यु को युद्ध के लिए विदा किया। मैं मित्रों में बड़ी उमंग के साथ इन सीनों को पढ़ने लगा और वाहवाही लेने लगा। एक-दो दिन के लिए यही कथा कहने लगा था—जो कथा के बाद इन सीनों को नाटकीय ढंग से कहीं-कहीं सुना देता था। मथुरा के सरदार देवीसिंह (पीपू) और श्री बाकाराम खत्रीजी जैसे कितने ही मेरे प्रेमी फरमाइशें कर-करके मुझसे वह सीन सुना करते थे।"[1]

इस तरह के नाटकों का इस काल में विशेषकर उत्तर भारत के हिन्दी और हिन्दू समाज पर इतना प्रभाव पड़ा कि जब 1911-12 में बरेली में काशी विश्वविद्यालय के लिए धन संग्रहार्थ महामना मदनमोहन मालवीयजी पधारे और उनके साथ दरभंगा-नरेश, काशी के जिलाधीश एवं और बहुत-से महत्त्वपूर्ण व्यक्ति थे, उस समय राधेश्याम ने पारसी थियेटर की धुनों पर जो गीत बनाए और बनाओं में गाए, उनसे हजारों रुपये दान में मिले। उन गीतों की बानगी देखिए:

> "हमारे पास आए हैं आज, पारसी, दरभंगा महाराज।
> भिखारी बने धर्म के काज, पारसी, दरभंगा महाराज।
> और भी—
> हिलमिल करो जाति-उद्धार, भाइयो, समय न बारम्बार।
> कोटिपती दें लक्ष-लक्ष, लक्षपती हजार-हजार।
> मध्यम श्रेणी देंगे सैकड़ों, निर्धन के दो-चार।
> हमें दो पैसे भी स्वीकार—भाइयो, समय न बारम्बार…"

यह कह गीत-परम्परा है जो उस काल के पारसी-हिन्दी नाटकों में विकसित हुई और इन हिन्दी गीतों का उस काल के विद्वत् समाज पर नया प्रभाव पड़ा था, इसका उदाहरण मालवीयजी और राधेश्यामजी की बातचीत से प्रकट है। "मालवीयजी बोले, 'बड़ा अच्छा कर रहे हो, यही 'ब्राह्मण धर्म' है।' फिर कहा, 'मेरे पिताजी भी कथा कहते थे, शौक तो मुझे भी है, श्रीमद्भागवत और महाभारत से तो अत्यधिक प्रेम है।' इसके बाद उन्होंने मेरी कथा सुनी—अपनी रामायण जब मैंने गाई तो बड़े प्रभावित हुए। बोले, 'यह कैसा छंद है? लावनी या चौबोला?' मैंने सिर झुकाकर कहा, 'लावनी में तो चार-चार बोलों के बाद एक बोल फिर अस्थायी के काफिये का आता है—इस तरह चार चौक में 'खयाल' पूरा होता है; और चौबोला—इसका तो अर्थ ही यह है कि चार बोल एक काफिये के हों। मेरी रामायण के छंद तो 'चौबोला' हैं, दो लाइनें एक काफिये को रखती हैं।' मेरे इस उत्तर पर वे बहुत ही हँसे, मेरी पीठ ठोकी। तब मैंने नाटक लिखने की बात भी कहीं

1. 'मेरा नाटक-काल', कविरत्न पं० राधेश्याम कथावाचक, बरेली, पृष्ठ 25-26

और 'वीर अभिमन्यु' का भी एक सीन सुनाया, सुनकर बड़े ही प्रसन्न हुए और बोले, "निश्चय ही तुम्हारा यह नाटक अद्वितीय होगा, सर्वप्रिय होगा। अब 'रहेंगे' हो तो मुझे भी दिखाना।" साथ ही यह भी कहा "संस्कृत में नाटकों का भंडार है, संस्कृत पढ़कर उसमें नाटकों का अवश्य अध्ययन करना।" फिर कहा, "मुझे जवानी में मुंबई में नाटकों में बड़ा प्रेम रहा है, मैंने एक दिन अपने ही कलम से स्वयं शकुन्तला का पार्ट किया है।"[1]

पारसी थिएटर के इतिहास की इसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में एक ऐसी स्थिति आई जिसमें कम्पनियों के मालिकों को यह विचार करना पड़ा कि उनका काम भविष्य में ऐसे के नाटकों में नहीं चलने का है। इसके दो कारण थे : प्रथम, उन्हें ऐसे धार्मिक और पौराणिक नाटक मिलते थे जिनमें मुख्यतः हिन्दू समाज और नाट्यशास्त्र पूरे उत्तरी भारत का दर्शक समाज भावनात्मक स्तर से सराबोर हो सके। दूसरा कारण यह था कि उस समय अंग्रेजों के खिलाफ जो लड़ाई सामाजिक और धार्मिक स्तर से लड़ी जा रही थी, उसमें ऐसे नाट्य-प्रदर्शनों का बहुत ही ज्यादा महत्व था। स्वातंत्र्य दर्शक समाज अपने इन प्राचीन महाकाव्यों और ऐतिहासिक कथाओं की जाती दास्तान चाहता था जिन्होंने अपने शौर्य और बलिदान से शत्रुओं के छक्के छुड़ा दिए हैं।

इस संदर्भ में स्वयं नारायणप्रसाद नाटककार का निम्नलिखित संस्मरण एक ऐसा दस्तावेज है जो यह साबित करता है कि इस प्रसंग में हिन्दी नाटककार का कितना बड़ा महत्व था।

"सन् 1911 ईस्वी के नवम्बर में 'न्यू अल्फ्रेड' फिर बरेली आई। अब की बार स्वतंत्र प्रयोग लेकर आई जो अकबर हुसैन साहब का लिखा हुआ था। बम्बई की सभी कम्पनियों में आर्थिक नाटक खेलने की लहर का श्रीगणेश तो बालीवाला थियेटिकल कम्पनी द्वारा हो ही चुका था, 'न्यू अल्फ्रेड' के मालिक भी इस स्वभाव के बन चुके थे, पर हिन्दी नाटककार उन्हें नहीं मिल रहा था। मैं उस दौरान बरेली ही था, कम्पनी के असिस्टेंट डायरेक्टर भोगीलाल भाई मुझसे मिलने आए और मोरावजी (डायरेक्टर) से मिलने के लिए मुझे उत्साहित किया। यह अब लिखने की जरूरत नहीं कि न्यू अल्फ्रेड की 'रामायण' में मेरी स्थापित हो ही चुकी थी। मेरी स्थापित होने ने मोरावजी को प्रभावित किया—और तब उन्होंने भोगीलाल द्वारा मुझे बुलवाया और सहर्ष मैं उनसे मिला।

"मोरावजी बड़ी रोबीली शक्ल के डायरेक्टर थे। थोड़ी-सी बातचीत के बाद उन्होंने मुझसे 'वीर अभिमन्यु' के सीन सुने। मैं कथावाचक होने के कारण न उनके रोब में आया न उनकी शक्ल से डर गया, बल्कि खूब जोर के साथ पढ़ा। मोरावजी खुश हो गए, खूब खुश हुए। भोगीलाल ने मेरी तारीफ करते हुए मोरावजी से कहा, "मोरावजी भी अपना हाथ ही की तरह जोर पढ़ते हैं।" मोरावजी

1. 'मेरा नाटक-काल', नारायणप्रसाद, पृ० 32

ने 'वीर अभिमन्यु' [illegible]

हिन्दी नाट्यकला [illegible] गुजराती और मराठी [illegible] अपनी-अपनी भाषा [illegible] भाषा के संसार [illegible] पड़ी। पारसी [illegible] संवाद के [illegible] हिन्दी-संवाद के [illegible] नाटककार की कलम [illegible] और अभिनेताओं ने [illegible] बड़ा [illegible] दृश्य बहुत [illegible] ज्यादा सफल है [illegible] की पटकथाओं की [illegible] मेलाओं के लिए उन्हें [illegible] उन्हें याद भी जाए। [illegible] न नाटक की किताब [illegible]

पारसी थिएटर [illegible] उसका [illegible] पर तथा [illegible] परिस्थितियों [illegible] की अनिवार्यता थी, [illegible] एक [illegible] [illegible] [illegible] एक [illegible] अर्जुन, [illegible] में युधिष्ठिर रिखाव, [illegible] मोरावजी [illegible] भाई। [illegible] अम्बालाल और [illegible] सिखाया है। मेरा यह [illegible] निश्चय ही पार्टी के [illegible] मुझे भी करनी पड़ी—

1. 'मेरा नाटक-काल', [illegible]

ने 'शीर अर्जुन-नृ' अपनी कलाओं के लिए पसंद कर लिया।[1]

हिन्दी नाट्यकारों की कृतियां आगे के दरजों में इतनी लोकप्रिय हुईं कि दूसरों और मराठी तथा गुजराती-भाषी अभिनेता, निर्देशक और व्यवसायी अपनी-अपनी भाषा छोड़कर हिन्दी भाषा सीखने के लिए तत्पर हुए। हिन्दी भाषा के संवाद शुद्ध बोलने और उसमें सही उच्चारण की एक परम्परा ही बन पड़ी। पारसी थिएटर के सबसे बड़े लोकप्रिय-अभिनेता मंगलजी 'हिन्दी-संवाद' के इसी शब्दोच्चारण पर नाज करते थे और अपने दौर में उसी शब्दोच्चारण के कमाल के आधार पर बड़े अभिनेता की प्रतिष्ठा को पहुंचे थे। हिन्दी-सवाद के विषय में भी यही बल दिया जाता था कि संवाद ऐसे हों जहां लाजवाब की कलम का और पारसी हो। मोरावजी के साथ जिन लेखकों और अभिनेताओं ने कार्य किया है वे स्वीकार करते हैं कि मोरावजी ने बार-बार कहा कि दृश्य वही अच्छा है जहां संवाद अच्छे हों और वही दृश्य सफल है जहां अभिनेता उसे सही तौर पर अच्छे ढंग से बोलें। फिर तो पारसी की ऐसी धारा चल पड़ी, जहां बड़ी-बड़ी कम्पनियों में अभिनेताओं के लिए शर्त रखी जाती थी कि संवाद मंच के रिहर्सल में पहले ही रटे जा जाएं। इसलिए न्यू अल्फ्रेड आदि कम्पनियों में न प्रम्पटर होते थे, न नाटक की किताब मंच पर ले आई जाती थी।

पारसी थिएटर में जब हिन्दी का यह पारसी नाट्य विकसित हुआ तो इसका सबसे अधिक प्रभाव पारसी थिएटर के अभिनयों पर, गानों पर तथा नृत्य-संगीतों पर पड़ा। हिन्दू चरित्रों के अनुकरण में स्वयं पात्रों को मंच पर प्रदर्शित करने के लिए जो चारित्रिक आचार और अनुभव की आवश्यकता थी, उसपर बल दिया जाने लगा। इसके पारसी थिएटर में एक कहावत चल पड़ी कि 'जब कोई पारसी हो तो सच्चा बंदा' अर्थात् जो अभिनेता अब तक सच्चे सांगीतिक गीत करने के लिए अब तवायफों की ओर मुड़ता था, इस एक सत्य को साधियों ने इस तरह व्यक्त किया है, पारसी जब तक हकीम को कर्तव्य-कर्तव्य सच्चे बनते। अमृतलाल अर्जमन्दु बना, पेस्तोनजी अकबर, अब्दुलरहमान कालुजी भीम, जगन्नाथ मुंबई, मियां उमरा। तुरकों में बुद्धिसिंह रियाज, शोलापुरी मनमोहन, जगदीश उमर भाई, अलबर्टसिंह सोरावजी डूडी (जिसके ग्रामोफोन रिकार्ड बने हैं) और शंकर नारायण भाई कार्यिक में सोरावजी ने पणा पुरुषोत्तम का सुन्दरी बनाया। अब्दुलरहमान और मियां को भी मैंने थोड़ा-सा अतिरिक्त शिक्षा दिया है। मेरा यह रिहर्सल बाग में चलता था। थिएटर में सोरावजी का। निश्चय ही पाटों के बदलने में सोरावजी पर बड़ी मेहनत पड़ी। मेहनत तो मुझे भी करनी पड़ी – पर मेरी तो जवानी थी। चकाल उस मेरे कोप ही में

1. गेरु नाटक-माला, रायपुर, पृष्ठ 40-41

न था।[1]

इस तरह पारसी रंगमंच में उसका हिन्दी नाट्य इतना महत्त्वपूर्ण है कि उसीके आधार पर पारसी थिएटर की सारी महत्ता प्रतिष्ठित साध्य है। अगर इन जैसे सभी लेखक तभी महत्त्वपूर्ण हुए जब उन्होंने हिन्दू चरित्रों को लेकर हिन्दी के संस्कार को अनुभव कर हिन्दी में नाटक लिखना शुरू किया। उनका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण नाटक 'मोहराब और रुस्तम' यद्यपि मुस्लिम विचार-धारा को लेकर लिखा गया है, तथापि उसमें जो नाटकीय महत्ता प्रकट हुई है उसके पीछे यही कारण था कि उन्होंने मोहराब और रुस्तम के परिवर्त को हिन्दू चरित्र के त्याग और बलिदान तथा धैर्य के आधार पर अंकित किया। यह नाटक भाषा के रूप में चाहे जितना उर्दू हो, लेकिन इसके पीछे वही हिन्दू और हिन्दी भाषा का संस्कार बोलता है, जहाँ मोहराब और रुस्तम के स्थान कंचन और उलक सवार, जगन्नाथ प्रसाद के स्कंदगुप्त, चंद्रगुप्त जैसे चरित्रों की याद दिलाते हैं।

हिन्दी के साहित्यिक नाटकों पर इन पारसी-हिन्दी नाट्य-लेखन का कितना अधिक प्रभाव पड़ा है इसका अगर विस्तार से अध्ययन किया गया है। पारसी रंगमंच के हिन्दी नाट्य का और पारसी-हिन्दी रंगमंच का अध्ययन करना एक तरह से हिन्दी रंगमंच को खोजना है। हिन्दी नाटक और रंगमंच में पारसी थिएटर के कारण जो लंबा व्यवधान आया उसके रहस्य का भी इस अध्ययन से पता चल जाता है।

1. 'मेरा नाटककार', राधेश्याम, पृष्ठ 27

2

रंगभूमि : पारसी थियेटर क्या था ?

वह पारसी थियेटर क्या था, जिसने दिल्ली दरबार के दिनों से लेकर उन्नीस सौ पचास—करीब पांच दशकों से भी अधिक दिनों तक, पूरे हिन्दुस्तान को अपने रंगमंचीय जादू में इस तरह बांधा था कि, वैसा आधुनिक हिन्दुस्तान ने फिर कभी न देखा। रंगमंच और दर्शक समाज का ऐसा अन्तःसम्बन्ध कौन, जिसमें समाज के नीचे से नीचे वर्ग के लोग, और समाज के उच्चतम वर्ग के लोग, समान रूप से मन्त्रमुग्ध करते गए हों—वह इतिहास की अद्वितीय है।

पृष्ठभूमि : राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक

अंग्रेज अठारह सौ सत्तावन के गदर के साथ उत्तर भारत में बड़े थे। इससे

पूर्व कलकत्ते और बम्बई में बड़े जमकर अपना लिया था। अंग्रेज इन दो केन्द्रों में राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अथवा अपने पूर्ण सांस्कृतिक जीवन तथा कलीय महिमा के साथ जिन्दगी जी रहे थे। इसी कलीय महिमा ने इनका रंगमंच भी था। जहाँ सारे की ही तरह ही उन्हें थे अपने साथ हिन्दुस्तान ले आए थे, निश्चित रूप से वैसे ही इनका सीधे इंग्लैण्ड से ले आए रहे हैं। ऐसा उन्होंने ही सम्भव किया था। अपने रंगमंच से अपनी नाटक की दिशा की इनको आवश्यकता और शौक, तथा हिन्दुस्तान में आने सौन्दर्य-बोध एवं नाट्यकला का प्रदर्शन, इस साथ भी कि शौकीनी, दोस्ती, किसी अंग्रेज जाति की ही तरह इनका रंगमंच भी हिन्दुस्तान पहुंच ले। इन सहूलियतों ने भी उन्हें इस दिशा में आगामी किया। दूसरे शब्दों में ये लोग अपने साथ शेक्सपीयर, मोलियर, बेन जानसन, शेरिडन, कांग्रीव, डेकर इत्यादि ले आए थे।

ये शेक्सपीयर ही थे आए, पर शेक्सपीयर की भाँति कोई ये नव नव स्वयं भूल चुके थे। ये ऐसा रंगमंच ले आए जो निर्माण था, बनावटी और दिखावे का था। यह रंगमंच था ऐसी आर्ट थियेटर का, कलात्मक आर्ट थियेटर का, भावुकता का, पौराणिकता का। इसका कारण था, जिस काल में अंग्रेज बम्बई और कलकत्ते में अपने नाट्यगृह बना रहे थे और अपने नाटकों को खेल रहे थे, इंग्लैण्ड में वह काल उच्च रंगमंच के पतन का था। [illegible] के साथ यह दृष्टि नहीं थी जो स्टेजिंग और वृत्त रंगमंच में अन्तर कर सकती। दूसरे, अंग्रेज जाति का जो वर्ग उस समय बम्बई कलकत्ता में था और जिस उस समय सौन्दर्य-दर्शन की जरूरत थी, उस शेक्सपीयर की इसीलिए अच्छा लगता था कि इसमें वह सिर्फ पारसाई, जादू-टोना, तलवार, संगीत और हिंसा ही देखता था। वह शेक्सपीयर उन्हें पसन्द नहीं था, जो कवि है और महाकाव्यकार है।

ठीक इसी परिदृश्य में अंग्रेजों ने कलकत्ता-बम्बई में नाटकघर और नाटक-मंडल कायम किए। यह वह काल है, जब अंग्रेजों के चारों ओर अंग्रेजीदाँ हिन्दुस्तानी समाज धीरे-धीरे विकसित हो खिल रहा था। अंग्रेजी सभ्यता में अपने को रंगे जाना अर्थात् एक महत्त्वपूर्ण पुण्यकार्य समझा जाने लगा था। अंग्रेजी बोलना, अंग्रेजों की तरह रहन-सहन की नकल करने की प्रक्रिया में स्वभावतः अंग्रेजी नाटक देखना भी जीवन का एक प्रधान लक्ष्य बन गया।

एक बात और भी थी। उस समय दरअसल ऐसा कोई भारतीय रंगमंच भी नहीं था, जो उस भारतीय समाज को अपनी ओर खींचता, सिवा केवल लीला (रामलीला-कृष्णलीला), स्वांग और भगत तथा बहुरूपियों की परम्परा। इस दृष्टि से भी अंग्रेजों का वह रंगमंच—वह चाहे जैसा भी हो—भारतीयों के लिए नवीन था, चमत्कारपूर्ण और पर्याप्त मनोरंजनकारी था। और सबसे

बड़ी बात यह थी कि उस समय अंग्रेजी थियेटर इतना आभिजात्य, उच्च अफसरी होने का एक जीवित प्रमाण था।

इसी तथाकथित उच्च, अभिजात अभिरुचि वर्ग से ही तो वह सारा मैनेरिज्म-बोध तथा श्रेष्ठता-परिमान शुरू होता है जिसकी नकल में मंच और निचला वर्ग दौड़ता है।

यही हुआ। बम्बई में 1840 में ग्रांट रोड पर बम्बई थियेटर बना। इसमें अंग्रेज, पारसी और अंग्रेजी पढ़े-लिखे हिन्दुस्तानियों ने मिलकर उन्हीं अंग्रेजों की नकल में अंग्रेजों ने ही नाटक खेलना शुरू किया। इसमें लखनऊ के साथ ही नाच और भी बहुत-से नाच होने लगे। इसकी परिणति यह हुई कि और ही किसी साल, इसी परिवेश के भीतर से एक कम्पनी जन्म ले बैठी जिसका नाम था 'हिन्दू ईमेटिक कोर'। इस कम्पनी का लक्ष्य था 'हिन्दुस्तानी जनता में ड्रामा लेकना'। वह अपने उस लक्ष्य में सफल हुई। इसके नवजवानों में 9 पात्र, 1853 में जो पहला ड्रामा खेला गया, वह था एक मराठी ड्रामा। फिर दिये गए दूसरे ड्रामे, और 26 नवम्बर को उसे नाटक खेला गया राजा गोपीचन्द। यह नाटक देशी-भाषाओं में लिखा गया था।

इस प्रसंग में ध्यान देने की बात यह है कि हिन्दू ईमेटिक कोर ने ये सारे नाटक किसी न किसी अंग्रेजी कम्पनी या क्लब की ही नकल में खेले थे। जहां विदेशियों के लिए मेरीवाशेल कोर गेंदर तक नाच (माया रंगमंचिया और हस्तरेखा विद्या के लिए) अंग्रेज ही थे, सिर्फ एक पूर्णी (नाटकवाली) मुसलमान था और दो अभिनेता थे, पारसी और मराठी। विदेशियों की दृष्टि से 'हिन्दू ईमेटिक कोर' के नाटक निहायत ही मौलिक थे। इस निराली बात को समझ पारसियों ने इस अवसरवादी कोर से एक के बाद एक नाटक कम्पनियों की स्थापना करना शुरू किया और जनता की पसन्द अपने नाटकों का लेखन इतने पूरे हिन्दुस्तान भर में इतना उन उकसा और रमाई की कि जिसका आज तक इस लिहाज से कोई सानी नहीं है।

इस तरह पारसी थियेटर पेशेवर रंगमंच-विधान था। नाम न होकर, उन थियेटर कम्पनियों का नाम है, जिनके मालिक पारसी लोग थे। यह पारसी थियेटर वस्तुतः उस विशाल जनता (दर्शक समाज) का दिया हुआ नाम है, जो उसके आश्रित थी।

यह थियेटर अपनी गायन, नाट्य प्रणाली, रंग-व्यवहार आदि सभी दृष्टियों से अंग्रेजी कम्पनियों (जो प्रायः शेक्सपियर के नाटक आवश्यकता मनोरंजन के उद्देश्य से खेलती थीं) के अनुकरण और प्रभाव के भीतर से विकसित हुआ था। अल्फ्रेड, न्यू अल्फ्रेड, कोरिंथियन, कारोलियन थियेट्रिकल, विक्टोरिया, ओरिजिनल आदि पारसी थियेटर कम्पनियों के ये अंग्रेजी, मध्ययुगीन नाम नेक्सपीरियन काल के इतिहास की याद दिलाते हैं।

एलिजाबेथ-काल के उस इंग्लैण्ड में जिन सामाजिक, आर्थिक और राज-

नीतिक [illegible] में, वैचारिक [illegible] में, उसने बड़े पैमाने पर जिस तरह देशी-विदेशी नाटक कम्पनियां खुली थीं, कुछ-कुछ उसी तरह का वातावरण उन्नीसवीं सदी के अन्त और बीसवीं सदी के प्रारम्भ के हिन्दुस्तान में भी पैदा हुआ था। सामाजिक जीवन में आर्यसमाज का सुधारवादी आन्दोलन चल रहा था। नैतिक चेतना के क्षेत्र में बंगाल का पुनरुत्थानवादी प्रकाश आ रहा था। राजनीतिक क्षेत्र में (जिसका अधिकांश स्वरूप सांस्कृतिक था और जिसके नायक थे—विवेकानन्द, गोखले, तिलक, राजा राममोहन राय, एनी बेसेण्ट आदि) भी बड़ी जागरूकता उभर रही थी। भारत आज़ाद भी हो सकता है, इस बुनियादी सत्य से जो कल्पना, वह स्वप्न उठने लगा था जिसमें स्वच्छन्दता, साहसिकता, यहां तक कि अतिसाहसिकता की मानसिक स्थितियां समाज में घर करने लगी थीं।

इन दिनों के भारत में अंग्रेजी राज के फलस्वरूप, उस काल तक आते-आते सर्वथा एक नई आर्थिक दुनिया पैदा हुई थी, जिसमें उभरे थे बाजार, बड़े शहर, कल-कारखाने, उद्योग-धन्धे, शोषण और आर्थिक संगठन के नये-नये रूप, [illegible], साहूकार, बनिये, [illegible], बैंकर्स आदि। यातायात के साधन, और सुविधाओं के फलस्वरूप भारत की विशाल जनता अब बड़े शहरों में (कलकत्ता, बम्बई, कानपुर, दिल्ली, मेरठ, बरेली, अहमदाबाद, आगरा) और मेले, नुमाइश, कटरा, नखास, चौक आदि स्थानों पर इकट्ठी होने लगी थी। इन्हीं जगहों, स्थानों पर पारसी कम्पनियां नाटक खेलती थीं।

इस नई आर्थिक स्थिति में एक ओर पैदा हुआ विशाल व्यापारी वर्ग और मजदूर समाज, दूसरी ओर इस वर्ग और नई सामाजिकता के भीतर से उत्पन्न हुआ मध्यवर्ग, नौकरी पेशे के भीतर से :

इस नई सामाजिकता की भी मनोरंजन, दिल-बहलाव की बेहद जरूरत थी; जिसे पारसियों ने 'मार्केट' कहा है। और वही मार्केट शब्द अब तक बम्बई कम्पनियां फिल्मी दुनिया में मंत्र की तरह जप रहा है, और सब कुछ उसी 'मार्केट' बोध से ही अनुशासित होता था।

पश्चिमी सभ्यता के साथ उस काल में उसे कुछ ऐसा अभावपूर्ण [illegible], जिसने जीवन की नई शक्तियों, स्वप्नों, आवेगों, [illegible] के लिए बेशुमार मानसिक स्थितियां पैदा हुईं। एक ओर पिछड़ी स्वतन्त्रता से नैतिक किस्म-कहानियां, दूसरी ओर अपने शोषण, अभाव के इतिहास और पुराण की वह बहु-[illegible] देखना, [illegible], [illegible] के भीतर से अपने को पाने की कामना— इस नई चेतना ने स्वभावतः पहली बार अपने नये युग को नये रंग-रूप में देखना चाहा था। त्याग, भजन, बहुरूपिये घूमते रह चले थे। राम-लीला, कृष्ण-लीला धर्म के दायरे में ही गढ़ थी। इस नई सामाजिकता को कुछ तबेला 'नया' चाहिए [illegible] विषय-वस्तु और रंग-रूप दोनों दृष्टियों से। मशीन, विज्ञान और मनोविकास की करामात वह अपनी आंखों से देखना चाहती थी; पूरे मध्ययुग से वह केवल अर्थ, नैतिकता की सीमा में रहने की विवश

थी; अब यही पुरानी सामाजिकता नये अर्थ, राजनीति के परिप्रेक्ष्य में होकर, स्वभावतः कुछ भाषा चाहने लगी थी। कुछ सुदूर के विषय, मगर समुद्र पार के रंगमंचीय किरण, तर्जें, धुनें, नाच, नखरे, रोना-गाना और उस देश का थियेटर जिसके साथ में कभी तुरत ही नहीं डूबता, वह एक जादू जैसा लगने लगा था। यही कारण है कि पारसी थियेटर कम्पनियों के नाम अंग्रेजी में ही होते हैं। पहले जनता इन्हें अंग्रेजी कम्पनियों ही समझकर इनके नाटक देखने के लिए टूटे आती थी। जनता की इच्छाओं और मनों ने बनाया और जनता (परिशिष्ट-2) जानती थी, कि अंग्रेजी कम्पनियों में अंग्रेज मेमों के सांग होते हैं। स्त्री-पात्र एक मर्द नाचते हैं। "पारसी की तर्जें, ईरान-तूरान की कव्वालियाँ, बम्बई की परियाँ, कलकत्ते की जादूगरियाँ ..... उनके हिस्से के रही हैं। ... मजदूरी-मालिक ड्रामा, औरंगे आज़ाम और पायेनाज़ ड्रामा ... इन्हीं मनों ने नाटक की दुनियां में हलचल मचा दिया। जिसको स्टेज पर देखकर दर्शक अश अश करने लगते ..... ।"[1]

अंग्रेजी नाम की कम्पनी, फिर चाहे उसमें एक शब्द दूसरा हो तो उसका कहना ही क्या। दो एक अल्फ़ाज़ थियेट्रिकल कम्पनी आफ बम्बई उसका एक सुन्दर उदाहरण है। उसका नाम सुना नहीं कि यह इन्तज़ार जनता, दर्शक समाज में बैठे आने-जाने लगा था।

द्विमुखी नवोत्थान-काल

यह समूचा काल, इसका पूरा मानस लोक ही इतना विकल और अन्तर्विरोधों से भरा हुआ था : यह एक ओर 'नया' होने के लिए तड़प रहा था, दूसरी ओर अपनी-आपको अपने महान प्राचीन और गौरवमय अतीत से बाँधे रखना चाहता था। एक ओर यह अपनी जातीय परम्परा और एक नये राष्ट्रबोध के स्वप्नों में डूबा था, दूसरी ओर यह नवोत्थान-आन्दोलन के फलस्वरूप अपने को असीम, व्यापक मानवता (नई मानवीयता) में पिलाकर देख रहा था। कलात्मक और सांस्कृतिक स्तर पर यह एक ओर पूरा भारतीय विशुद्ध हिन्दू होने का स्वप्न देख रहा था, दूसरी ओर तेजी से विकसित सभ्यता के तत्वों से मिस्र, तुर्की, अरब, इराक, ईरान, अफ़ग़ानिस्तान, चीन, जापान, लंका, मुकावा, मलाक्का आदि समस्त मध्य पूर्व और सुदूर पूर्व के जीवन-तत्वों को आने-आने कर लेना चाह रहा था। यह एक ओर सुधार के लिए तड़पा

1. अर्थात् मू. कलकत्ता और बम्बई के थियेटर के इन्हीं के आधार पर।
2. एलफ्रेड बर्ना की पोस्टमार्टम रोड; मडेमियाँ एलफ्रेड के दाम।
3. ... थियेटर ... हास्य ... ड्रामा ... ।

(इन्द्रजीत लखनवी के नाटक 'भूल-भुलैया' का प्रस्तावना-वक्तव्य से यह अंश)

था, दूसरी ओर गर्वीला न्यू के प्रति लालायित था। एक ओर वह पूर्व और पश्चिमवादी होना चाहता था, दूसरी ओर अंग्रेजी सभ्यता और शोषण की आजादी और रोमानी रंगीनियत चाह रहा था।

एक तरफ उसकी मुद्रा, आकांक्षाएँ एक ओर थी, दूसरी ओर विजेता-शासन के साथ उसकी पश्चिमी जगत् की भौतिक उन्नति की शक्ति। एक की आकांक्षा, दूसरी की क्रिया। पर दोनों की शक्ति सम-सत्ता की थी। भारत इतना आसान नहीं कि वह दूसरे की तरह ढलकर हो जाए, और कारण सिर्फ यही नहीं, आकांक्षाएँ भी नहीं कि वह नये के प्रति, नूतन मूल्यों के प्रति आँखें मूँद ले। सम्भवतः इसीलिए एक नये नवोत्थान-काल की केवल एक ही संज्ञा 'मुक्त स्वतंत्र' नहीं दी जा सकती थी, पश्चिमी-बोध के स्तर से इसे पूर्व-पश्चिम का संघर्ष और समन्वय कहा जा सकता है। विचार, भाव और [illegible] नहीं तथा पश्चात् यह सुधारवाद जैसे भी सही, इसलिए आज सहज और सामान्य माना गया।

थियेटर : एक पूरक सत्य

रंगमंच के माध्यम इस काल का प्रथम उदाहरण पारसी थियेटर था। आधुनिक विद्यालय, कॉलेज-पुस्तकालय व नये जागरण और सुधार की प्रेरणा से एक कुशाग्र अंग्रेजी-पढ़ी प्रबुद्ध समाज की परिधि में नये नाटक और रंगमंच का जोर भरा जाने लगा। भारतेन्दु का समूचा नाटक साहित्य—सामाजिक, राजनीतिक ('भारत-दुर्दशा', 'नीलदेवी'), पारसीय ('सत्य हरिश्चन्द्र', 'चन्द्रावली') और मौलिक व रूपान्तरित उनका समूचा नाटक इसी उदाहरण की परिधि में अध्ययन प्रस्तुत है। इस काल की नाट्य-परम्परा-काल के सांस्कृतिक और वैचारिक पक्ष व अन्तर्गत सुधारवादी और आर्यसमाजी दृष्टि से हुआ। भारत की दुर्दशा पर उसी भाव बहाने हुए लोग, पराधीन, आलस्य, मदपान, गरीबी, अशिक्षा, पाखंड, फूट, नारी के कारण दुख, पाश्चात्य सभ्यता का कुप्रभाव, धार्मिक अन्धविश्वास, [illegible], भ्रष्टाचार, निज भाषा के प्रति उदासीनता, और फलतः सामाजिक अवनति पर करुण और व्यंग्यपूर्ण दृश्य उपस्थित किए और भारत के प्राचीन गौरव और उन्नति पर बल दिया।

यह निश्चय ही एक उस नवोत्थान काल का केवल एक पहला उदाहरण था। इसे पढ़ने-देखने वहाँ तक वह नया जन-मानस देखता। फलतः भारतेन्दु-काल के पहिली नाटकों का जितनी तीव्र गति से अध्ययन हुआ, उतनी ही शीघ्रता के साथ उनका पतन हो गया।[1]

बहुसंख्य जन मानस, जो नये मेट्रोपॉलिटन नगरों—बम्बई, मद्रास, कलकत्ता

1. 'आधुनिक हिन्दी साहित्य' (1850-1900 ई०), आ० ब० [illegible] मार्गव, 1948 का संस्करण, पृष्ठ 236

में बैठा हुआ था, नये उद्योग, नये व्यापार, नये [illegible] से जो [illegible] नये [illegible] से थका हुआ बिलकुल नये [illegible] था, जो जानता नई अंग्रेजी शिक्षा-दीक्षा, [illegible] से नये [illegible] हुआ था, जिसने अब अंग्रेजों के थिएटर को देखा था और इसी तरह की कुछ नई चीज यह यहाँ भी देखना चाह रहा था, यही उस [illegible] एक दूसरा उदाहरण था, जो [illegible] मनोरंजन [illegible] के [illegible] और [illegible] में आकर [illegible], [illegible] और सुदूर [illegible] की [illegible], उनकी [illegible] [illegible] [illegible], उनके [illegible] किस्से और [illegible] से [illegible] [illegible] देखना चाह रहा था।

पारसी थिएटर ही [illegible] के इस दूसरी [illegible] का एक [illegible] [illegible] यह एक अमिट [illegible] सत्य है।

पारसी नाटक और रंगमंच के इस प्रारंभिक चरण के [illegible] और प्रभाव का [illegible] [illegible] [illegible] के लिए [illegible] [illegible] किसी लेखकों ने उस 'युग' का कितना [illegible] [illegible] चाहा है। [illegible] इस [illegible] में आगे [illegible] रहे हैं। [illegible] लेखकों ने [illegible], वह [illegible] बने उस [illegible] 'युग' को देखने के लिए [illegible] [illegible] पड़ा था।

देवकीनन्दन [illegible] कुछ सैकड़ों में [illegible] (दस्तावेज) नाटक [illegible] के [illegible] बातचीत के उस समय के पारसी [illegible] के विषय में [illegible] [illegible] का रहस्य [illegible] हुआ है :

पारसी थिएटरों : [illegible] [illegible] [illegible]

में पैदा हुआ था, नये उद्योग, नये व्यापार, नये बाजार में जो नया मन पुरानी के बाद हुआ बिल्कुल नये की तलाश में था, जो भारत नई अंग्रेजी शिक्षा-दीक्षा, नवोत्थान के नशे में डूबा था जिसने अब अंग्रेजों के थियेटर को देखा था और उसी अचरज की कुछ नई चीज वह यहां की रंगशाला चाह रहा था, यहीं मन-भावन एक दूसरा उदाहरण था, जो पहले नेतृत्व मराठा के साथ और प्रभाव में भारत पश्चिम, मध्यपूर्व और सुदूर पूर्व की पिछली उसकी लहरीली, उसके हीरो-हीरोइन, उसके रोमांटिक किस्से और लोक-नृत्यों के किस्से तथा नये अकस्मात मिलना चाह रहा था।

पारसी थियेटर ही नवोत्थान में इस दूसरी आकांक्षा का पूरक समाधान था। यह एक अत्यंत ऐतिहासिक तथ्य है।

पारसी नाटक और रंगमंच के इस प्रारम्भिक चरण में ही इसकी शक्ति और प्रभाव का विश्लेषण निम्नलिखित उद्धरणों से किया जा सकता है। हिन्दी लेखकों ने इन दृश्यों का विशेष मजाक उड़ाया जाता है। [illegible] थियेटर में भाग ले रहे थे। [illegible] था, एक दर्शक वर्ग इन नये दृश्यों को देखने के लिए [illegible] हुए खड़ा था।

इब्राहीमबेग [illegible] कृत 'पैकरों में रस-रंग' (इस्तालिखित) नामक प्रहसन के निम्नलिखित वार्तालाप में उस समय के पारसी दृश्य के [illegible] की प्रतिक्रिया का रहस्य छिपा हुआ है :

[illegible] बिहारी — नारायण, फिर भी किसी बात कहो तो, जाने दो। [illegible] की [illegible] चले, वहां कुछ इन्तांने की बातें होंगी, वहां है [illegible] और [illegible] इल्लत [illegible] है।

दूसरी चरन : (खीज के) अजी नाहक, क्या बकते हो ? [illegible] नाम हो क्या, जो [illegible] हैं। [illegible] के [illegible] होने [illegible] नहीं [illegible], अब नहीं के शाला होने पर [illegible] ?

[illegible] : [illegible] नहीं [illegible] [illegible] है। [illegible] अब भी [illegible] [illegible] है, जो तुम [illegible] आसक्त हो गए।

दू० : [illegible] किस [illegible] है ?

प्र० : [illegible], [illegible], [illegible] [illegible] ?

दू० : [illegible] हां हां, [illegible] [illegible] [illegible]

प्र० : [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] : (सोच के) [illegible] हाँ हाँ, [illegible] जनाब अंग्रेजी में होती है, लेकिन [illegible] क्या [illegible] है ? आप क्या इसी साहिबान [illegible] एकदम ऐसा पागल हो गए ?

[illegible] : वाह जी वाह ! आप तो कुछ-कुछ अंग्रेजी भी जानते हैं फिर भी ऐसी अदद को नहुत समझ [illegible] [illegible] का [illegible] आदा [illegible] ड्रामा का [illegible] गए।

[illegible] : [illegible] अंग्रेजी [illegible] एक [illegible] [illegible] [illegible]

'फनमूज़' 'ऑपेरा' के नज़दीक आ गया था। तुर्रों को ही स्त्रियों के रूप धारण करने पड़ते थे—जिसमें न कोई नियम था, न कोई मर्यादा थी। 'पॉपीलाल', 'गुलफ़ाम', 'हर्कीकलाम' आदि उस काल के प्रसिद्ध नाटकों में नाट्यकला और प्रसंगों में भी गलत दृश्य रहे थे, वे पारसी नाटक से बहुत दूर नहीं थे।

अतएव पारसी-हिन्दी नाटक और रंगमंच के उदय के पीछे उस निजी रचनात्मकता का भी पर्याप्त हाथ है—जिसे भुलाया नहीं जाना चाहिए। एक अरसे के हमारी अपनी नाट्य-परम्परा इस बिन्दु पर पहुँचकर पारसी 'ड्रामा' और 'थियेटर' की पुनर्सृष्टि के रूप में सम्मिलित थी।

3

पारसी-हिन्दी रंगमंच : प्रकृति और मर्यादा

पारसी-हिन्दी रंगमंच का आविर्भाव अर्थात् 19वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध के प्रथम दौर तथा इसपर एक ओर अंग्रेजी के नाटकों मुख्यतः शेक्सपियर [illegible] का अधिकाधिक प्रभाव था और दूसरी ओर इस थियेटर पर पुरानेपन लिखने और कथावाचकों का अधिक बोलबाला था। तथापि पारसी थियेटर में हिन्दी नाट्य-लेखन का भी एक अपना स्थान था और 'सत्य हरिश्चन्द्र' तथा 'चंद्रावली' जैसे पारसी रंग के हिन्दी नाटक भी इस चरण में लिखे जा रहे थे। 'सत्य हरिश्चन्द्र' के लेखक विलायत बनारस पारसी के नाम इस चरण में काफी लोकप्रिय थे।

फिर भी यह सोचना उचित है कि पारसी थियेटर के इस पहले दौर में

[illegible] नाटकों—मुख्यतः [illegible] [illegible] [illegible]

हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमान भाई और पारसी लोग उन दिनों नाटक के ज्यादा शौकीन थे। कम्पनियों के मालिक और अभिनेता तथा लेखक भी प्रायः पारसी और मुसलमान थे। लेख भी खालिस उर्दू में होते थे। डबल और तुकान की भरमार रहती थी। संवाद में गजलों की बहुलता थी जैसे अल्लाह-अल्लाह, मेहरबान, कद्रदान आदि। गानों के बोल भी ऐसे ही—जानी, लासानी, नूरानी सूरतिया आदि। उस काल के लेखकों की नाममात्र का उर्दू नहीं मिल सका था। उन्हें लेखक की जगह मंजी का दर्जा प्राप्त था और इन मंजकों में उन दिनों मुंशी मुराद, मुंशी अहसान, मुंशी नसीर आदि उल्लेखनीय थे।[1]

यह वह काल था जब हिन्दू व्यापारी लेखक और नायक व्यक्तियों का मंचन नाटक कम्पनियां बनाने की अपेक्षा रामलीला, राम लीला की मंडलियां बनाने और उनकी लीलाएं दिखाने की ओर अधिक था। विलक्षण ही कलाकारों ने दौर था। नाटक पकड़ा था। नवाबवालों की ऐसी नाटक पार्टियां थीं जिनमें हिन्दू और मुसलमान दोनों का समावेश था। वह वह काल था जब भाषा के स्तर पर हिन्दी-उर्दू का कोई भेद नहीं था। स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने नाटकों में जिस भाषा का प्रयोग किया है वह हिन्दी-उर्दू दोनों का संगम है। जिसे हम ब्रज, हिन्दुस्तानी कह सकते हैं। सामाजिक स्तर पर भी हिन्दू-मुसलमानों में बड़ा मेल था और दोनों के ढंग और रहन-सहन में दोनों जातियों के ढंग समान रूप से हिस्सा लेते थे। हिन्दू लोग मुहर्रम में अजादारों के साथ भाग लेते थे और ताजियों के साथ कर्बला तक जाया करते थे। लोकप्रिय हिन्दू त्योहारों के अवसर पर जलेबियां बंटवाते थे। मर्सियों की ध्वनियां सुनाते थे। इसी तरह हिन्दुओं की होली में मुसलमान रंग डलवाने लगे थे और होली मिलने भी आया करते थे।

रंगेयराघव ने अपने संस्मरण में उपरोक्त तथ्यों को स्वीकार किया है और उन्होंने निम्नलिखित उद्धरण भी अपनी पुस्तक में उद्धृत किया है :

"मेरी हिन्दू होकर भी कुछ तर्ज सीखने के लिए, पारसी-थिएटर के प्रसिद्ध गायक मूसी के मकान पर मैं अक्सर गया हूं और उन्होंने अपने पुत्र की भांति मुझसे स्नेह का व्यवहार किया है तथा हारमोनियम सिखाया है।"[1]

उस काल की हिन्दी और उर्दू भाषाओं में नाटक लिखने वालों की पारसी नाटक कम्पनियां उल्लेखनीय हैं :

1. न्यू अल्फ्रेड, 2. महबूब की थियेटिकल

इस काल की इन दोनों नाटक कम्पनियों का जो प्रभाव पढ़े-लिखे हिन्दी-भाषी समाज के ऊपर पड़ा था उसकी चर्चा रंगेयराघव ने अपनी पुस्तक 'मेरा नाटक-काल' में अनेक प्रसंगों के साथ की है। उस समय ईश्वर के स्थान पर अल्लाह, खुदा, अल्लाह, निगार आदि संबोधनों और शब्दों की भरमार थी। नाटक के आरंभ में और अंत में, जो उस समय प्रचलित थे हिन्दी में अनुवाद कर लेकर

1. 'मेरा नाटक-काल', पांडेय रंगेयराघव, पृ. 14

हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमान भाई और पारसी लोग इन दिनों नाटक के ज्यादा शौकीन थे। कम्पनियों के मालिक और अभिनेता तथा लेखक भी प्रायः पारसी और मुसलमान थे। सेठ भी खासिल उर्दू में होते थे। इसके और हुनर की भरमार रहती थी। संवाद में कविताओं की बहुलता थी—जैसे अमानत, बेदाग, फरहत, आदि। गानों के बोल भी ऐसे ही जानी, लासानी, नुक्ती गुफ्तगू आदि। उस काल के लेखकों को नाटककार का दर्जा नहीं मिल सका था। उन्हें लेखक की जगह बंदी का दर्जा प्राप्त था और इन लेखकों में उन दिनों मुंशी मुराद, मंशी अहसन, मुंशी नजीर आदि उल्लेखनीय थे।

यह वह काल था जब हिन्दू व्यापारी, शिक्षक और अन्यान्य व्यक्तियों का ध्यान नाटक कम्पनियाँ चलाने की अपेक्षा नाटकीय, राम लीला की मण्डलियाँ बनाने और उनकी सेवाएँ दिखाने की ओर अधिक था। निश्चय ही व्यापारियों ने बीच का रास्ता पकड़ा था। व्यापारियों को ऐसी नाटक पार्टियाँ भी दिखाते थे जिनमें हिन्दू और मुसलमान दोनों का योगदान था। यह वह काल था जब भाषा के स्तर पर हिन्दी-उर्दू का कोई सवाल नहीं था। स्वयं भारतेन्दु युगीन नाटकों में जिस भाषा का प्रयोग किया है वह हिन्दी-उर्दू दोनों का संगम है जिसे इस काल हिन्दुस्तानी कह सकते हैं। गानों में भी हिन्दू मुसलमानों में बड़ा मेल था और दोनों के धर्म और उपदेश से दोनों कौमों के लोग नमाज तथा मेले हिस्सा लेते थे। हिन्दू लोग मुहर्रम में अजादारी के साथ भाग लेते थे और ताजियों के साथ कारबला तक जाया करते थे। दीपावली, हिन्दू त्योहारों के अवसर में जलेबियाँ बंटवाते थे। शबेरात की रोटियाँ खाते थे। इसी तरह हिन्दुओं की होली में मुसलमान रंग उछाला करते थे और होली मिलने भी आया करते थे।

राधेश्याम ने अपने संस्करण में उधार के लफ्जों का स्वीकार किया है और उन्होंने निम्नलिखित दुबैत को अपनी पुस्तक में उद्धृत किया है :

"अजी हिन्दू होकर भी कुछ दर्द मीरजा के लिए, मोहल्ला जफीरा के उस्ताद साहब मरने के मकान पर में आकर गया हूँ और उन्होंने अपने पूर्व ही की भाँति मुझसे स्नेह का व्यवहार किया है तथा दुबैत लिखवाया है।"[1]

इस काल का हिन्दी और उर्दू भाषाओं में नाटक लिखने वाली दो पारसी नाटक कम्पनियाँ उल्लेखनीय हैं :

1. नयू अल्फ्रेड, 2. महबूब की कम्पनियाँ

इन कम्पनियों ने इन दोनों नाटक कम्पनियों का जो प्रभाव पढ़े-लिखे हिन्दी-भाषी समाज के ऊपर पड़ा था उसकी चर्चा राधेश्याम ने अपनी पुस्तक मेरा नाटक-काल में अनेक प्रसंगों के साथ की है। उस समय थियेटर की स्थापना पर संबंध खुदा, प्रस्तुत, विचार आदि संशोधनों और शब्दों की भरमार थी। नाटक के अलावा गजल और गानों, जो इस समय प्रचलित थे, हिन्दी में अनुदित कर लिए

1. मेरा नाटक-काल, राधेश्याम कथावाचक, पृ० 14

जाते थे या कभी-कभी उस तर्ज को अपने स्वभाव के अनुसार बदल देते थे। उदाहरण के लिए :

"तिमार तेरे नखरे, ताजो-अहा पर निसार"

को इस तरह बदलकर गाया जाने लगा था—

"अपार तेरी माया, माया है तेरी अपार"

राधेश्याम ने एक संस्मरण देकर इस तथ्य की ओर अच्छे ढंग से इशारा किया है।

"श्रीमोतीलालजी नेहरू नाटक देखने के भी बड़े प्रेमी थे। महबूब की नाटक कम्पनी नारोतेशन तब इलाहाबाद आ गई थी। अपने परिवार के अधिकांश व्यक्तियों के साथ वे जब नाटक देखने जाते थे तो हमें (पिता-पुत्र को) भी ले जाते थे। महबूब स्वयं गायक बहुत अच्छा था। नाटक उसके भी औलाद अली की दूसरी कम्पनी की भाँति ही होते थे, पर पोशाक और सीनरी दूसरी कम्पनी से बड़ी घटिया थी। स्टेज की व्यवस्था भी कुछ ठीक थी। उसका 'चन्द्रहार' नाटक मुझे अधिक पसंद आया।"[1]

महबूब की नाटक कम्पनी कारोनेशन का नाटक 'कनकतारा' राधेश्याम को इसलिए पसंद आया था कि एक तो उसकी भाषा हिन्दी थी और दूसरे इसके और दृश्य के वातावरण ने उनकर भारतीय आदर्श की ओर उसका रुझान अधिक था।

यह वह काल था जब महावीरप्रसाद द्विवेदी, बालमुकुन्द गुप्त, भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र, बाबू देवकीनंदन खत्री, गोपालराम गहमरी, माधवराव सप्रे, अकबर इलाहाबादी, चकबस्त लखनवी, जफर लखनवी, गोला अलीगढ़ी, शिवचन्द्र-लाल वर्मन लाहौरी, ख्वाजा हसन निजामी देहलवी और लक्ष्मीनारायण पेहला बुरी-निवासी आदि लेखक साहित्यिक और साहित्यिक विशेषताओं के कारण अधिक पढ़े जाते थे और इनके साहित्य से पाठकों का तादात्म्य स्थापित हो चला था।

राधेश्याम का योग

इस तथ्य की चर्चा हम पहले कर चुके हैं कि पारसी थियेटर में जब हिन्दी के नाटककार आए तो उसका क्या रूप हुआ। हम यहाँ उनकी मर्यादा की चर्चा करेंगे, जिसके कारण पारसी थियेटर की प्रकृति में एक आमूल परिवर्तन उपस्थित हुआ। पारसी में यह परिवर्तन राधेश्याम के समावेश के कारण अधिक उल्लेखनीय है, विशेषकर उनके नारायणप्रसाद 'बेताब' और राधेश्याम कथावाचक इन दो रूपों में आए और जिनके कारण पारसी-हिन्दी थियेटर की अपनी विशेषता उर्दू, गुजराती और मराठी के पारसी थियेटर से अलग दिखाई पड़ी। पीर अभिमन्यु में राधेश्याम ने यहाँ पौराणिक चरित्रों के माध्यम से महान तेजस्वी कर्मठ, बलिदानी, युद्धवीर, धर्मवीर को जनता सामने रखी यहाँ

1. मेरा नाटककाल, श्रीराधेश्याम कथावाचक पृ० 15

'प्रह्लाद' न
व्यक्ति बड़
की राधेश्या
का उदाहर
सहने की
"कम
माणिकलाल
दो बार अ
पकड़ और
हुकूमत के
कि किस
शोणित क
"वीर अ
घर में भू
प्रसाद द्विवे
नाटक ने
निम्नलिखित
पारसी रंगम
की गहराई
सम्पादक
पूर्णिमान देश
और 'प्रह्लाद
"प्रह्ला
"विद्या
के रूप की
अपने चल
का भी हिन्दी
प्रेमचंद 'माधुरी
से पढ़ा चलता
नाटकों को देख
लेख निकला
'माधुरी' का
1. मेरा न
2. वही, पृ

'प्रह्लाद' नाटक में उन्होंने ब्रिटिश हुकूमत के विरुद्ध राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति बड़ी मार्मिक और प्रतीकात्मक रूप में की। इस नाटक में हिरण्यकशिपु को राधेश्याम ने अंग्रेजों का प्रतीक बनाया और प्रह्लाद को उस स्वतन्त्र चेतना का उदाहरण प्रस्तुत पेश किया जो हिरण्यकशिपु की गुलामी किसी तरह से भी सहने को तैयार नहीं।

"कम्पनी के उस समय के एक मैनेजर (बिजली के भी इन्चार्ज) मि० माणिकलाल बम्बरा ने मुझसे कहा कि यहां की खुफिया पुलिस का बड़ा अफसर दो बार अपनी रायफल लेकर आया कि कहीं से भी नाटक को हुकूमत के विरुद्ध पकड़ूं और नष्ट कराऊं, पर वह फेल रहा। प्रह्लाद और प्रमोद निश्चय ही हुकूमत के विरुद्ध खुल-खुलकर उस नाटक में बोलते थे; पर आड़ यह थी कि किस हुकूमत के विरुद्ध? उस हिरण्यकशिपु की जिसने अपने लिए जगदीश घोषित करके प्रजा को भ्रम में डाला था।"[1]

'वीर अभिमन्यु' और 'प्रह्लाद' इन नये चरण के ऐसे नाटक हैं जिनकी घर-घर में धूम मच गई। विश्वम्भरनाथ कौशिक, गणेशशंकर विद्यार्थी, महावीर-प्रसाद द्विवेदी और बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' जैसे हिन्दी के लेखकों ने 'प्रह्लाद' नाटक को बहुत अधिक महत्त्व देना शुरू किया। इस सम्बन्ध में राधेश्याम का निम्नलिखित संस्मरण एक ऐसा दस्तावेज है जिससे यह पता चलता है कि पारसी रंगमंच का यह हिन्दी नाटक-लेखक किस तरह से राष्ट्रीयता की भावना की गहराई से जुड़ा हुआ था। "'प्रताप' कार्यालय गया और 'प्रताप' के यशस्वी सम्पादक श्रीगणेशशंकरजी विद्यार्थी से भेंट की। क्या कहूं! वे मनुष्य रूप में गुणिजन देवता ही मुझे प्रतीत हुए। कुर्सी से उठकर मुझसे लिपटकर मिले और 'प्रह्लाद' के एक गाने के शुरू के बोल बोलते हुए मिले :

क्या अच्छा होता! गल-गल के तलवारें
बह जातीं—होकर मातृदूध की धारें।

"प्रह्लाद की माता (श्यामलता) के मुख का यह गीत है।

"विद्यार्थीजी ने कहा, 'ऐसा नाटक लिख दिया है, जिसमें आने वाले भारत के रूप की एक भविष्यवाणी है।'"

आगे चलकर इसी क्रम में 'श्रीकृष्णावतार' और 'रुक्मिणी-मंगल' नाटकों का भी हिन्दी दर्शक समाज पर बहुत ज्यादा प्रभाव पड़ा। उन दिनों बाबू प्रेमचंद 'माधुरी' के सम्पादक थे और 'माधुरी' के उन दिनों के अंकों को देखने से पता चलता है कि प्रेमचंद ने स्वयं 'श्रीकृष्णावतार' और 'रुक्मिणी मंगल' नाटकों को देखकर उनके रेकार्डों के साथ 'माधुरी' में एक मनोज्ञ लेख निकाला था। उस लेख में उन्होंने अपना नाम 'नाटक-प्रेमी' लिखा था। 'माधुरी' का वह लेख बड़ी गम्भीरता से लिखा गया था। उस लेख की समाप्ति

1. मेरा नाटक-काल, कलेक्शन पृ० राधेश्याम कथावाचक, पृ० 94
2. वही, पृष्ठ 97

इकट्ठा करने में प्रेमचंद ने उन दिनों के हिन्दी पत्रों तथा गुजराती पत्रों से बड़ी सहायता ली थी। श्री विश्वम्भरनाथ जी शर्मा से भी उन्होंने कुछ सामग्री ली थी और उस काल की कम्पनियों के अभिनेताओं से भी सहायता ली थी। यही नहीं, प्रेमचंद ने अपने 'गबन' उपन्यास में एक जगह लिखा है, "एक दिन मनोरमा थियेटर में राधेश्याम का कोई नया ड्रामा होने वाला था, इस ड्रामे की बड़ी धूम थी, नगर दिनों पहले से ही लोग अपनी जगह रक्षित करा रहे थे।"[1]

प्रेमचंद ने 'नाटक-प्रेमी' के नाम से जो पत्र 'आजकल' में लिखा था उनकी निम्नलिखित कुछ स्थापनाएं आज भी उल्लेखनीय हैं :

1. "अमर्यादकरकर व्यवसाय करनेवाली कम्पनियों के बनाने में पारसी जाति ने ऐसा काम किया है जो और सभ्य कौम न कर सकी। उन दिनों उर्दू नाटक, नाटककार, गाना की प्रधानता थी, और थी उन्हीं उर्दू जबान में लिखे हुए 'इन्द्रसभा', 'हवाई परियां' जैसे एकांकी नाटकों की भरमार। इस अगर भूल नहीं है तो हिन्दी नाटक के प्रोत्साहन करने का श्रेय सबसे पहले व्यवसायिक कम्पनियों को ही-उनको ही प्राप्त हुआ। परन्तु उनके नाटक 'शिवेन्द्रोर' 'लवंग' तो एक किनारे रह गए, हिन्दी व्यवसायी कम्पनी के स्टेज पर नहीं पहुंचे। अतः श्री भूषी विनायकप्रसादजी 'नाटक' बनारसी ने कि उन्हीं दिनों की विख्यात कालीबाड़ी थियेटरिया कम्पनी को 'सावित्री', 'रामायण', 'महाभारत', 'भर्तृहरि' आदि हिन्दी के ड्रामे सबसे पहले दिखाकर दिए और खिलवाए। इस खूबी के साथ उन्होंने उन नाटकों में हिन्दी दी थी कि उर्दू-हिन्दी के सम्मिश्रण में, हिन्दी की शान का आनन्द भी नाटक-प्रेमी जनता को प्राप्त हुआ, और नाटक भी पास हो गए।"[2]

2. "फिर कोई पीछे दो वर्षों के बाद पं. माधवजी का 'महाभारत', तुलसी का 'सूरदास' स्टेज पर आ गए। यद्यपि इन नाटकों की भाषा भी उर्दू-हिन्दी-मिश्रित थी, और उनका कथानक तथा उनके भाव पुराणों से 'नली' 'दौलती' और 'सिलसिले' के रूपान्तर थे, तथापि इसमें संदेह नहीं कि इन नाटकों को बड़ा नाम मिला और पारसी कम्पनियों के मालिकों को यह अनुभव हुआ कि हिन्दी नाटक निकालने चाहिए। उन दिनों के यदि नाटक 'जहरी नाग' और 'गुलगुल कथा' आदि को जब हम देखते हैं, तो इतना तो निःसंकोच कह सकते हैं कि प्रायः इस श्रेणी के सबसे नाटकों में गाने हिन्दी भाषा ही में ज्यादातर लिखे और गाए गए हैं।"[3]

3. "इसके बाद राधेश्यामजी का 'वीर अभिमन्यु' आया। हम समझते हैं कि इससे पहले उतने हिन्दीपन का कोई नाटक पारसी कम्पनियों के स्टेज पर नहीं आया। इस नाटक का हाथरसवाला गाना (म्यूजिक) भी बड़ा लोकप्रिय

1. 'आजकल' (नाटक) के वर्ष 5, संख्या 6 में छपा है।
2. वही।

और अश्लील
लिखा जमाने
पहुंचाया ये
थी। गाना
नाटककारों
लिखी, महा
जनता ने भ
कम्पनियों
4. "
उधर बंबई
का 'जल-
नाटकों को
भारत के
लिखा नाटक
5. "इ
हिन्दी को
'श्रवणकुमार'
भी कई नाट
6. "ह
हमारी राय
दृष्टि से दो
कम्पनी में
जो स्वयं दो
रहे हैं। श्री
राधेश्यामजी
एक उत्तम है
हिन्दी
कथावस्तु, इ
नेत्रों को अ
समाज और
'भीष्म'
1. आजकल
2. वही।
3. वही।
4. वही।

और अश्लीलता से रहित था। यह उस ज़माने में पहली बार स्टेज पर आया जिस ज़माने में जितने ही उर्दू के नाटककारों ने ऐसे-ऐसे गन्दे कामिक स्टेज पर पहनाए थे कि माताओं और बहिनों को थिएटर में ले जाते हुए भी लज्जा आती थी; पात्र को स्त्री और स्त्री को माता कहलाना तो उन दिनों के कुछ उर्दू नाटककारों का मानो धर्म हो रहा था। मीर 'वीर अभिमन्यु' को पूर्ण सफलता मिली, महामना मालवीयजी तक ने इसे देखा और प्रशंसा की। इतना ही नहीं, जनता ने भी इसे उतना आदर दिया, जितना आदर इनके पहले के पारसी कम्पनियों के किसी नाटक को नहीं प्राप्त हुआ था।[1]

4. "अब तो हिन्दी की निजोन्नतिरूपा इन कम्पनियों में प्रारम्भ हो गई। उधर बाबू कृष्णजी 'जौहर' के 'पति-भक्ति' और 'वीर भारत' और गंदाजी का 'नल-दमयन्ती' आदि स्टेज पर पहुंचे। उत्साह यहां तक बढ़ा कि हिन्दी नाटकों की प्रधानता का यश देने के लिए मेरठ में एक लिमिटेड कम्पनी 'आर्यकुल भारत' के नाम से बन गई। निःसन्देह उस कम्पनी का 'बुद्धदेव' बड़ा सुन्दर और उत्तम नाटक था।[2]

5. "उन्हीं दिनों काठियावाड़ से आई हुई 'सूरविजय' ने अपने सम्पूर्ण नाटक हिन्दी ही में आकर खेले। राधेश्यामजी ने 'वीर अभिमन्यु' के बाद जो नाटक 'श्रवणकुमार' लिखा था, वह इसी कम्पनी को दिया था। श्रवणकुमार के बाद भी कई नाटक उन्होंने उस कम्पनी को दिए थे।[3]

6. "हां, तो यह मन्दोड़ कम्पनी के हमने कितने ही नाटक स्वयं देखे हैं। हमारी राय है कि उस समय, हिन्दी नाटकों की दृष्टि से ही नहीं, स्टेज की दृष्टि से भी यह कम्पनी आदर्श है। श्रीयुत राधेश्यामजी, जिनके नाटक इस कम्पनी में खेले जाते हैं, और पं० शारदाजी ओझा के डिरेक्टर हो जाने के बाद, जो स्वयं ही इसमें अपने नाटक स्टेज कर रहे हैं, निःसन्देह सफलता प्राप्त कर रहे हैं। 'वीर अभिमन्यु' का जिक्र तो ऊपर आ ही चुका है। इसके अतिरिक्त राधेश्यामजी के 'प्रह्लाद', 'परिवर्तन', 'मजनूं की हूर' आदि सब उर्दू ढंग के नाटक हैं। इन नाटकों में आदर्श है, शिक्षा है, पवित्रता है, और है ओज।[4]

हिन्दी के इन नाटकों की साहित्य में क्या प्रकृति थी और इन नाटकों की कथावस्तु, इनके नायिक, इनकी रचनाएं किस तरह से उस काल की सामाजिक चेतना को प्रकट कर रही थीं और किस तरह से भारतीय और विशेषकर हिन्दू समाज को बल दे रही थीं, उसका यह आकलन महत्त्वपूर्ण है।

'श्रीकृष्णावतार', 'रामचन्द्रमणी-मंगल', 'श्रवणकुमार', 'महाभारत' और 'वीर

1. 'अशुरी' (लखनऊ) के वर्ष 8, नम्बर 6 में छपा है।
2. वही।
3. वही।
4. वही।

अभिनय। इन सब नाटकों की मूल प्रकृति में उस काल के भारतीय समाज और उसकी यथार्थ-दुर्दशा किसी न किसी रूप में अभिव्यक्त है। उदाहरण के लिए 'कृष्णावतार' का प्रारम्भ नाटककार ने इस प्रकार किया है कि कंस के अत्याचारों से जब पृथ्वी कांप रही थी, संसार जब त्राहि-त्राहि कर रहा था, तब देवर्षि नारद, और सागर में भगवान विष्णु को उसके लिए मजबूर कर देते हैं कि वह धर्म की रक्षा के लिए अवतार ले। इस नाटक में नारद और भगवान विष्णु का वार्तालाप इतना ओजपूर्ण और प्रभावशाली इस का है कि निश्चय ही उस काल के दर्शकों के दिल को हिला देने वाला रहा है। वह इसलिए भी कि वार्तालाप के द्वारा दर्शक कंस के अत्याचारों को उस काल के अंग्रेज शासकों के अत्याचारों से तुलनात्मक देख सकता था।

इस नाटक में उधर तो नारद भगवान को अवतार लेने के लिए मजबूर करते हैं और इधर इस विचार से, कि अत्याचार जितनी जल्दी सीमा पर पहुंच जाएगा, उतनी ही जल्दी भगवान का पृथ्वी पर अवतार होगा, कंस के जुल्म बढ़ाते हैं। दूसरी ओर कंस के जुल्म से वसुदेवजी उत्तेजित होते हैं तो उन्हें शांति का पाठ भी पढ़ाते हैं। इस तरह एक ही परिधि में यह तीन तरह का चित्रण उस काल में लड़े जाने वाले स्वतन्त्रता-संग्राम के तीन रूप एक साथ दर्शक देता है। उनके भीतर से महात्मा गान्धी, स्वामी श्रद्धानन्द, गोखले और तिलक के व्यक्तित्वों की झलकियां मिलने लगती हैं।

उस समय में शैलीपाठ के माध्यम से नाटककार ने उन शक्तियों की ओर संकेत किया जिनका सम्बन्ध हमारे गुप्त संसार से है।

इन नाटकों के माध्यम से इन नाटककारों ने यह भी परिवर्तन किया कि उस काल के पारसी थियेटर में अलग जो रामलीला, रासलीला, स्वांग की परंपरा चल रही थी, उनके भी महत्वपूर्ण तत्वों को ये लोग अपने नाट्य में इस तरह सम्मिलित कर लेते थे कि दर्शकों को एक ओर नाटक का आनन्द मिलता था तो दूसरी ओर उसमें रामलीला तथा रासलीला और स्वांग के तत्वों का भी आनन्द मिल जाता था। उदाहरण के लिए 'श्रीकृष्णावतार' नाटक का प्रारम्भ होता है नारद और योगमाया के संवाद से। जैसे यही प्रारम्भ इस नाटक का शान्तिपाठ है अथवा प्रस्तावना है। इसके उपरान्त पहला अंक भगवान कृष्ण के जन्म पर समाप्त होता है। दूसरे अंक में बालक श्रीकृष्ण मंच पर आते हैं और क्रमशः अंकसमाप्ति तक गौचारण, कालिय-मर्दन, गोवर्धन-धारण और रासमंडल आदि लीलाओं का प्रदर्शन कराया जाता है। श्रीकृष्ण की इन बाललीलाओं को नाटक में देने में लेखक का क्या उद्देश्य है? इस अंक में कोई 30 छोटे-छोटे बालक काम करते हैं जिनमें श्रीकृष्ण, मनसुखा और श्रीदामा की भूमिका विशेष है। राधा की भूमिका भी इन लीलाओं में प्रमुख है। इस नाटक के प्रदर्शन को देखकर प्रेमचंद ने 'माधुरी' के उसी अंक में बड़े विस्तार से इसके बारे में लिखा। निम्नलिखित उद्धरण इस तथ्य का दस्तावेज है

कि पारसी
था और
"पा
इसमें दि
भावना द
रूप सामने
हुई युगल
हमारी रा
पहले। अ
वहां दो
है, जैसा
में अगर
खूब अता
वालों का
वासुदेव
उस ही
स्थान पर
शंकर ने
इतना तब
हमने स्व
'श्रीकृ
'रुक्मिणी-
पलार' का
चित्रण को
नाटक में
प्रेम और
आना दि
ने रुक्मिणी
मनोरंजक
बड़ा ही
स्त्री, मुसे
रात
में 'सैकड़ो
नाटकों में
भान होक

1. 'पा

कि पारसी-हिन्दी नाटक ने दर्शक समाज पर किस प्रकार का प्रभाव डालना चाहा था और उनका मनोरंजन-स्तर क्या था :

"राधा और कृष्ण का प्रेम-सम्बन्ध बिल्कुल पवित्र है, यह बड़ी अच्छी तरह इसमें दिखलाया जाता है; कहीं भी, रासमण्डल की भी अश्लीलता और बुरी भावना दर्शकों के हृदय में नहीं आने पाती, बल्कि इस प्रेम का बड़ा ही पावन रूप सामने आकर खड़ा हो जाता है। अन्धकार के नीचे गोप-गोपियों के साथ खड़ी हुई युगल छवि के चित्र का अवलोकन कीजिए—यह दूसरे अंक का दूसरा सीन हमारी राय में इस नाटक का सर्वोत्तम सीन है। तीसरे अंक में रास-रंग है। पहला अंक राज-नीति से पूर्ण है। दूसरा अपनी ही रास-रंग से भक्ति का सीन बहा देने वाला है और तीसरा वीरता का सजीव चित्र सामने लाकर रख देता है, जैसा कि कंस-वध के चित्र को देखकर आप कल्पना कर सकेंगे। इस चित्र में आए हुए नट वसुदेव, बलराम, देवकी और उग्रसेन सभी अपने-अपने पार्ट खूब अदा करते हैं, सीन-सीनरी तो इतनी अच्छी दिखाई जाती है कि देखने-वालों का कहना है कि अब तक ऐसी नहीं देखी। यहां पर कम्पनी के पेण्टर मि० वासुदेव दिवाकर की प्रशंसा किए बिना नहीं रहा जाता। निस्संदेह सीनी-मी उन्हीं ने आपने इस आर्ट में कमाल हासिल कर लिया है। साज भी अपने-अपने स्थान पर अच्छे हैं, जिन्हें तैयार करने में कम्पनी के मालिक श्रीयुत नर्मदा-शंकर ने यथार्थ में परिश्रम किया है। पोशाकें भी ठीक हैं। सब मिलाकर स्टेज इतना सजा हुआ रहता है कि दर्शक बारम्बार देख-देखकर भी नहीं अघाते। हमने स्वयं इस विषय का हमने अच्छा नाटक कहीं नहीं देखा।"[1]

'श्रीकृष्णावतार' के इस व्यापक प्रभाव के बाद राधेश्याम का दूसरा नाटक 'रुक्मिणी-मंगल' इस रंगमंच-संसार में आता है। यह एक तरह से 'श्रीकृष्णा-वतार' का ही दूसरा भाग है। भाषा की दृष्टि से, भावों की दृष्टि से, चरित्र-चित्रण की दृष्टि से यह नाटक 'श्रीकृष्णावतार' से अधिक विकसित है। इस नाटक में जरासंध से युद्ध, कालयवन का भस्म होना, रुक्मिणी का श्रीकृष्ण-प्रेम और अन्त में रुक्मिणी-हरण तथा प्रद्युम्न का शंबरासुर को मारकर द्वारका आना दिखाया गया है। राधा-कृष्ण का वास्तविक सम्बन्ध क्या है, जब कि कृष्ण ने रुक्मिणी-वरण कर लिया है, यह इस नाटक के अन्तिम दृश्य में बड़े ही मनोरंजक रूप में दिखाया गया है। 'श्रीकृष्णावतार' में जैसे नारद का चरित्र बड़ा ही नाटकीय है, इसी प्रकार इस नाटक में रुक्मिणी की भाभी, रुक्म की स्त्री, तुलेखा का चरित्र बड़ा ही प्रभावशाली है।

रासलीला की कांखियों की तुलना में, कृष्ण के स्थान पर पारसी थियेटर में 'ऐक्टो' की बड़ी महत्ता थी। इन दोनों तत्त्वों का समावेश राधेश्याम के नाटकों में हुआ है। यहां झांकी वाले ये दृश्य प्रायः नाटक के शरीर के ही सहज भाग होकर प्रकट होते थे। जैसे 'रुक्मिणी-मंगल' में—(!) राधा-उद्धव की

1. 'माधुरी' (लखनऊ) के वर्ष ४, संख्या ६ में छपा है।

झांकी, (2) भीष्म का दरबार, (3) रुक्मिणी-रुक्मी और प्रभा के संवाद का दृश्य, (4) शिशुपाल के दूल्हा रूप का दृश्य, और (5) रुक्मिणी हरण का दृश्य।

सामान्य पारसी थियेटर में जो तड़क-भड़क वाले संवाद रखे जाते थे वे प्रायः मनोरंजन के लिए सवाद होते थे। लेकिन पारसी-हिन्दी नाटक-लेखन ने इन संवादों को एक स्वाभाविकता और नाटक-उपयोगिता देने की कोशिश की, जैसे 'वीर अभिमन्यु' में कृष्ण-अर्जुन-संवाद, उत्तरा और अभिमन्यु-संवाद, इसी तरह 'विलाव' के महाभारत में कृष्ण-अर्जुन-संवाद, भीष्म-अर्जुन-संवाद, द्रौपदी-कौरव-संवाद। इसी तरह 'रुक्मिणी-मंगल' में राधा-उद्धव-संवाद, रुक्मिणी-रुक्मी और प्रभा के संवाद।

पारसी-हिन्दी नाटक में इस तरह की संवाद-योजना और दृश्य-योजना के पीछे यह उद्देश्य रहता था कि इसके द्वारा काफी भड़कीले और आश्चर्यचकित कर देनेवाले दृश्य दर्शकों के सामने प्रस्तुत किए जा सकें। साथ ही ऐसे दृश्यों के बीच नाच-गाने भी दिखाए जा सकें। इसीलिए प्रायः हर नाटक में राज-दरबार के दृश्य कई बार रखे जाते थे। सीन-सीनरी, वस्त्राभूषण, नाच-गान इन सबको रखना नाटक का एक अनिवार्य अंग था। सामान्य पारसी थियेटर के नाटककार, विशेषकर जब हिन्दी नाटककार इस क्षेत्र में नहीं आए थे तो हमारे पौराणिक और आदर्श चरित्र—शकुंतला, जानकी, रुक्मिणी आदि को भी अश्लील होने गवाकर उन्हें नचवा दिया करते थे। लेकिन पारसी-हिन्दी नाटक लेखन में ऐसा होना समाप्त कर दिया गया और फिर भी नाच-गानों के लिए सीन-सीनरी और आश्चर्य में डाल देने वाले दृश्यों और अभिनयों की विधान के लिए इन नाटककारों ने अन्य उपाय और तरीके ढूंढ निकाले। 'रुक्मिणी-मंगल' में पहली बार संस्कृत के श्लोकों पर आधारित नाच है। इस नाच और गीत के बारे में प्रेमचंद का मूल्यांकन उल्लेखनीय है :

"इस नाच में चौबीस लड़के काम करते हैं। अब तक संस्कृत श्लोकों का नाच किसी कम्पनी में नहीं निकला। गाने इस पुस्तक के पात्रों ने बहुत आगे बढ़ा दिए हैं, और उनकी तर्ज भी बड़ी ही अच्छी है। हमारी राय में ऐसा नाच किसी कम्पनी में और किसी स्टेज में अब तक नहीं आया।"[1]

पारसी थियेटर कम्पनियों के मालिकों की सदैव यह इच्छा रही है कि ऐसे नाटक खेले जाएं जिन्हें सारा परिवार देख सके। यह आर्थिक दृष्टि से भी बेहतर था और सामाजिक स्तर से भी। साथ ही यह वह काल था जब राज-नीतिक नेताओं, विशेषकर मोतीलाल नेहरू जैसे नेताओं, का बड़े-बड़े समाज में काफी आदर था। राधेश्याम ने अपनी पुस्तक में इस तरह के अनेक संस्मरण दिए हैं, जहां पारसी कम्पनियों के मालिक राजनीतिक नेताओं से अपने प्रदर्शनों के उद्घाटन कराने को प्रयत्नशील रहते थे। जिन दिनों राधेश्याम ने 'कृष्णा-

1. 'भातुरी' (लखनऊ) के वर्ष 8, संख्या 6 में छपा है।

बहार' और 'रुक्मिणी-मंगल' के बाद 'ईश्वर-भक्ति' नामक नाटक लिखा था, उन्हीं दिनों इसका उद्घाटन उस काल के कांग्रेस के प्रेसीडेंट मोतीलाल नेहरू ने दिल्ली में किया था। उस समय कम्पनी के मालिक मेहरबानजी ने नाटककार राधेश्याम को कितना अधिक महत्त्व दिया! उन दिनों ऐसे हिन्दी नाटकों का कितना महत्त्व समाज में बढ़ जाता था जब इसके सम्बन्ध किसी न किसी तरह राष्ट्रीय संघर्ष से जुड़ जाते थे। 'ईश्वर-भक्ति' का उद्घाटन कांग्रेस प्रेसीडेंट मोतीलाल नेहरू द्वारा होने जा रहा है, जब ऐसा विज्ञापन अखबारों में उन दिनों प्रकाशित किया जाता था (दैनिक पत्रों के पूरे पृष्ठ पर) तो इसका फल यह होता था कि [illegible] हिन्दी में जो नाटक हो रहा है जो मेरठ, मुजफ्फरनगर, सूरत, भावनगर, पानीपत और 'रेवाड़ी की जनता दो पहली रात के सब टिकट खरीद लेती थी। दिल्लीवालों के लिए टिकट घर एक पहली रातों के लिए बंद हो जाते थे। 'ईश्वर-भक्ति' के ऐसे उद्घाटन एक नवीन वातावरण पारसी-हिन्दी मंच पर और उसके बाहर उपस्थित कर देते थे। उसका एक नमूना चित्र निम्नलिखित है :

"पूज्य श्री मोतीलालजी नेहरू अपने उत्साहवादी स्वभाव के अनुसार परिवार सहित आए, आदरणीया श्रीमती नगीनाजी नायडू भी थीं। हम लोगों ने पहली लाइन के सभी सोफे रोक रखे थे। मंडप में बाहर हजारों की संख्या में जनता उपस्थित थी- उसे दर्शन देने के लिए श्री मोतीलालजी नेहरू को कुछ देर बाहर ठहरना पड़ा, मंडप में जब आप आए तो फूलों के गजरों से कम्पनी के मालिकों ने स्वागत किया। नाटक शुरू होने के पहले श्री मोतीलाल जी नेहरू ने मंच के ऊपर चढ़कर पूजा की। थाली में मिश्री, चावल, नेवर पारसी प्रथा के अनुसार हारमोनियम की पूजा की, फिर हारमोनियम पर दस हाथ लगाया कि---[illegible] बस, घंटी बजी और प्रारंभिक मंगलाचरण (जय जय गणपति गणेश) की गूंज के साथ दृश्य उठा। इसके बाद श्री मोतीलालजी नेहरू अपनी सीट पर आ गए। मोतीलालजी नेहरू ने 'ईश्वर-भक्ति' नाटक का उद्घाटन करते यह संवाद तब निश्चित हो चुका था जब उन्हें फेरफार मैंने मंच पर कर डाला था। सूत्रधार (नट-नटी) वाले प्रारंभिक दृश्य के पार्ट कम्पनी के साधारण एक्टरों ही को सदा दिए जाते थे। इस नाटक में मैंने हीरो, हीरोइन (चौबे रामकृष्ण और नर्मदाशंकर) को यह पार्ट दिए—और अन्त में यह वाक्य नट (चौबे) से कहलवा दिया कि 'मैं अम्बरीष बनता हूं, तुम अम्बरीष की पत्नी पतिव्रता बन जाओ।' कम्पनी के दोनों नवाड़े ऐक्टर नट-नटी बनकर जब गुरु ही के सीन में ड्रामा बोले तो एक-एक सिनेन में उन्होंने तालियों की गड़गड़ाहट ली। मेरा यह फेरफार बड़ा कौशल रहा। इसी स्थान का यह गाना—'भारत वालो, फिर भारत में लहराए ईश्वर-भक्ति'—बन्द मोटरों के कारण कई बार गवाया गया। परिणाम यह हुआ कि प्रारम्भ ही से नाटक ऊपर उठा। श्री मोतीलालजी नेहरू आए थे आधे घंटे को, और अपनी पार्टी

बहार' और 'रुक्मिणी-मंगल' के बाद 'ईश्वर-भक्ति' नामक नाटक लिखा था, उन्हीं दिनों इसका उद्घाटन उस काल के कांग्रेस के प्रेसीडेंट मोतीलाल नेहरू ने दिल्ली में किया था। उस समय कम्पनी के मालिक मेहरबानजी ने नाटककार राधेश्याम को कितना अधिक महत्त्व दिया! उन दिनों ऐसे हिन्दी नाटकों का कितना महत्त्व समाज में बढ़ जाता था जब इसके सम्बन्ध किसी न किसी तरह राष्ट्रीय संदर्भ से जुड़ जाते थे! 'ईश्वर-भक्ति' का उद्घाटन कांग्रेस प्रेसिडेंट मोतीलाल नेहरू द्वारा होने जा रहा है, जब ऐसा विज्ञापन अखबारों में उन दिनों प्रकाशित किया जाता था (दैनिक पत्रों के पूरे पृष्ठ पर) तो उसका फल यह होता था कि यदि दिल्ली में यह नाटक हो रहा है तो मेरठ, बुलन्दशहर, गुड़गांव, गाजियाबाद, बागपत और रिवाड़ी की जनता ही पहली रात के लिए टिकट खरीद लेती थी। दिल्लीवालों के लिए टिकट घर ऐसी पहली रातों के लिए बंद हो जाते थे। 'ईश्वर-भक्ति' के ऐसे उद्घाटन एक नवीन वातावरण पारसी-हिन्दी मंच पर और उसके बाहर उपस्थित कर देते थे। उसका एक सजीव चित्र निम्नलिखित है :

"पूज्य श्री मोतीलालजी नेहरू अपने इलाहाबादी स्वभाव के अनुसार बारह साथियों सहित आए, आदरणीया श्रीमती सरोजिनी नायडू भी थीं। हम लोगों ने पहली लाइन के सभी मंडले रोक रखे थे। मंडले के बाहर हजारों की संख्या में जनता उपस्थित थी— उन्हें दर्शन देने के लिए श्री मोतीलालजी नेहरू को कुछ देर बाहर ठहरना पड़ा, मंडले में जब आए तो फूलों के गजरों से कम्पनी के मालिकों ने स्वागत किया। नाटक शुरू होने के पहले श्री मोतीलाल जी नेहरू ने मंच के आगे चढ़कर पूजा की, थाली में नोली, चावल लेकर पारसी प्रथा के अनुसार कृष्णमीत की पूजा की, फिर कृष्णमीत पर हम लोगों ने हाथ लगाया कि—उन्हें बचा लो। बस, घंटी बजी और प्रारंभिक मंगल-गान (जय जय गणपति गणेश) की गूंज के साथ पर्दा उठा। उसके बाद श्री मोतीलालजी नेहरू अपनी सीट पर आ गए। मोतीलालजी नेहरू ने 'ईश्वर-भक्ति' नामक नाटक का उद्घाटन करेंगे, यह प्रोग्राम अब निश्चित हो चुका था तब एक खास फिरकाल सीन स्टेज पर कर दिया गया। सूत्रधार (नट-नटी) वाले प्रारंभिक दृश्य के बाद कम्पनी के साधारण एक्टरों ही को यह दिए गए थे। इस नाटक में ईश्वर (श्रीमती, हरिश्चन्द्र (चौबे रामकृष्ण और तपेदाणंजर) को यह कहे दिए—और अन्त में यह वाक्य नट (चौबे) से कहलवा दिया कि 'तब अम्बरीष बनता हूं, तुम अम्बरीष की पत्नी पद्मा बन जाओ।' कम्पनी के दोनों नामी एक्टर नट-नटी बनकर जब शुरू ही के सीन में ड्रामा बोले तो एक-एक मिनट में उन्होंने नायिकों की तालियाँ बटोरीं। मेरा यह फेरकार बड़ा कौशल रहा। इसी स्थान का यह गाना—'भारत वालो, फिर भारत में लहराए ईश्वर-भक्ति'—बन्द मोरों के कारण कई बार बजवाया गया। परिणाम यह हुआ कि प्रारम्भ ही से नाटक ऊपर उठा। श्री मोतीलालजी नेहरू आए थे आधे घंटे को, और अपनी पार्टी

सहित बैठे रहे रात के दो बजे तक।[1]

इन पारसी-हिन्दी नाटकों का प्रभाव जनता, राजनीतिक नेताओं और उस काल के राजे-महाराजाओं पर इतना पड़ा कि जिस किसी भी राजा या थियेट्रिकल कंपनी को राष्ट्रीय चेतना थी उसने बार-बार ऐसे नाट्य-प्रदर्शनों को अभिनय के रूप में अपने यहाँ आमन्त्रित किया। जब वे नाट्यकार यह देख लेते थे कि अमुक प्रदर्शन में अंग्रेजों और खुफिया पुलिस का ज्यादा दबाव नहीं है तो ऐसे क्षणों पर वे दोनों अपने नाट्य-प्रदर्शनों में ऐसे अंश सहज ही जोड़ देते थे जो बाहर से देखने में पौराणिक अथवा धार्मिक लगते थे लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से उन अंशों का उद्देश्य होता था—जनता में अंग्रेजी शासन के विरुद्ध ऐसी चेतना पैदा करना जहाँ जाहे वह अनुभव हो कि वह भगवान कितना अत्याचारपूर्ण तथा अंधा है। 'ईश्वर-भक्ति' नाटक में इसी तरह एक अंश क्रान्तिकारक ने निम्नलिखित परिस्थितियों में जोड़ा है :

> "हे पुत्रवती, कुमियो, मुनियो, ऋषियो का कैसा फेर है यह ?
> यह नारीधर्म का है कलंक, या शासन का अंधेर है यह ?
> हा ! कितना क्रूर कटाक्षवाला, करुणापूरित नजारा है !
> पकड़े हैं जिसने पांव मेरे, दिल को मेरे डाला पारा है।
> यह क्या है, बतलाओ तो सही, चुप क्यों हो ? बोलो कुछ कहो ?
> किस माली का उजड़ा है बाग, जिसके यह फूल विखर-से रहे ?[2]

अकेले न्यू अल्फ्रेड थियेटर कम्पनी ने सारे पांच वर्ष के काल में इस तरह के सात हिन्दी नाटक राधेश्याम से लिखे और कम्पनी ने उन्हें पूरे भारतवर्ष में बड़े व्यापक रूप से प्रस्तुत किया। कालक्रम से वे नाटक निम्नलिखित हैं :

	सन् 1925 में	परिवर्तन
	सन् 1926 में	मेनरिकी हूर
फिर	सन् 1926 ही में	श्रीकृष्णावतार
	सन् 1927 में	रुक्मिणी-मंगल
	सन् 1928 में	श्रवणकुमार
	सन् 1929 में	ईश्वर-भक्ति
फिर	सन् 1929 ही में	द्रौपदी-स्वयंवर

पारसी थियेटर में हिन्दी नाटकों की जो विशेष धारा चली उसपर सामान्य पारसी थियेटर के प्रेमी लोग और विशेषकर हिन्दी नाट्य-धारा के विदेशी बार-बार यह शिकायत करते थे कि ऐसे नाटक इसलिए अस्वाभाविक और प्रभावहीन हैं क्योंकि पौराणिक और ऐतिहासिक चरित्रों को हास्य के दृश्यों में खींचे न डालकर उसके लिए कल्पित चरित्र और घटनाएं डाली जाती थीं। उनकी यह भी शिकायत थी कि हिन्दी नाटकों के चरित्र अपनी मर्यादा से अभी

1. 'आवुरी' (लखनऊ) के वर्ष 8 संख्या 6 में छपा है।
2. वही।

भी नीचे नहीं उतारे जाते। उदाहरण के लिए आगाजान 'अमानत' के प्रसिद्ध नाटक 'महाभारत' में चेतन चमार के दृश्यों को देखकर उस समय सामान्य पारसी थिएटर के लोग और कलाकार बहुत ही व्याकुल प्रसन्न थे और चेतन चमार के प्रसंग को लेकर तब 'बेताब' की उठ खड़ा हुआ था। मुसलमान लेखक और कलाकार इसे बंद में कलंक मानते थे, पर हिन्दू लेखक और हिन्दू कलाकार इसे अशोभन में प्रगति मानते थे। आगे चलकर 'बेताब' ने चेतन चमार के प्रसंग के स्थान पर 'महाभारत' में नारी पोशी का प्रसंग डाला। यह उदाहरण इसलिए दर्शनीय है कि उस काल में हिन्दी के ऐसे नाटकों की क्या प्रतिक्रिया उस पारसी थिएटर समाज में होती थी। पर आगे चलकर 'महाभारत' के लेखक नारायणप्रसाद 'बेताब' ने यह लिख दिया कि "उस आंदोलन में इस नाटक पर जो जो आक्षेप हुए हैं वह आज निर्मूल सिद्ध हुए। चेतन चमार और स्त्री पोशी दोनों ही अपने-अपने दृश्य-संकलन के साथ यथास्थान अंकित किए गए हैं।"[1]

इस पूरे काल के ऐसे हिन्दी नाटकों की मर्यादा और प्रकृति को समझने के लिए इन नाटकों का अध्ययन और इनकी रचना प्रकृति को समझना तो आवश्यक है ही परन्तु उन दिनों इन नाटकों के बारे में नाटककार और उस काल की पत्र-पत्रिकाएं क्या मर्यादाएं बनती थीं, इसका भी लेखा-जोखा बड़ा दिलचस्प है।

नारायणप्रसाद 'बेताब' ने अपने नाटकों के लक्ष्य के बारे में कहा है, "मैं स्वयं उनकी कई त्रुटियों को यथार्थ और अपने लेख को अशुद्ध मानता हूं, परन्तु रंगशाला की शैली से विवश होकर उन दोषों को जानकर भी ग्रहण किया है, इसलिए एतराज का होना कोई दुःखजनक बात नहीं है। जैसे मनहरण और घनाक्षरी पढ़ने की जो ठीक ध्वनि है, उसको त्याग दिया है। नहीं त्यागता तो कुदरती बोलचाल की एक अनमेल रागड़े के रगड़े से बिगाड़ देता। नाटककला को रक्षा के लिए यही उचित मालूम हुआ कि ध्वनि की परवाह न की जाए। जिस समय एक दोहे का जन्म हो रहा था तो चौथा चरण अपनी टेक के कारण गले में ही अटक रहा। सूरदास जी विदुर जी कहते हैं कि :

उदय हुआ जब आन कर पूर्ण जन्म का रूप
सफल सब चरण हुई.....

" चौथा चरण युद्ध मुहावरे के सांचे में ढला हुआ आया था :

.....रह गए आप ही आप

" परन्तु इसने दो मात्राएं अधिक थीं, मुहावरे को काट-छांट कर लिख दिया :

.....रहे आप ही आप।

" जिस समय कार्यकर्ताओं के सम्मुख गीत पढ़ा गया तो तीसरे चरण के पढ़ते ही एक रसिक कर्मचारी बोल उठे कि :

.....'रह गए आप ही आप'

1. 'महाभारत', रचना नारायणप्रसाद 'बेताब', भूमिका।

मैंने कहा, 'नहीं भाई·····रहे आप ही आप।' वह कहने लगे, 'मुहावरा क्या बिगाड़ा, मजा ही बिगड़ गया।' मैंने भी देखा कि बात तो ठीक है, जो ज़ोर और रस 'रह गए' में था वह 'रहे' में नहीं रहा। सबकी सम्मति से तत्क्षण ही बुलवाना स्वीकृत हुआ।

"आज कलकत्ते का 'मतवाला'—जिसे मैं 'मतिवाला' कहता हूँ—इसी दोष पर मेरा मजाक है, 'अर्थ' को 'अर्थ', 'सम्मति' को 'सम्मति' की तरह 'रह गया आपसे आप' लिखा है तो कोई हर्ज नहीं है, परन्तु मैं इस नौजवान को बतिस्वन यह कह देना पसन्द करता हूँ कि यह ठीक है, मगर ठीक व्यर्थ।"

"एक स्थान में विदुर जी ने भीष्म पितामह को 'पूज्य भीष्म पितामह' सम्बोधित किया है। 'मतवाले' के मत में यह अशुद्ध है क्योंकि भीष्म विदुर के भाई थे, पितामह नहीं। लेकिन 'मतवाला' आखिर 'मतवाला' ही तो है, कहीं पर की जल्दबाजी है तो कहीं मजबूत की बद भी नहीं।"[1]

इसी तरह राधेश्याम ने अपने नाटक-लेखन और उसके उपलब्धि के बारे में सहज ही स्वीकार किया है कि "कुछ भी हो 'वाल्मीकि' लिखने के बाद इतना तो मेरे हृदय को संतोष हुआ ही कि 'इन्द्रसभा' से दूर होने वाला पारसी-स्टेज अब महर्षि 'वाल्मीकि' तक आ गया।"[2]

बुमरी और उस काल में हिन्दी की एक-पंक्तियाँ में जो मनोभाव ऐसे हिन्दी नाटकों और प्रदर्शनों की होती थी उनकी भी झलकी नीचे दी जा रही है :

1. 'भारवती'—नाटक में वीर और करुणरस का प्राधान्य है। भाव बड़े सुन्दर हैं।

2. 'विजय'—नाटक के पात्र आदर्श हैं। शैली रमणीय और मधुर है।

3. 'भारत मित्र' 'वीर अभिमन्यु' हिन्दू आदर्श को सामने उपस्थित करने वाला नाटक है।

4. 'वाराहारी'—रोचकता और रस-परिपोष का तो यह हाल है कि पढ़ने-पढ़ने बीच में छोड़ देना किसी विरले ही पुरुष-पुंगव का काम होगा।

5. 'आज'—अपने पुरुषों के सीधे-सच्चे कर्तव्य-पराक्रमता का सीधे उचित रीति से खोला गया है।

6. 'सनातन धर्म' 'लाका'—इसके पुनरावृत्त भाव और नई पद्य-रचना से हिन्दी साहित्य के प्रेमियों को अवश्य ही अपेक्षित लाभ पहुँचेगा।

7. 'प्रताप'—नाटक पर सफलतापूर्वक खेला जा चुका है। हम केवल यों बधाई देते हैं।

8. 'प्रतिभा'—नाटक बहुत अच्छा है। बड़ी सफलता से खेला जाता है।[3]

1. 'गद्यभारत', सं० पं० नारायणप्रसाद 'बेताब', भूमिका
2. 'पंच नाटक-माला', कलकत्ता पं० राधेश्याम कथावाचक, पृ० 240
3. वही, पृ० 71-72

'बेताब' की भूमिका

पारसी थियेटर की इस परम्परा में नाटककार नारायणप्रसाद 'बेताब' के योग से इसकी मर्यादा में जो अभिवृद्धि हुई, उसका लेखा-जोखा भी बड़ा ही दिलचस्प है।

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में दिल्ली में उस समय कोलकाता के परम रामा थियेटर तैयार हुआ था। उसमें जमींदार साहब की कम्पनी खेल करने लगी। उस समय 'बेताब' दिल्ली के एक प्रेस में काम करते थे और मासिक के एक सामान्य नौकर थे। कम्पनी का विज्ञापन इसी प्रेस में छपने को था और उसी सम्बन्ध से उस कम्पनी के खेल से दूर—विशुद्ध दर्शक के रूप में। जिस दिन नाटक कम्पनी ने एक नाम पाया व नाटक देखने गए, उस क्षण का वर्णन 'बेताब' ने अपनी पुस्तक 'जनाब नदीम' में इस ढंग से किया है—

> "पूरा बदल दिया था, पर नाम आते जिन्दगी थी
> पर्दों की फरमा की और नाम में थोड़ी कमी थी।"[1]

जमींदार की कम्पनी के उस समय नाटककार थे बाबू प्रसन्न 'बेताब'। एक दिन ऐसा संयोग हुआ कि 'बेताब' की अनुपस्थिति में कम्पनी का एक नया नाटक की तकरार हुई। कम्पनी के मैनेजर ने दिल्ली के एक लेखक बालमुकुन्द जी से कहा कि वे एक ऐसे नाटक की रचना करें, जो उनके लिए एक नाटक बना दे। बालमुकुन्द जी ने उत्तर दिया, कि मेरा दोस्त भाई 'बेताब' आजकल इस किस्म के नाटकों की रचना करता है, अक्सर उन्हें भी पुस्तकों में पढ़ता है, मैं उसे भेज देता हूं। अगर उसने काम किया तो कुछ बना भी नहीं पड़ेगा क्योंकि वह स्वयं यहां आने के लिए उत्सुक रहता है। भाई साहब ने मुझसे आकर कहा, 'लो भई! आज तुम्हारी शायरी की परीक्षा का दिन है। आओ रामा थियेटर में ठीक-ठीक ले आओ। देखें, तुम्हारी तुकबन्दी कुछ अर्थ भी रखती है या नहीं।' इस खुशखबरी को सुनकर मैं आपे से बाहर हो गया, मुझे पहला मुशायरा था। भाई ने एक चिट्ठी दी, मानो चलने पुर्जे के पर लगा दिए। मैं उड़कर मैनेजर साहिब की सेवा में जा पहुंचा और उन्होंने मेरी शक्ल, हाल, पोशाक देखकर नोट कर लिया। उस समय मेरे शरीर में इतनी बिजली भर गई थी। पांव जमीन पर, कलम कागज पर, निगाह अदाकार पर, और मन विषय पर नहीं ठहरता था। पुराने हिसाब जैसा अच्छा काम कर सकता है, ऐसा अच्छा उसको लालच भी नहीं दे सकता था। रात में वह नाटक खेला गया। दुकानदार की इच्छा जाने बगैर उन्होंने दिलचस्पी की वह शब्दावली बहुत ही पसंद आई। उस समय कम्पनी में बड़े कर्मचारी चार थे (इब्राहीम करीम, अब्दुर्रहीम साहिब, रहीमबख्श साहिब और [illegible]

1. 'जनाब-नदीम' लेखक : नारायणप्रसाद 'बेताब', प्रकाशक : [illegible], मुद्रक : [illegible] मद्रासी, [illegible] बम्बई, पृष्ठ 44

नदारद)। इनमें से भाई रहीमबख्श साहिब आज भी मारूफ़ थियेटर्स लिमिटेड में मौजूद हैं। शेष तीनों रब्बे दुनिया के नाटक में अपना-अपना पार्ट पूरा करके सदा के लिए शान्ति निकेतन में जा सोए। इन चारों ने मेरी अवस्था क्या की, मानो प्लेस लाइन से नाटक लाइन की तरफ़ इंजिन का रुख़ बदल दिया। वह गाना मालिक-कम्पनी को भी सुनाया गया तो उन्होंने उसका पुरस्कार वह दिया जो उनके लिए साधारण और मेरे लिए असाधारण, अर्थात् उनके लिए अमूल्य (मूल्य रहित) मेरे लिए अमूल्य (बहुमूल्य) था। आज्ञा दे दी कि 'जब जो चाहो करो खेल में आ जाया करो।'[1]

इसके बाद तो शाहजहाँपुर जी रोज़ खेल देखने लगे और उस काल के पारसी नाटकों के मर्म को समझने लगे। थोड़े दिनों के बाद 'बेनाब' किसी कम्पनी से सम्बद्ध हो गए। 'बेनाब' ने अपने जीवन-चरित्र में लिखा है कि जिस समय उनकी वह कम्पनी दिल्ली से लुधियाने गई और वहाँ 'बेकस' के नाटक 'रूपसुन्दरी' के रिहर्सल में शरीक हुए, उस समय कम्पनी के मालिक ने 'बेनाब' से कहा कि 'ऐसा कोई ऐसा लिख दो जो इस प्रकार हाल में पड़े जाएँ।'[2]

"पहले हुआ यह हाल में तो रहे थोड़े से मगर कम्पनी नाटक पर बैल गाड़ी भरकर की कमाई। वहाँ रूपसुन्दर का गाना-बजाना तोमना नर्तकियाँ और छड़ के दो टुकड़े से बजाने हुए, जिन्हें गाने वाले की परिस्थान [illegible] में ले आती थी। मैंने नाटक में दुखान्त दो दुखिया नर्तकी लिख दिए। [illegible] साहब नाटक उठे कि यही बात तो इनमें नहीं ऐसा होती। इसी तरह आगे चलने चाहिए जैसे लाइन पर रेलगाड़ी। बैलगाड़ी तोड़ दी और रेलगाड़ी बन गई।

"उसी खेल में एक बागीचे का सीन परिवर्धित हुआ था, वो भी पुराने लिखवाया गया, जिसे मैं फ़सादे की जड़ मानता हूँ।

"बागीचे का सीन—बागीचे वाली कोठी में कम्पनी का क़याम—नया प्लॉट—तबीयत का ज़ोर—दूसरे के खेल में अपना पैबन्द—रेहर्सल की तकलीफ़—औरतों के महावरे—किकरों की चुस्ती—मज़ा आ गया।

"मालिक-कम्पनी ने तीन गुलाटे ही हुक्म दिया कि या तो सारा खेल नये सुरों में लिखाओ या इस सीन को शरीक न करो। यह तो सारे तमाशे का मज़ा किरकिरा कर देना। हाँ, यह न होगा तो वो सब अच्छे हैं। ऐसा अच्छा एक नहीं चाहिए जो सीन को फीका कर दे।'

"मजबूरन और सीनिंग होने के बाद यह पाया कि उस खेल मुल्तवी किया जाए और उसके नतीजों की रिहर्सल शुरू हो। शुरू हो गई।"[3]

उसके बाद वह कम्पनी लाहौर, देहली और लाहौर होते हुए बम्बई चली गई। बम्बई में दो खेल लाहौर 'पुराने फ़ैशन' और 'कृष्णजन्म' ने उनका सम्पर्क हुआ

1. [illegible], 'बेनाब' [illegible], [illegible] पारसी नाट्यशाला, गोलवाड़ी [illegible] पेज पारसी नाट्यशाला, गोलवाड़ी बाज़ार, बम्बई, पृ० 45-47
2. वही पृ० 64-65

जिसे लेकर नारायणप्रसाद 'बेताब' जी को बहुत ज्यादा निराशा हुई क्योंकि 'कृष्णजन्म' नामक नाटक में जो प्रहसन करने वाली नायिका थी वह एक यूरोपियन लगती थी। इस स्थिति का अनुभव कर नारायणप्रसाद में जो प्रतिक्रिया हुई वह निम्नलिखित है :

"वाह रे अनाड़ी नाट्यकार ! कम्बख्त इतना तो सोचा होता कि 'कृष्ण-जन्म' के समय गोरांग बाला कहां से आ गई ? कहीं से भटकती हुई आ भी गई तो तू उसे न छेड़ता। मगर न क्यूं छेड़ता ? उस समय के नाटकों में एक गोरी बीबी और काले मियां हबशी न हों तो वह नाटक ही नहीं। परन्तु मेरे नाटक में तो ये दोनों पात्र मौजूद थे, फिर भी ऐसा फेल हुआ कि चार दिन न चला। चलता कैसे ? जैसा अंधा मैं था ऐसे अंधे देखने वाले तो नहीं थे। नौका खेल निकला 'ध्वजभंग' से दूसरे से भी रफा-दफा।"[1]

इसके बाद उन्हीं सब कारणों से यह कम्पनी फेल हो गई और उदीयमान नाटककार 'बेताब' की चिन्ता-निराशा बढ़ती गयी। लेकिन यह उस कम्पनी को छोड़कर कहां जाते ?

उन दिनों बम्बई में भागीदारी की एक कम्पनी, जिसका असली नाम 'पारसी थियेट्रिकल कम्पनी बम्बई' था, चल रही थी। इसका पूरे भारतवर्ष में बहुत ही ज्यादा नाम था। इस कम्पनी के मालिक पांच हिस्सेदार थे :

1. सेठ फरामजी अप्पू
2. सेठ रतनजी अप्पू
3. सेठ दादा भाई 'मिस्त्री और
4. सेठ बजां

और जिनके नाम से ही कम्पनी का नाम था 'भागीदारों की कम्पनी'। इसी-में नारायणप्रसाद 'बेताब' बम्बई आए।

उन दिनों अल्फ्रेड थियेट्रिकल कम्पनी का भी बहुत ज्यादा नाम था और इस कम्पनी में उन दिनों जो सबसे बड़े निर्देशक, अभिनेता, प्रस्तुतकर्ता कला-कार थे, उनका नाम था— अमृतलाल केशवलाल नायक। इनसे 'बेताब' की भेंट उनके नाटककार व्यक्तित्व के अवतरण में एक बहुत बड़ी घटना थी। उन्हींके माध्यम से 'बेताब' ने अपना नाट्य-लेखन 1905 के आसपास शुरू किया।

'बेताब' ने अपने नाटककार के निर्माण में जिन व्यक्तियों का स्मरण किया है उन्हें अपने जीवन-संघर्ष में गिनाया, उनके नाटककार के चरित्र को बनाया, उनके व्यक्तित्व की तैयारी की। समझने में उनसे काफी मदद मिलती है। उन्होंने स्वीकार किया कि :

"1. बाल ब्रह्मचारी, हजरत निरंजनी साहिब मरहूम बगावर जलालपुरी।

1. 'बेताब-बोरा', लेखक : नारायणप्रसाद बेताब, पृष्ठ 1, मारवाड़ी बिल्डिंग, पुराना महाजनी, मारवाड़ी बाजार, कलकत्ता, पृष्ठ 08-09

"2. जनाब गोलबी मोहम्मद नजीर हुसैन साहिब 'खस्ता', मौहल्ला मन्न मिस्तरी, अजमेरी।

"3. जनाब हाफिज आलमगीर खाँ साहिब 'कैफ', सालिम ट्रैक रोड।

"4. प्रोफेसर बरकतुल्ला खाँ साहिब, मिताखवाल, देहली (मरहूम)।

"सारे विद्वानों ने मुझे यह राय दिया जिसे राजा होता नहीं सकता, चोर चुरा नहीं सकता, देने से घट नहीं सकता, भूल से नहीं रह नहीं सकता, वो क्या था :

"1. निजामी साहिब ने नाटक के नुक्ते

"2. मुंशी साहिब ने मकालिमा (उर्दू व्याख्यान) का कुछ ज्ञान

"3. कैफ साहिब ने पद्य में पद-विन्यास-पद्धति

"4. बरकतुल्लाह खाँ साहिब ने थियेटर के आधार पर लय की एक मात्रा।

"लाइन से मैं नहीं था इसलिए मेरा इन बुजुर्गों की कृपा से सिन्धु में से बिन्दु मिल गया और विचार की अच्छाई में बुरा और बुरे में अच्छा बनाने लगा।

"ईश्वर जब कोई प्रदान करता है तो उसके साथ एकत्रित कर देता है। मेरे नसीब में भी कुछ नाटकीय शक्ति थी तो प्रभु कृपा भी उसी बरसों से आ गए और मशहूर कीहर भी (यह संगीत फिल्म वाली कीहर नहीं, दूसरी थी)। कीहर बहुत अच्छी अभिनेत्री थी तथापि वह अमूल्यलाल नहीं बन सकती थी। परन्तु अमृतलाल इस कला में इतने कुशल थे कि (जिसका काम ईश्वर बनाता है इसके अतिरिक्त जैसा कि मनुष्य को बनाने का सम्बन्ध है) जिसे चाहो कीहर बना सकते थे। उनका नाम होता था मगर डायरेक्टरों का लाभ बहुत बड़ा। यह लाभ की ही बात है कि मुझ-सरीखे को शिरोमणि अभिनेत्री और सम्पूर्ण नाटककार मुझे मिल गया।"[1]

ऊपर के वाक्यों से यह प्रकट होता है कि पैलाचंद जैसे पारसी थियेटर के हिन्दी नाटककारों के निर्माण के रंगमंच के सभी व्यावहारिक अंग थे, जैसे निर्देशक, अभिनेता, प्रस्तुतकर्ता और नाटक-लेखक, इन सबका मनोनीत नाटककार न होना अनिवार्य था। इन सभी बातों में पैलाचंद ने जो व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त किया वह उनके भविष्य के नाटकाकार के निर्माण में पड़ा। शक्तिशाली सिद्ध हुआ।

आगा हश्र का स्थान

यह वह काल था जब पारसी उर्दू थियेटर में आगा हश्र काश्मीरी, इनायत हुसैन सैयद, नहरी हसन 'अहसान' लखनवी के नाम बहुत ही लोकप्रिय

1. [illegible] 'आवारागर्दी', [illegible], [illegible], [illegible], पृष्ठ 70-75

प्रसिद्ध
अभिनेता

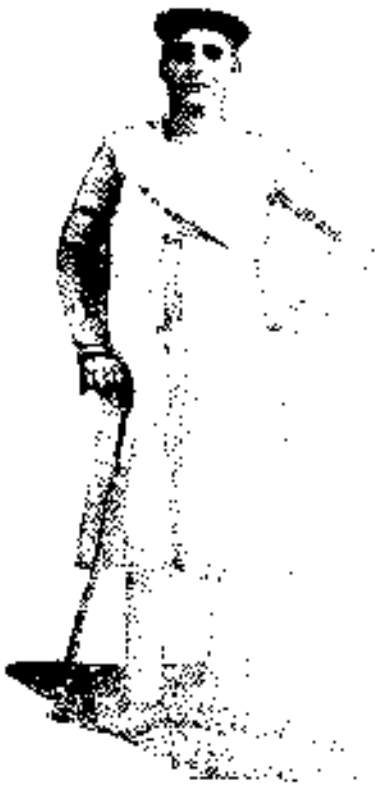

थे। इन्हीं उ
हुआ था। उ
नायक इन्हीं
तहरीर का
हुआ था। इ
उसका मुल्ये
जीवन-चरित्र

" श्री अ
'अहसन' उस
अपने रंग के
के ढंगों की
आज 'पंजाब'
पल मनोरंजा
कागो फाड़कर

" कीर्त
की उन्नयन
बीस रुपये त
चलाने के लि
उराम उन्नयन
कभी नहीं दी
देते थे, इसी
लगातार अन
देखते ही अ
संकुचित भाव
पादरी की
दल ने अकस्

थे। इन्हीं उर्दू के नाट्यकारों का प्रभाव उस समय पारसी कम्पनियों पर छाया हुआ था। उस काल के प्रसिद्ध निर्देशक और प्रस्तुतकर्ता अमृतलाल केशवलाल नायक इन्हीं लेखकों के दामे खेलते थे। एक तरह से इन्हीं नाट्यकारों की तहरीर का चस्का उस पूरे काल के दर्शक वर्ग पर और कलाकारों पर पड़ा हुआ था। इस वातावरण में जब 'बेताब' ने अपना नाट्य-लेखन शुरू किया तो उसका मूल्यांकन अमृतलाल ने किस तरह किया, वह भी 'बेताब' ने स्वयं अपने जीवन-चरित में अंकित किया है :

"श्री आगा हश्र काश्मीरी और जनाब हकीम मैसद मेहदी हसन साहिब 'अहसन' लखनवी—उनका अन्दाज लोगों ने उड़ाया मगर दोनों साहिब अपने-अपने रंग के मालिक आप ही रहे। अमृतलाल ने बरसों उन्हीं दोनों विद्वानों के ड्रामों की रिहर्सल चलाई थी। उन्हींकी तहरीर का चस्का पड़ा हुआ था। आज 'बेताब' की बकवास हाथ में आ गई। मैंने पूछा, 'क्यों भई! कुछ काम चल सकेगा या नहीं?' जवाब मिला कि 'बस इसीमें समझ लो कि मैंने कापी फाड़कर नहीं फेंकी।'

"कोशिश के साथ एकत्रित हो गए तो कोशिश कहां जाती? खेल आगा की उल्लंघना करके पास हुआ। यह तीसरा खेल था 'लहरी सांप', उसने की बीच स्टेज बरबादी दिखा दी। अमृतलाल बीच खेल का एक सीन रिहर्सल चलाने के लिए खड़ी कर रहे थे कि आगा हश्र आ गए। हश्र साहिब जिनके अंतिम नाट्यकार थे उनसे अधिक नाराज थे। आने ख्वामख्वाह इन्सुल्ट में ईर्षा कभी नहीं की बल्कि अन्य कवियों की कृतियों का पाठ लेकर [illegible] देते थे, दूसरे नहीं देते। यों तो [illegible] मोर पर हश्र साहब गालियों का पुल लगाकर था। [illegible] करने में मगर अमृतलाल से खास तौर पर खफा चलती थी। देखते ही अमृतलाल कहने लगे [illegible] मुझे [illegible] नुमाइश [illegible] नहीं। [illegible] मुस्कुराते रहे। कहा यह भी कि एक छोटे पादरी की कुमारी लड़की का दुःखान्त जहरबाद के मुहब्बत (कुर्बत, [illegible]) इलाज [illegible] थे [illegible] उन्हें [illegible] कह रहा था।

[illegible]
[illegible]

[illegible] हश्र साहिब ने मुझे गले से [illegible] कहते [illegible] पहल और [illegible] [illegible] अमृतलाल [illegible] देखा तो [illegible] [illegible] इसीके [illegible] [illegible] था।"

पारसी-हिन्दी रंगमंच के [illegible] से लेकर [illegible] [illegible] [illegible] में महत्त्वपूर्ण [illegible] [illegible] [illegible]

लेखक और प्रदर्शन अपने स्वरूप में प्रभावपूर्ण और आनन्ददायक थे। इस क्षेत्र का यह नाटक चाहे शेक्सपियर के 'त्रासदियों' के आधार पर 'पहली जंगों' के नाम से मंच पर आया, चाहे आगा हश्र और 'रोशन' की मौलिक लेखनी द्वारा 'भीष्म-प्रतिज्ञा' और 'रामायण' तथा 'महाभारत' के नाम से मंच पर अवतरित हुआ, उसके लिए निम्नलिखित शेर एक ऐसा आईना है जिसके भीतर से इस रंगमंच का व्यक्तित्व झलक उठता है :

> गोशे मनवा नाहिद इस गुलशने-ईजाद में।
> सौ उरूसी का पड़ा है मेरी एक फ़रियाद में।

इस गुलशने-ईजाद में वास्तव में सौ-सौ तरानों का मजा था और उसकी एक-एक सदाई में उस जमाने की फ़रियाद का दरावित था। इस नाटक में मूल रूप से शृंगार और वीरता ही प्रधान रस थे। जिसमें जब प्रेम की मूर्ति में से और स्वाभाविक रूप से अन्य रसों की सृष्टि करते थे तो उनमें एक असाधारण रौनक पैदा होती थी, जिससे उस काल का दर्शक तन, मन, धन से न्योछावर हो जाता था। इसके लिए उस काल में पात्रों की लेखनी और रंगमंच के भाव महत्त्वपूर्ण थे। यह कैसा वातावरण था—इसकी एक झलक 'पारसी अल्फ्रेड थियेट्रिकल कम्पनी आफ बम्बई' के प्रसिद्ध नाटक-लेखक जनाब मुंशी मोहीयुद्दीन साहब के नाटक 'पहली जंगी' की भूमिका लिखने वाले की वाणी से प्रकट है :

"क्योंकि प्रेम की मूर्ति की प्यारी प्यारी बातों से असाधारण आकर्षण-शक्ति हुआ करती है, किन्तु जब किसी योग्य कवि की लेखनी से फूल झड़ते हैं और रसों के भाव उसे मचलाते हैं तथा रस-भरे विषयों के वस्त्र पहनाकर कवि उसे अभिप्राय के आभूषणों से सुसज्जित कर प्रेम-मूर्ति को चमक बना देते हैं तब बड़े-बड़े तपस्या करने वाले की जीवन न्योछावर कर उसकी मुख-दिखाई में अपनी भक्ति और पूजा के भाव अर्पण कर देते हैं।

"प्रेमियों के तराने तो नवमुख यह तमाशा एक अच्छी फुलवारी का दृश्य उपस्थित करता है किन्तु जिन सबल मनोभावों का प्रकाशन ने पहिचान का शक्ति-धन प्रदान किया उनकी दृष्टि में इस बाग का प्रत्येक खिला हुआ फूल एक अमूल्य रत्न है और प्रत्येक हरी पत्ती पन्ने से भी अधिक बहुमूल्य है। प्रकाश्य रूप में यह खेल एक प्रेम का अभिनय है; परन्तु वास्तव में इस खेल के दृश्य-पट की ओट में शेक्सपियर ने उन दुर्गुणों, अत्याचारों और अक्षमान्यता इत्यादि के दुष्फल दिखाए हैं जिनसे मनुष्य को भय होता है और अन्तरात्मा की शिक्षा मिलती है। इस खेल में शेक्सपियर ने अपनी अलौकिक शैली से जैसा काम लिया है वह छिपा नहीं। फिर भी जनाब मुंशी मोहीयुद्दीन साहब ताजी देहलवी ने

1. तर्जुमा पारसी अल्फ्रेड थियेट्रिकल कम्पनी आफ बम्बई। प्रसिद्ध नाटककार जनाब मुंशी मोहीयुद्दीन साहब ताजी देहलवी का बनाया हुआ शेक्सपियर के अंग्रेजी के आधार पर 'पहली जंगी', भूमिका

भी इस अभिनय को सँवारकर बनाने में काव्य-कौशल का कोई उपयोग उठा नहीं रखा। कम्पनी ने बहुत धन व्यय कर अभिनय को और भी सुयोग सुन्दर बना दिया है। बाग, भवन, दुर्ग, वन, नदी, राह, दरबार इत्यादि के दृश्यों में ऐसी-ऐसी कारीगरियाँ हैं कि देखकर आश्चर्य होता है। हमें विश्वास है कि दर्शगण इस अभिनय को देखकर सुखी होंगे और कम्पनी का उत्साह बढ़ाएँगे।[1]

स्पष्ट है कि इस रंगमंच की मर्यादा इतनी बड़ी थी कि एक ओर भावना के स्तर पर यह समूचा नाट्य राष्ट्र-प्रेम, स्वजागरण, सुधार और प्रेम तथा बलिदान के स्वरों को आंदोलित करता था तो दूसरी ओर यह रंगमंच, नाट्य के सभी उपकरणों और पक्षों से इतना सुदृढ़ तथा प्रभावपूर्ण था कि जिसकी मिसाल आज हमारे सामने नहीं है।

---

1. पारसी ड्रामेटिक डिबेटिंग कम्पनी आफ बम्बई। प्रसिद्ध नाट्य-लेखक जनाब गुलशन मोहीयुद्दीन साहब नादिर। बेहमनों का बनाया हुआ स्टेजसियर के नाटकों के आधार पर 'बहनी बेटी', भूमिका

4

नाटक कम्पनियां, रंगमंच के विविध चरण और नाट्य-साहित्य

पारसी रंगमंच की नाट्य-प्रकृति और विविध कम्पनियों की नाट्य-प्रदर्शन-पद्धति के परिदृश्य में हुए इसके चार निश्चित विकास-चरण पाते हैं :

प्रथम चरण	: 1853 ई० से 1900 तक	(उद्भव-काल)
द्वितीय चरण	: 1901 ई० से 1917 तक	(विकास-काल)
तृतीय चरण	: 1918 ई० से 1940 तक	(उत्कर्ष-काल)
चतुर्थ चरण	: 1940 ई० से 1960 तक	(शिखर-काल)

प्रथम चरण (उद्भव-काल)

पारसी थियेटर का श्रीगणेश जिस पहली कम्पनी से हुआ था, उसका नाम

था 'हिन्दू ईमेटिक कोर' और इसके तत्त्वावधान में 9 मार्च, 1853 को जो पहला ड्रामा खेला गया, वह था एक मराठी ड्रामा। फिर लेके गए गुजराती ड्रामे और 26 नवम्बर को पहला हिन्दुस्तानी ड्रामा 'राजा गोपीचन्द' खेला गया। यह नाटक मेरठ-शायरी में लखनलव कृत 'आँखें' जैसा था, और इस तरह के नाटक उद्भव-काल के इस प्रारम्भिक वर्षों में लगातार खेले जाते रहे हैं। इसका कारण यह था कि हिन्दुस्तानी दर्शक—जो अब तक यात्रा, 'ख्याल', 'भगत' आदि लोक-नाट्य-परम्पराओं के भीतर से आया था, उसे उसीके मनोरंजन-स्तर से अपनी एक नई दुनिया में खींच लाना पारसी कम्पनियों का परम उद्देश्य था।

इस उद्भव-काल के साथ ही नई-नई रंगमंचक कथावस्तुओं तथा इधर और उधर के वस्तुविषयों पर आधारित पारसी नाटकों का प्रणयन प्रारम्भ हुए। इस प्रारम्भिक चरण में ध्यान देने की बात यह है कि ये नाटक किसी न किसी इस काल की अंग्रेजी कम्पनी या क्लब की ही मदद से खेले गए हैं। निर्देशक से लेकर पेन्टर और गेफ्रमैन तक सब अंग्रेज ही थे। केवल नाटककार (मुंशी) और अभिनेता (मुसलमान, पारसी, मराठी) हिन्दुस्तानी होते थे।

अर्थात् इस चरण का सारा रंगशिल्प और प्रस्तुतीकरण विधि प्रायः विदेशी थी। पर यह उद्भव-काल अनेक महत्त्वपूर्ण कम्पनियों के जन्म का काल है।

सन् 1872 में खुरशेदजी बालीवाला ने दिल्ली में अपनी नई कम्पनी खोली 'विक्टोरिया थियेट्रिकल कम्पनी' के नाम से। इस कम्पनी के प्रमुख अभिनेता स्वयं बालीवाला तथा रुस्तमजी थे। इनके अतिरिक्त मिस खुरशीद और मिस मेहताब तथा एक अंग्रेज महिला मेरी कैप्टन भी इस कम्पनी में काम करती थी। खुरशेदजी बालीवाला हास्य-अभिनेता के रूप में सबसे अधिक प्रसिद्ध थे। इस कम्पनी के प्रमुख नाटककार मुंशी विनायकप्रसाद 'तालिब' थे। 'लैला मजनूँ', 'दिलेर दिलेर' आदि उर्दू नाटकों के अतिरिक्त इन्होंने 'मिथिला विलास', 'गोपीचन्द', 'हरिश्चन्द्र' आदि प्रसिद्ध हिन्दुस्तानी नाटक भी लिखे।

सन् 1898 के लगभग कावसजी खटाऊ ने 'एल्फ्रेड थियेट्रिकल कम्पनी' स्थापित की। कावसजी करुणापूर्ण अभिनय के लिए इतने प्रसिद्ध थे कि इन्हें 'इरविंग (इंग्लैंड का परम विख्यात अभिनेता) की उपाधि दी गई थी और इन्हें 'इरविंग हिन्दुस्तानी' के नाम से जाना जाता था। अल्फ्रेड कम्पनी के प्रमुख नाटककारों में मेहदी हसन 'अहसन' और नारायणप्रसाद 'बेताब' परम उल्लेखनीय हैं।

बम्बई में पहली व्यावसायिक नाटक कम्पनी फेरदूनजी फ्रामजी की 'बम्बई पारसी ओरिजनल ओपेरा कम्पनी' (1898 ई०) थी। इस कम्पनी के सभी अभिनेता पारसी थे, जिनमें खुरशेदजी बालीवाला, कामसजी खटाऊ, मोहराबजी तथा जहाँगीरजी विशेष उल्लेखनीय हैं। महमूद मियाँ 'रौनक' बनारसी इस

कम्पनी के नाटककार (मुंशी) थे। 'इन्साफ़-ए-महमूद' इनका सबसे प्रसिद्ध नाटक है।

इन कम्पनियों ने उर्दू-हिन्दी नाटकों के साथ-साथ अंग्रेज़ी से अनुवादित नाटक भी खेले।

द्वितीय चरण (विकास-काल)

इस काल तक आते-आते पारसी नाटक और रंगमंच ने हिन्दुस्तान की ज़मीन को मज़बूती से पकड़ लिया। रंगशिल्प और प्रस्तुतीकरण विधान में अनुकरणात्मक प्रवृत्ति हुई। कथावस्तु और वर्ण्य विषय के स्तर से (अ) पौराणिक-ऐतिहासिक तथा (ब) सामाजिक नाटकों की स्वतन्त्र रंगमंचीय परंपरा इस चरण में प्रवर्तित हुई।

इस चरण-विशेष में कोई ऐसी नई नाटक कम्पनी नहीं खुली, जिसका नामोल्लेख किया जा सके। विशेषकर नई अल्फ्रेड कम्पनी ही सन् 1914 तक निरन्तर चलती रही और तभी लाजपतराय खत्राऊ की मृत्यु (1914) के बाद इस चरण का अन्त मान लेना चाहिए। 1914 से 19.. तक—इन तीन वर्षों में पारसी नाटक और रंगमंच में, शिल्पगत और संरचना में परिवर्तन और एक नया उत्कर्ष और एक नया वातावरण उपस्थित होने में अनेक घात-प्रतिघात और नूतन प्रभाव इकट्ठे होते रहे। ये वर्ष एक ओर प्रथम महायुद्ध के थे, तथा दूसरी ओर राष्ट्रीय चेतना और आर्यसमाज के कार्यों तथा उद्घोषणाओं से सांस्कृतिक गौरव तथा अतीत के महापुरुषों, योद्धाओं, त्यागियों, प्रेमियों की चरित्र-कथाओं के स्मरण के वर्ष थे। सारे वातावरण में एक ओर राष्ट्रीय संघर्ष का तनाव था तथा दूसरी ओर औपनिवेशिक स्वराज्य पाने के स्वप्न थे। इन स्वप्नों में अपने उसी स्वकीय आलोक और गौरवपूर्ण संस्कृति को फिर से प्राप्त करने की आकुलता थी।

तृतीय चरण (उत्कर्ष-काल)

हिन्दी भाषी जन-मानस और लोक-चेतना में उमड़ी हुई राष्ट्रीय आकुलता, नये जीवन के स्वप्नों में से पैदा होती हुई भावुकता, और उस बुखार को हवा में मौजूद एक अजब तरह की रोमैन्टिसिज़्म—इन्हीं से पारसी नाटक और रंगमंच का चेतनामय रूप पैदा हुआ, जिसमें इस धारा का उत्कर्ष माना जाता है।

(अ) नाट्य-लेखन तथा (ब) रंगमंच (थिएटरिंग) इन दोनों क्षेत्रों में सर्वाधिक उपलब्धियाँ इसी काल की हैं। प्रथम चरण से भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण नाट्य कम्पनियाँ इसी काल की देन हैं।

द्वितीय चरण की सर्वाधिक प्रसिद्ध कम्पनी अल्फ्रेड थियेट्रिकल की समाप्ति के बाद, उसीकी सुधार परम्परा में न्यू अल्फ्रेड कम्पनी की स्थापना हुई।

इसी कम्पनी के मैनेजिंग डाइरेक्टर थे गोहरबाबू, जो इस काल के एक प्रसिद्ध अभिनेता हुए। इसी कम्पनी के माध्यम से नारायणप्रसाद 'बेताब' के बाद पारसी रंगमंच के वे दो प्रतिनिधि नाटककार—आगा हश्र तथा राधेश्याम कथावाचक—दिखे हुए जो आगे चलकर इस पूरे कथ्य-काल-भर में छाए रहे और इन्हीं के व्यक्तित्व से यह उत्कर्ष सम्पन्न हुआ।

इस प्रसिद्ध कम्पनी के प्रभाव और इसके नाटकों की इतनी लोकप्रियता के फलस्वरूप इस चरण में अनेक नाटक कम्पनियाँ खुलीं। स्वयं आगा हश्र ने शेक्सपीयर थियेट्रिकल कम्पनी खोली। और अन्यत्र के लोगों-लोगों ने भी नई कम्पनियाँ खुलती गईं—लाहौर में खुली ओरिएन्टल पारसी थियेट्रिकल कम्पनी, दिल्ली में जुबली थियेट्रिकल कम्पनी और डाइटनिंग आफ इंडिया कम्पनी, इम्पीरियल थियेट्रिकल कम्पनी, अल्फ्रेड्रिया कम्पनी तथा इस चरण की अंतिम प्रसिद्ध कम्पनी थी कलकत्ते की कोरिंथियन थियेटर।

उपर्युक्त व्यवसायी थियेट्रिकल कम्पनियों के अतिरिक्त दो और भी व्यवसायी कम्पनियाँ कलकत्ते में—कलिकाता और गुरुविजय कम्पनी तथा बंबई की व्याकुल भारत कम्पनी।

इन दोनों कम्पनियों के उल्लेख इसलिए भी महत्त्वपूर्ण हैं कि ये कम्पनियाँ पारसी थियेटर के महत्त्व और अकेलेपन के विरोध में, बल्कि कलकत्ता में पारसी नाटकों के प्रभाव में बढ़ती हुई कुरुचि को परिष्कृत तथा परिमार्जित करने के उद्देश्य से खोली गई थीं। इन कम्पनियों ने एक नई नाट्य-धारा को जन्म देना चाहा है। उन्होंने केवल हिन्दी नाटकों को ही महत्त्व दिया और उन्हें सादर अपने रंगमंच में स्थान दिया। श्री गुरुविजय कम्पनी ने राधेश्याम के प्रसिद्ध नाटक 'रुक्मा-श्री-कृष्ण' के प्रदर्शनों से ख्याति अर्जित की। व्याकुल भारत कम्पनी ने अपने संस्थापक विश्वम्भरनाथ 'व्याकुल' के प्रसिद्ध नाटक 'बुद्धदेव' तथा जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द' के 'भगवान् चन्द्रगुप्त' की प्रस्तुतियों से पर्याप्त यश कमाया।

चतुर्थ चरण (उत्तर काल)

1935 के आसपास तक प्रसिद्ध पारसी थियेटर कम्पनियाँ एक के बाद एक समाप्त हुईं तो इसके बाद इस रंगमंच काल का उत्तर काल शुरू होता है। इस काल में जो व्यवसायी रंगमंच कम्पनियाँ खुलीं और जिन्होंने इस परम्परा को जीवित रखा उनके नाम हैं—मोतीलाल जोशी, फरीदून ईरानी, मास्टर फिदा हुसैन नरसी, कन्हैयालाल पवार। इस चरण में और भी जाने कितने लोग इस क्षेत्र में आए तथा उन्होंने अनेक व्यवसायी नाट्य मंडलियाँ खोलीं; लेकिन विलम्ब आ जाने के कारण ये कम्पनियाँ दो-चार साल के भीतर ही टूटीं और फिर नई कम्पनियाँ खुलीं। किन्तु मोतीलाल जोशी, फरीदून ईरानी, मास्टर फिदा हुसैन और कन्हैयालाल पवार उत्तर काल के व्यवसायी रंगमंच के उल्लेखनीय संचालक और निर्देशक माने गए। इन्होंने जीवनभर अपनी

कम्पनियों के लिए संचय किया तथा बनाया, आगा हश्र और राधेश्याम के नाटकों को प्रचार किया। इस काल में जो नये नाटककार आए उनके नाम हैं- नवीनचन्द्र चौधरी 'मधुर', रणधीर साहित्यालंकार, अम्बालाल, [illegible] 'आरसी', [illegible] अग्रवाल, जुगलकिशोर [illegible] 'पूरा', कन्हैयालाल 'कालिंग', [illegible] चतुर्वेदी, [illegible] उपाध्याय, पंडित [illegible] आदि। श्री [illegible] झा, [illegible], [illegible], [illegible], राधेश्याम [illegible], राजेश्वर सिंह (रमो नाहब), [illegible] 'नमो', [illegible] आदि कलाकार भी कुछ नाटकों के लेखक बने। मानिकलालजी ने भी कई नाटक लिखे, विशेषकर [illegible] तो वे स्वयं ही लिखा करते थे, और जीवन के अन्तिम दिनों तक नाटक लिखते रहे। आगा हश्र के बाद रणधीर साहित्यालंकार ने अपने नाटक 'अपनी की रानी' में नेपथ्य का प्रयोग किया। स्वतन्त्रता के बाद भी 'रानी की रानी' नाटक खेला गया और इस नाटक ने बहुत ही सफलता प्राप्त की। कुछ अभिनेता व अभिनेत्रियाँ इस नाटक से और भी अधिक प्रकाश में आए। [illegible] 'मधुर' ने भी कुछ [illegible] लेखकों को आमंत्रित किया और नाटक लिखवाए।

'मधुर' जी ने [illegible] तीस नाटक लिखे जिनमें [illegible] नाटक अंग्रेजी राज में बन्द किए गए। [illegible] सभी लेखकों के नाटकों में आम बोलचाल की भाषा का ही प्रयोग होता रहा, फिर भी हिन्दी अधिक थी।

फरदून ईरानी ने बम्बई में अपनी संस्था का हेड ऑफिस बनाकर गुजराती नाटक खेलना आरम्भ कर दिए। मानिकलालजी डागी ने अपनी संस्था में हिन्दी नाटक ही खेले। स्वर्गवास होने से कुछ वर्ष पूर्व उन्होंने गुजराती नाटक भी लिखे और खेले। गुजराती नाटक अन्य लेखकों ने भी लिखवाए जिनमें जोशी निर्भीक प्रमुख हैं।

व्यवसायी कम्पनियों के सामने सबसे बड़ी कठिनाई यह आती रही कि उनके नाटक देखने चतुर्थ श्रेणी के दर्शकों से लेकर प्रथम श्रेणी के दर्शक और उच्च कोटि के विद्वान और साहित्यकार भी आते थे। व्यवसायी रंगमंच को सभी के मनोरंजन का ध्यान रखना पड़ता था, इसलिए व्यवसाय की दृष्टि से नाटकों में अधिकतर आम लोकप्रिय की ही भाषा का प्रयोग किया जाता था। साहित्यिक नाटक किताबों की शोभा बढ़ाते हैं और साहित्य की दृष्टि से वह बहुत ऊँचे हैं फिर भी लगातार नाटक खेलने वाली व्यवसायी संस्था को केवल शुद्ध साहित्यिक नाटक खेलने में आय की दृष्टि से हानि होने का अंदेशा रहता था।

इन नाटक कम्पनियों के अतिरिक्त मानिकलालजी डागी ने दो-तीन नृत्य मंडलियों की भी स्थापना की। उनके नाम थे : (1) हैदिया डांस पार्टी, (2) पैराडाइज डांस पार्टी, (3) एलरीन डांस पार्टी। पर इन डांस पार्टियों को वह स्थान नहीं मिल सका जो पारसी कम्पनियों को दर्शकों द्वारा मिलता था। इसलिए इन डांस पार्टियों को बन्द करके मानिकलालजी ने और भी कितनी

नाट्य कम्पनियों को
तक चलाया। पारसी
में अभिनेता, नर्तक अ
इस क्षेत्र में बड़ी ख्या

नाट्य-साहित्य

इतने लम्बे काल
कि जिनको ही नाटकों
में लगभग दिल्ली प
लेखक [illegible]
[illegible] तथा [illegible]

स्पष्ट है, इस का
हश्र, राधेश्याम के
कृष्णचन्द्र जैसे, [illegible]
'नाटकों [illegible]

आश्चर्य न होना
जिन्होंने तीस से
आगा हश्र ने एकलौ
मुहम्मद ने शाह, [illegible]

प्रतिनिधि नाटककार

उत्कर्ष-काल के
में ये :

1. नारायणप्रसा
2. आगा हश्र
3. राधेश्याम क

ये इस अर्थ में और भी
पात्रों का प्रतिनिधि
रूप में तीनों धारा

1. पौराणिक
2. रोमानी
3. [illegible]

पर यहाँ यह बता देना
निश्चय नहीं है। वस्तु
हो, पौराणिक, सामाजि
चेतना और पुराण [illegible]

नाट्य कम्पनियों को जन्म दिया और उन्हें व्यावसायिक ढंग से जीवन के अन्त तक चलाया। मोतीलाल के छोटे भाई गणपतलाल डांगी भी इसी उत्तर काल में अभिनेता, नर्तक और गायक के रूप में मंच पर अवतरित हुए तथा उन्होंने इस क्षेत्र में बड़ी ख्याति अर्जित की।

नाट्य-साहित्य

इतने लम्बे काल तक इतनी नाटक कम्पनियों के अस्तित्व का अर्थ यह है कि कितने ही नाटकों की इस काल में आवश्यकता हुई होगी। लाहौर-सियालकोट से लेकर दिल्ली, पटना और कलकत्ता तक ओर, बम्बई-अहमदाबाद-सूरत से लेकर हैदराबाद तक दूसरी ओर इस विशाल हिन्दीभाषी क्षेत्र के प्रत्येक नगर, कस्बे तथा गाँवों-पड़ावों में एकसाथ कितने-कितने नाटक खेले जाते थे।

स्पष्ट है, इस काल का नाट्य-साहित्य अपार रहा है। 'बेताब', आगा हश्र, नारायणप्रसाद के अतिरिक्त इस काल के अन्य उल्लेखनीय नाटककार हैं कृष्णचन्द्र 'जेबा', सैयदी इरशाद 'अहसन' लखनवी, 'आरजू', अब्दुलकरीम 'बेकस', 'नादिर' बनारसी, इनायत मिर्जा 'जरफ' और हाफिज मुहम्मद।

आश्चर्य न होना चाहिए कि इन नाटककारों में अनेक ऐसे नाटककार हैं, जिन्होंने नौसिखिए से लेकर अन्त तक सम्पूर्ण नाटक लिखे हैं। उदाहरण के लिए आगा हश्र ने इकतीस, 'बेताब' ने इक्कीस, 'आरजू' लखनवी ने दस, हाफिज मुहम्मद ने नौ, सैयदी मियाँ 'जरफ' ने पचीस इतने लिखे।

प्रतिनिधि नाटककार

उन्नीसवीं-काल के अथवा वास्तविक पारसी थियेटर के प्रतिनिधि नाटककार ये हैं :

1. नारायणप्रसाद 'बेताब'
2. आगा हश्र
3. राधेश्याम कथावाचक।

ये इस अर्थ में और भी ज्यादा प्रतिनिधि हैं कि पारसी नाट्य-साहित्य की तीनों धाराओं का प्रतिनिधित्व और उनकी प्रतिभा इन्हीं तीनों के द्वारा हुई है। मुख्य रूप से ये तीनों धाराएँ अलग-अलग प्रवृत्तियाँ हैं :

1. पौराणिक
2. रोमानी
3. पुनरुत्थानवादी।

पर यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि ये तीनों प्रवृत्तियाँ सर्वथा एक-दूसरे से विलग नहीं हैं। वस्तुतः पारसी थियेटर के प्रत्येक नाटक में, चाहे वह ऐतिहासिक हो, पौराणिक, सामाजिक या राजनीतिक—प्रायः रोमानियत, पुनरुत्थानवादी चेतना और पुराण जैसा इतिवृत्त किसी न किसी रूप में एकसाथ होना जैसे

आधारभूत विशेषताएँ थीं।

इन विशुद्ध पौराणिक चेतना के नाटककार हैं नारायणप्रसाद 'बेताब', रोमानी चेतना के आगा हश्र, और पुराण, इतिहास (स्वर्णिम अतीत) तथा किंचित् सामाजिकता के परिदृश्य से पुनरुत्थानवादी भावधारा के नाटककार हैं राधेश्याम कथावाचक।

इन तीनों प्रमुख धाराओं के अतिरिक्त दो गौण धाराएँ और बह रही थीं। ये थीं सामाजिक और राजनीतिक प्रवृत्तियाँ थीं। हरिकृष्ण 'जौहर' जहाँ सामाजिक नाटकों के लिए प्रसिद्ध हैं, वहाँ कृष्णानन्द 'प्रेमी' राजनीतिक नाटकों के लिए।

नाट्य-लेखन की परिस्थितियाँ और उद्देश्य

पारसी थियेटर के नाट्य-साहित्य का—अर्थात् उसके विषयवस्तु, चरित्र, शैली, रचना-विधान, भाषा आदि के वैशिष्ट्य, अध्ययन के लिए हमें उसकी रचना-प्रक्रिया को अनुप्राणित-प्रभावित करने वाली उन परिस्थितियों तथा लेखन-परिवेश को ध्यान में लाना आवश्यक है।

यह काल एक ओर राष्ट्रीय चेतना तथा दूसरी ओर पुनरुत्थानवादी चेतना व समाजोन्नयन के संघर्ष का है। राष्ट्रीय चेतना के लिए जितना ही देशप्रेम, राष्ट्रप्रेम, शौर्य-त्याग वांछित था, उतनी ही हिन्दुत्व, आर्यभावना भी महत्त्वपूर्ण थी। साथ ही आत्मपीड़ित, दलित, गुलाम भारतीय जनता को दुख और उबकी को दुनिया की भी जरूरत थी। उसके आदर्श जहाँ एक ओर पुराण और इतिहास के स्वर्णिम अतीत में थे, वहीं उसकी उड़ान भारत से दूर, बहुत दूर, रोम, एथेन्स, ईरान, लन्दन, पेरिस और इस्तांबुल तक थी। दरअसल यही मायाजाल पारसी थियेटर का है, और इस काल में पारसी ड्रामा और थियेटर के माने था यही सब सरंजाम।

अतएव यह आश्चर्य की बात नहीं कि इस थियेटर में सबसे बड़ा, मान्य, मूल्यवान, अर्थवान नाटककार वही था, जिसके नाटक में ऊपर बताई हुई सारी चीजें एक साथ हों। 'बेताब', आगा हश्र, राधेश्याम अपने-अपने स्तर में सभी तरह महत्त्वपूर्ण और अर्थवान सिद्ध हुए।

ऐसे कथावाचक, उपदेशक, गायक ब्राह्मण राधेश्याम को इस काल-विशेष ने इतना महत्त्वपूर्ण नाटककार बनाया और इसे इतना सामाजिक महत्त्व दिया। आज यह बात आश्चर्यजनक-सी लगती है।

'भारत के महामान्य, पूज्यपाद पं० मदनमोहन मालवीय कभी किसी थियेटर नाटक कंपनी में नाटक देखने नहीं पधारते हैं, पर मैं अपनी कलाओं से उन्हें दो बार (दो नाटकों का अभिनय दिखाने) लाया। मेरे भाई इन्द्र (स्वर्गीय स्वामी कृष्णानन्द के सुपुत्र) ने तो 'श्रवणकुमार' नाटक की ओपनिंग सिरिमनी ही कराई है। 'ईश्वर-भक्ति' नाटक की ओपनिंग सिरिमनी मेरी प्रार्थना पर,

भारत के अध्येता, स्वामीवीर पंडित मोतीलालजी नेहरू ने की है। वह भी उस साल, जिस साल वे इंडियन नेशनल कांग्रेस के प्रेजीडेंट थे। उसके अतिरिक्त देश के अनेक तेजस्वी, मानवतावादी तथा उच्च धर्मावलम्बी विद्वान्, मंत्रिवर्ग एवं राजा-महाराजाओं ने अनुरोध एवं आग्रह-भवन पर पधारकर मुझे आभारी करते रहे हैं।...[1]

इससे स्पष्ट है कि उस समय देश की राजनीतिक, सामाजिक चेतना को वहन करने वाली संस्थाओं व सभाओं में पारसी थियेटर और उसका नाटककार कितना गौरवपूर्ण महत्त्वपूर्ण था। यह उस काल की भावात्मक-एकता एवं सौहार्द का प्रतीक ही नहीं, प्रमाण भी था।

थियेटर कम्पनी की उनकी नाट्य-लेखन की व्यवहारिक धुरी थी। वह नाटक में कम्पनी का मुनीम था, पर सम्बन्ध और पद के स्तर से वही अब कम्पनी का आधार स्तम्भ था—क्योंकि अब वह थियेटर की दुनिया में नाटककार, निर्देशक, संगीतज्ञ, गायक तथा कभी-कभी मुख्य पात्र का अभिनेता भी बन चुका था। अब तक पारसी थियेटर में अंग्रेज कलाकार, पटकथाकार, संगीतज्ञ—इन सभी रूपों में बहुत दूर चले गए थे; अतएव अब पारसी थियेटर और उसका पूर्ण स्वामित्व कम्पनी के मालिक और नाटककार के अधिकार में आ गया था।

इस अवधि में कम्पनी में उनके नाटककार—जैसे आगा हश्र और राधेश्याम—को जो सम्मान और दर्जा प्राप्त था, उसका अनुमान कम्पनी के एग्रीमेंट में लगाया जा सकता है :

1. नाटककार का कम्पनी से वैधानिक सम्बन्ध था।
2. कम्पनी के भीतर मालिकान का हुक्म चाहे रद्द जाए, पर नाटककार का हुक्म नहीं टलता था।
3. सम्बन्ध वैधानिक था, पर कम्पनी में तभी रहना पड़ता था, जब कि उसका नया नाटक खेल होता था। बाकी महीनों में आजाद।
4. कम्पनी में आने-जाने के लिए पत्र नौकर के मार्कण्ड कलाम का भाड़ा किराया था। इसके अलावा रहने की आरामदा (बिजली-पंखा आदि सहित) मकान दिया जाता था। भोजनादि की पत्र स्वयं सौंप भला दिया जाता था।
5. नाटककार की कुल तनख्वाह [illegible] रुपये महीने। [illegible] माहवार उसके सहायक थे।

उन प्रावधानों में नाटककार और उसकी पत्नी परिचारिकाओं (रंगमंच, नाटक-सम्बन्धी) पर ही प्रकाश नहीं पड़ता, अपितु उनके उनके कार्यक्षेत्र, उनकी

1. 'मेरा नाटक-काल', [illegible], [illegible], 1957 का संस्करण, पृष्ठ सं० 203-204
2. वही पृष्ठ 20 के आधार पर

[illegible] तथा उद्देश्यों के भी पर्दे उठते हैं।

इसके नाटक-लेखन से नाटक कम्पनी का सफलता से चलते रहना, व्यापार में उत्तरोत्तर उन्नति होते रहना नाटककार की पहली और बुनियादी जिम्मेदारी थी – ऐसी जिम्मेदारी जिसपर उनकी नाटकीय रैनियत और उनकी साहित्यकला कलाकारी की बुनियाद खड़ी होती थी।

यह व्यावसायिक जिम्मेदारी जिसका ही प्रत्यक्षीकरण दर्शक समाज की रुचि और उसकी भावनाओं में जुड़ता है, इस रुचि और भावना में जो मजबूती थी, उसीका प्रतिफलन इस काल के नाटकों में विषय-वस्तु बनकर आया था।

[illegible] इस के अतिरिक्त 'वेनाथ' और राधेश्याम के नाटक-लेखन के कुछ ऐसे भी उद्देश्य थे, जो उसे प्रतिष्ठित और जनप्रिय बनाने में काफी मददगार थे। "मुझे हर्ष है कि मैंने इन नाटकों द्वारा हिन्दी की सेवा की है, हिन्दुत्व को आगे बढ़ाया है और धार्मिक भावों का प्रचार किया है।"[1]

हिन्दी भाषा, हिन्दुत्व का गौरव, धार्मिक भावों का प्रचार– यह उद्देश्य नाटक लेखन का किसी भी था और वह उस काल की चेतना को छूने वाला भी था।

पौराणिक नाटक

इस काल की समूची चेतना को अभिव्यक्ति देने में 'पौराणिकता' ही सबसे अधिक उपयुक्त थी। यही कारण है कि उस काल में पारसी नाटकों के अतिरिक्त जो साहित्यिक नाटकों की धारा चल रही थी, उसका भी मुख्य कथ्य यही है। बद्रीनाथ भट्ट के 'चन्द्रावली-नाटक' और 'तोतारानी' मैथिलीशरण के 'नहुष' और 'तिलोत्तमा', विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक का 'भीष्म' और लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी का 'कृष्णार्जुन-युद्ध', सुदर्शन कृत 'अंजना', गोविन्दवल्लभ पंत कृत 'वरमाला' और जयशंकर 'प्रसाद' कृत 'जनमेजय का नागयज्ञ' आदि इस काल के कुछ प्रतीय नाटक हैं।

पारसी रंगमंच के पौराणिक नाटक इस साहित्यिक धारा को जिस और संरचना के स्तर से प्रभावित करते रहे हैं– इसे भूलना न होगा, बल्कि यदि यह कहा जाए कि साहित्यिक पौराणिक नाटक पारसी रंगमंच पर खेले जाने वाले पौराणिक नाटकों की प्रतिक्रिया में लिखे जा रहे थे, तो असंगत न होगा।

इसीलिए दोनों में एक बुनियादी अन्तर है। साहित्यिक पौराणिक नाटकों में चूंकि आधुनिक भारत को कहीं न कहीं दिखाना उनका उद्देश्य था, इसलिए उनकी रचना-दृष्टि में लौकिक तथा ऐतिहासिक तत्वों पर विशेष बल है; ठीक इसके विपरीत पारसी रंगमंच के पौराणिक नाटकों में अतिमानुषिक घटनाओं

1. 'चार नाटक-काल', राधेश्याम कथावाचक, संस्करण 1957, पृष्ठ 204

तथा अप्राकृतिक प्रसंगों तथा कार्यों पर अधिक बल है। इसका कारण यह है कि पारसी रंगमंच के ये नाटक उस विशाल हिन्दू समाज के दर्शकों के लिए रचे गए थे, जो अपने देवी-देवताओं की, उनकी महिमाओं की, उनकी अपरा शक्तियों को प्रत्यक्ष देखना चाहते थे। मौलिक तत्त्व के लिए इन नाटकों में समानान्तर रूप से एक दूसरी हल्की-सी कथा का प्रसंग चलता रहता था, जिससे दर्शकों को मनोरंजन प्राप्त होता था और साथ-साथ पुराण से, प्रसंग से अभीप्सित के अन्तर को भी अनुभव कराया जाता था। उदाहरण के लिए राधेश्याम अथवा 'बेताब' के किसी भी पौराणिक नाटक को लिया जा सकता है जैसे, 'बेताब' कृत 'महाभारत' नाटक में गोपी वाला भाग राधेश्याम कृत 'वीर अभिमन्यु' में राजा चन्द्रसिंह और सुन्दरी का प्रसंग।

पारसी रंगमंच की पौराणिक नाट्यशैली इतनी बलवती और परम परिनिष्ठित पाने वाली थी कि इसके अन्तर्गत प्रायः सभी प्रमुख नाटककार आते हैं, जैसे नारायण प्रसाद 'बेताब', राधेश्याम, आगा हश्र, हरिकृष्ण 'जौहर', मूलचन्द 'सैदा', गोविन्द 'हमदम', तथा कृष्णानन्द 'प्रेमी'।

इस क्रम के समस्त पारसी रंगमंच के पौराणिक नाटकों को पढ़कर यह बात सबसे अधिक स्पष्ट होती है कि इनका जैसे चरम उद्देश्य था दर्शकों को पौराणिक कथा, घटनाएँ, चरित्र-दर्शन कराकर मनोरंजन कराना और उन्हें हिन्दू धर्म विषयक आदेश देना। धर्म के अलावे एक पक्ष के अतिरिक्त अन्य पक्षों पर एक ही नाटक में उपदेश देना जैसे इनका मुख्य कार्य था। उदाहरण के लिए, 'पत्नी-प्रताप' अथवा 'सती अनुसूया' नाटक की भूमिका में 'बेताब' लिखते हैं कि इनके नाटक का उद्देश्य सती के गौरव की प्रतिष्ठा करना है। इसी प्रकार एक ही पौराणिक कथा में कई संवेदनाओं, उद्देश्यों की पूर्तियाँ भी साथ जाती हैं। 'भक्त प्रह्लाद' में राधेश्याम कथावाचक एक ओर ईश्वर-भक्ति पर जोर देते हैं, तो दूसरी ओर महात्मा गांधी के अहिंसा और सत्याग्रह के सिद्धान्त को परोक्ष रूप से प्रतिपादित करते हैं। साथ ही स्त्री शिक्षा का भी प्रचार उनका उद्देश्य-सा लगता है।

पौराणिक नाटक के कथानक

पारसी रंगमंच के नाटक की कथा मुख्यतः पुराण से उठाई जाती रही है कि अपार हिन्दू दर्शक समाज उनके नाम से आकर्षित होकर आता था। उसे भरोसा था कि वह स्वीकार करता था। उस कथा को सुनने और उसके आधार पर मनोरंजन करने में उसे तृप्ति थी। वह कथा उसके चरित्र तथा सांस्कृतिक गौरव के बोध को परिपोषित देती थी। फलतः इन नाटकों में पुराण की मूल कथा, प्रसंग अथवा प्रकरण और कथानक इसी तरह लिया गया किसी हेर-फेर के बिना ही जाती थी। यदि अथवा न कह नाटक की वस्तु न होकर नहीं पुराण की उपबृंहणात्मक कथा होती थी। इसलिए इन पौराणिक

नाटकों में कथाशैली की विशेषता को नहीं देखना चाहिए। इस अर्थ में पारसी रंगमंच के ये नाटक 'कथानाटक' कहलाए जाने चाहिए, 'ड्रामा' नहीं। इसलिए भी नहीं कि इसमें कथानक-योजना जैसी कोई दृष्टि नहीं है। कथा को ज्यों-की-त्यों रूप में ले लेना, घटनाओं और कार्यों को उसी तरह नाटक में रख लेने का पक्ष यह भी हुआ कि इनमें न कोई अर्थ की नवीनता उत्पन्न हुई न किसी नई व्याख्या का आभास ही आया। केवल चूंकि नाटक, एकलनी होती थी, और उनको उसी घराने से नाटक में रख लिया जाता था पहले नाट्य रूपांतर, एकलनी और नाच इतिवृत्त सिद्ध होते हैं।

व्यापक स्तर पर इन 'कथानाटकों' को 'नाटक' बनाने के लिए नाटककारों ने एक नये कथा-पाठ का प्रयोग किया है। मूल पुराण कथा के समानान्तर एक या एक से अधिक कल्पित कथाओं की उद्भावना। उदाहरण के लिए, 'बेताब' रचित 'सती अनुसूया' या 'पत्नी-प्रताप' में मूल कथा पुराण की अनुसूया की है, परन्तु इसे 'नाटक' बनाने के लिए 'बेताब' ने दो कथाओं की उद्भावना की है। सती अनुसूया के प्रसंग का चित्र बनाने के 'बेताब' के अनुकूल और विपरीत, इन दो कथास्थितियों की इस तरह सृष्टि की है :

(अ) अनुसूया की ही तरह एक कल्पित सती देवी की कथा, जो अपने पतिव्रत-धर्म के बल पर मृत्युंजय को जीत लेती है।

(ब) और दूसरी, अनुसूया के प्रसंग से बिल्कुल विपरीत एक व्यभिचारिणी स्त्री का प्रसंग जो अपने अनेक पापकर्मों के कारण दुख भोगती है।

इस प्रकार नाटककार ने इन कल्पित कथा-प्रसंगों या उपकथाओं से नाटक को कथा-स्तर से ऊपर उठाकर कथानक का स्तर देना चाहा है। इससे नाट्य में नाटकीयता उत्पन्न हुई है। अनुसूया की पौराणिक कथा में इससे एक नया महत्त्व तथा प्रभाव आया है।

'बेताब' के अन्यान्य प्रसिद्ध नाटक 'महाभारत' में अज्ञात जीवन-प्रसंग में लेखक युधिष्ठिर का इन्द्र के साथ नरक-भ्रमण तथा की अत्यधिक प्रचलित पुराण की कथा है। पर इसे नाटक बनाने के लिए 'बेताब' ने जैसा चमत्कार के एक मनोरंजक कथानक से इसे गठित किया है। 'महाभारत' नाटक इस नेता-कथा प्रसंग के कारण इतना विवादास्पद और जनप्रिय हुआ कि इसपर परस्पर-विरोधी विचार और प्रतिक्रियाएं चार वर्षों तक (1913 से 1917 ई० तक) दर्शक समाज में फैली रहीं। 'कुछ लोग तो इसे चरित्र में अलग मानते हैं, कुछ नजीर के प्रसार। अस्तु, नाटकों के व्यापारिक उद्देश्यानुसार नीच-चार वर्ष एक इस की इच्छापूर्ति करके मैंने उस विवादास्पद 'बाण की सती गोपी' की कथा ने बदल दिया।'[1]

1. 'महाभारत', लेखक : 'बेताब', भूमिका से

इन नाटकों के मूल कथानक पौराणिक होने के साथ इनमें कई कथा-प्रसंग दो कारणों से, और भी नहीं कर पाते थे। राष्ट्रीय जागरण के भीतर जो हिंदू-पुनरुत्थान हुआ था, उसमें प्राचीन कथा में रुचि की हेर-फेर उस समय स्वाभाविक ही थी। दूसरे, ये सारी नाट्य कम्पनियाँ अपनी व्यवसायिकता के लिए अधिक हिंदू दर्शक जनता को उसी कथा की ही बुनियाद पर खींचती थीं। फिर भी दर्शक को कुछ और नई चीजें चाहिए थीं तथा नाटककार को भी अपनी मौलिक प्रतिभा दिखाने के लिए गौण कथाओं की सृष्टि करनी ही थी।

क्या वे नाटककार मूल धार्मिक कथाओं को छोड़कर कुछ नई उद्भावनाएँ कर कुछ नया धर्म-प्रसंग नहीं खोज सकते थे? पर आज इसकी दूर से उस पीछे पीछे पर ध्यान देने से यह स्पष्ट होता है कि ऐसा दो कारणों से संभव नहीं हुआ। एक तो दर्शक समाज जड़ धार्मिकता और कट्टर विचारों वाला था, दूसरे व्यावसायिकता का बहुत दबाव था—और इस दबाव पर कम्पनियों के मालिक तथा नाट्यशालाओं का इतना प्रभाव था कि कोई भी नाटककार न पूरी तरह से पौराणिकता पर ही ध्यान केन्द्रित कर कार्य कर सका, न उससे सर्वथा हटकर कुछ नया रच सका। इस तरह नाटककारों को अपने अन्य उद्देश्यों को ध्यान में रखकर नाटक लिखना पड़ा, वे नाटक के उद्देश्य से नाटक नहीं रच सके।

नाट्य : उद्देश्य और साधन

व्यापारिक और व्यावसायिक उद्देश्यों के लिए जो साधन इस काल के नाटककारों को अपने कृतित्व में इस्तेमाल करने पड़े, वे अत्यन्त दिलचस्प हैं। ये नाटककार जानते थे कि जहाँ जनता का एक बड़ा भाग पौराणिक कथानकों, धार्मिक विचारों, उपदेशों में आनन्द लेता था, वहाँ जनता का उससे ही बड़ा भाग ऐसा था जो पुराण के नाम पर शुद्ध मनोरंजन के लिए नाटक देखने आता था। इस वर्ग को ध्यान में रखकर नाटककारों ने जिन साधनों का इस्तेमाल किया है, उन्हें इन्हीं बिन्दुओं पर रखा जा सकता है :

1. कल्पित धर्मकथा-प्रसंग
2. विशुद्ध लौकिक कथा प्रसंग
3. अस्वाभाविक-आश्चर्यजनक चरित्र
4. अत्यन्त साधारण, निम्नकोटि का चरित्र
5. अतिप्राकृतिक प्रसंग और दृश्य-विधान
6. अद्भुत रोमांचकारी दृश्य-विधान।

उक्त बिन्दुओं से प्रत्यक्षतः प्रकट है कि इनमें दो विरोधी नाट्य-परम्पराओं में एक सम्पन्न सामंजस्य तैयार किया गया है। इनमें अब हमें परस्पर विरोध भले ही दिखे, पर उस काल के उस वर्ग के नाट्य-लेखन में यह स्वाभाविक तथ्य

के रूप में स्वीकार किया गया था। दो परस्पर-विरोधी दर्शक समाजों को ध्यान में रखकर इन नये साधनों की ढूंढना और पौराणिक नाटकों के फिट करना, उस काल के नाटककार की बड़ी प्रतिभा मानी जाती थी।

अवान्तर से इन नाटककारों का एक और उद्देश्य था 'हिन्दू धर्म और हिन्दी की सेवा'। इस उद्देश्य को 'बेताब' और राधेश्याम ने बार-बार दुहराया है। और इसीके लिए उन्हें उस काल के महान धार्मिक-राजनीतिक-सामाजिक नेताओं-विभूतियों, जैसे मदनमोहन मालवीय, स्वामी श्रद्धानन्द और उनके पुत्र इन्द्र और श्री लाल नेहरू आदि से समय-समय पर स्नेह-सम्मान और संरक्षण प्राप्त हुआ है।

"मुझे हर्ष है कि मैंने इन नाटकों द्वारा हिन्दी की सेवा की है, हिन्दुत्व को आगे बढ़ाया है और धार्मिक भावों का प्रचार किया है ....."

"जब यह नाटक (महाभारत) रंगशाला में आया तो गन्ध के भूत बन के अनन्त के एकछत्रेश्वर पर विजय की।...अंग्रेजी नाटकों से घृणा करके जिन सुशिक्षित महानुभावों ने नाटक न देखने की प्रतिज्ञा कर रखी थी, उनकी प्रतिज्ञा टूट गई...नाटकों की कायापलट कर देने में 'मगर' और 'खंजर' का स्थान 'कल्लू' और 'अम्बू'...तथा हिन्दी-प्रचार में मदद अवश्य मिली है....."

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए जो साधन नाटक-लेखन में इस्तेमाल किए गए, उनसे कथा और चरित्र में दोनों महत्त्व तत्त्व अनावश्यक होने के लिए स्वभावतः मजबूर हुए। दोनों के स्वरूप कथा-साहित्य में व्यवहृत वस्तु तथा चरित्र के अनुरूप होने शुरू हुए। उनपर उपदेश का अति आग्रह जहां नाटक को अति-नाटक बना रहा था (यद्यपि उसपर कट्टर हिन्दू दर्शक समाज मुग्ध था) वहीं यह तत्त्व नाटक को उसके दृश्यत्व से च्युत कर, उसके कार्यत्व में उसे कटकर उत्तरोत्तर उसे वाच्य या पाठ्य बना रहा था।

सम्भवतः नाटक का यही वाच्य या पाठ्य तत्त्व उस काल के साहित्यिक नाटकों को इस तरह परोक्षतः प्रभावित कर रहा था, और हिन्दी के साहित्यिक नाटकों की एक पाठ्यधर्मी नाटक-परम्परा इस तरह आगे बढ़ रही थी।

खैर, इस उद्देश्य का और तदनुसार इसके लिए इस्तेमाल किए गए भाषा-शैली के साधन का अध्ययन बड़ा मनोरंजक है।

राधेश्याम और 'बेताब' दोनों नाटककारों ने विशुद्ध हिन्दी-प्रेम से अपने नाटकों में संवाद के स्तर पर बड़ी अस्वाभाविकता ला पैदा की है और साथ ही भाषा पर मनमानी ज्यादती किया है। उन्हें जबान और बोलचाल की हिन्दी के आधार पर मीठे-मीठे अर्थ का रहा था, उसपर सहसा विश्वास (कृत्रिम)

1. [illegible]

2. [illegible]

प्रसिद्ध अभिनेत्रियाँ

हिन्दी शब्दों
शेर में और
हिन्दी के बीच
एक उदाहरण

रोमानी

पारसी
दूसरे स्वर
दर्शक
लेता था।

पारसी
के अन्दर
साहूकार
जैसे-जैसे
शृंगारिक
आधार पर

कथावस्तु-

कथावस्
बनाया है :

फारसी
अर्थ

अंग्रेजी
आर्थिक
मुख्य
पूरी हुई।

पारसी
पारसी
अंग्रेजी

हिन्दी शब्दों ने एक अजीब विरोधाभास पैदा किया। परन्तुगात एक संवाद उर्दू शेर में और दूसरा नया संवाद हिन्दी गद्य में, और हिन्दी गद्य में भी तत्सम हिन्दी के बीच तत्सम उर्दू के शब्द। 'महाभारत' के दूसरे अंक के दूसरे दृश्य का एक उदाहरण देखिए :

> दुर्योधन : कहने से हुक्म और है तलवार म्यान में।
> जानी है दिल में लीक खिंची आसमान में।।
> अगर मेरे मुहावले की ताब नहीं है तो साफ-साफ कहकर मेरी शरण में आओ। अपनी लभाभ लौंडे पेट में काओ और इस करुणापूर्ण कायरी को वीररस के शब्द में न छुपाओ।[...]

रोमानी नाटक

पारसी रंगमंच के नाटकों में शृंगारी, लौकिक या रोमानी नाटक का एक दूसरे स्तर पर अत्यन्त उल्लेखनीय स्थान है। इसके भीतर से उस काल का दर्शक वर्ग स्वच्छन्दता का, रूमानियत का, अतृप्त कामना का आनन्द लेता था।

पारसी थियेटर अपने जीवन के प्रथम चरण में वस्तुतः इसी रोमांस भाव के अन्दर से विकसित हुआ था और उसके बाद इस काल तक आते-आते यह नाट्य-भाव और भी अधिक लोकप्रिय हो चला था। विदेशी प्रभाव और दबाव ऐसे-वैसे लोग लोग चल रहे थे, जैसे-जैसे फारसी प्रेमाख्यानों, अंग्रेजी के लौकिक-शृंगारिक नाटकों, शृंगारिक इन्द्रकथाओं तथा लावनियों, ख्यालों आदि के आधार पर नाटक-लेखन की प्रवृत्ति बढ़ रही थी।

कथावस्तु-विधान

कथावस्तु के लिए इन नाट्यकारों ने मुख्यतः इन बिन्दुओं से अपना आधार बनाया है :

फारसी प्रेमकथाओं से : जैसे 'लैला-मजनूं', 'शीरीं-फरहाद', 'अलीबाबा' आदि।

अंग्रेजी के लोकप्रिय नाटकों से : जैसे 'सिंडरेला', 'सादुल्ला', 'जोसिफ-मुन', 'रहस्य-दुर्ग', 'मजेदार मर्द', 'मूल का मूल' आदि।

मुहर्रम की धार्मिक कथाओं से : 'कासिम', 'शाहजादा', 'मजहबी की कहानी', 'दुर्गेश नन्दिनी', 'सिकन्दर महान', 'अहीरानी' आदि।

[illegible] कथावस्तु से : जैसे 'मायाजाल', 'आग का [illegible]', 'दिल की आग', 'मुकद्दर' आदि।

इन सभी आधार बिन्दुओं से विभिन्न नाटकों [illegible] का [illegible] था। फारसी प्रेमकथाओं तथा मुहर्रम की [illegible] और अंग्रेजी के प्रसिद्ध नाटकों के [illegible] लौकिक नाटकों के [illegible]

माल हुआ है वह अपने स्वरूप में भाषा-पक्ष और भावना में अस्वाभाविक-सा है। विधान में यह कुछ-कुछ शेक्सपीयरी त्रासदी के वस्तु-रूप से मिलता है। 'फरलन व मोहराब' और 'यहूदी की लड़की' तथा 'शीरीं-फरहाद' में पूरी तैयारी के बाद अचानक हर तरह से दर्शक को तैयार करके, फिर अचानक का उद्घाटन किया गया है। पर उद्घाटन शेक्सपीयर के अर्थों में नहीं, केवल कथावस्तु में एक विशेष घटना के रूप में है क्योंकि नाटक में सारा ध्यान नाटकीयता पर होता था, उसकी प्रतीति और स्वाभाविकता पर नहीं। नाटकीय बिन्दु भी केवल कहीं एक रहस्य पर आधारित होता है जैसे 'फरलन व मोहराब' में। स्वयं अपना नाम नहीं बताता। अर्थात् उतनी बड़ी चलता रखी हुई है।

सामाजिक नाटक कथावस्तु से निर्मित नाटकों में यह विधान पहले से मिला है। पहले नाटकों का प्रारम्भ अचानक-अप्रत्याशित रूप से प्रायः होता है। यहाँ तक कि हिन्दी के भी सामाजिक नाटकों में वही होता है। 'कुलीनता' और 'आँख का नशा' जैसे नाटकों में अचानक नेपथ्य वंशी के गायन तथा नर्तकियों द्वारा दीप-वन्दना से इनके दृश्य खुलते हैं, और फिर इनके उपरान्त पृथक्पृथक् कथाओं का पहला अंक और पहला तीन चार दृश्य में खुलता है; इन नाटकों में पहले पात्रों के आपसी ही द्वन्द्व कथानक का संघर्ष और रहस्य कायम किये, अकस्मात् हुआ अप्रत्याशित से भरपूर होता है। इसका एक विशेष कारण यह था कि ये नाटक कथावस्तु पर उतने आधारित न होकर अपने नाच-गाने, मसखरियाँ दृश्यों तथा चालाकी भरे कारनामों पर खड़े होते हैं।

नाट्य : उद्देश्य और साधन

उद्देश्य वही समान था—नाट्य-पक्ष की ये अधिक से अधिक धन कमाना। पर इस कोटि के नाटकों में तुलनात्मक अन्तर इस सम्बन्धित थे, इसलिए उनके उद्देश्यों में कहीं न कहीं एक उद्देश्य अन्य प्रधान का था। विशेषकर पहले प्रकार के नाटकों में इस नाट्य-प्रकाश पर हुए का ध्यान उल्लेखनीय है। 'फरलन व मोहराब' और 'यहूदी की लड़की' में कथावस्तु, पात्रों और नाटक के नाटकीय रहस्य-विधान पर गम्भीरता से ध्यान दिया गया है। एक अंक के दूसरे अंक में नाटक की गति पर कई प्रयासों से भरपूर प्रयास किया गया है और नाटक को 'ट्रैजेडी' बनाने में मुख्य रूप और चरित्र-संघर्ष पर बल दिया गया है; और यह बल कथानक से कहीं अधिक दिया गया है और सभी नाटक अति-नाटकीय होने की ओर विवश हैं।

चरित्र पर जो विशिष्ट बल और ध्यान दिया गया है, वहाँ दिया है, और जिसमें एक अलग तरह के चरित्रों की सृष्टि पारसी थिएटर में हुई है, उसपर ध्यान देना आवश्यक है। वस्तुतः यह सारा काल चरित्र पर ध्यान केन्द्रित करने का काल है। दूसरे, इस काल में मानवीय चरित्र के आदर्शों को लेकर जो कहानी-

भीतरी संघर्ष हुआ है, उन सबका परिफलन और अंकन, नाटक में निर्मित चरित्रों को देखकर होता है।

इन चरित्रों में बुनियादी रंग से अपने देश, अपनी शान, अपनी बात और अपनी शक्ति पर नाज है और इसके लिए इनका कोई भी त्याग, कोई भी बलिदान मामूली बात है। ये सब नाटकीय विशेषताएँ जैसे इनके लिए सहज हैं। साथ ही इन नाटकों में किन्हीं आदर्शों को लेकर भयानक संघर्ष भी है। वह आदर्श चाहे प्रेम-मुहब्बत का हो, चाहे देश की आन का हो। इन्हें ये खान-कर नाटकीय स्थिति में आते इन नाटकों को देखकर उनके चरित्रगत संघर्ष और मनोवृत्ति का दृश्य दिखाया है। ये व्यक्ति, प्रतिनिधि और देश-कौम के प्रति कई अवसरों पर हमारे सामने आते हैं और अपने व्यक्तित्व को हमारे मन में मूर्त्त करते हैं। यह मूर्त्ति 'काले' और 'सफेद' दोनों भावों में प्रकट है।

इन नाटककारों ने जिन रंग-सामग्रियों को जिस तरह इस्तेमाल किया है, उनका विश्लेषण-परीक्षण हम आगे स्वतन्त्र रूप से करेंगे, यहाँ हम उन्हें अभी केवल तात्त्विक रूप में ही देख रहे हैं।

भाषा-संवाद में ये नाटक अपनी रंगशैली के अनुरूप अलग पुट और धुनी हैं। पद्य और गद्य, दोनों कहना उचित होगा, गायन और संवाद इन दोनों रूपों पर इनकी भाषा-शैली पारसी थियेटर के प्रतिनिधि भाव की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति देते हैं। जैसी नाटक की यथावस्तु है, स्थितियाँ और पात्र हैं, ठीक उसी के अनुसार भाषा-संवाद, तहरीर और बोलचाल की भाषा में बदलती चलती है। 'रुस्तम व सोहराब' में ड्रामा का तत्त्व सबसे ज्यादा गहन और तीव्र है। यह तूरानी बनाम ईरानी के संघर्ष पर थमा है, साथ ही मुहब्बत और जंग के भी संघर्ष पर। फलतः इस नाटक की भाषा शुद्ध उर्दू, तत्सम शब्दों से भरपूर है, साथ ही उससे इसका 'ड्रामा' भी उजागर है। जो कार्य या बात तेरो-जारगी के सहारे प्रकट की जा रही है, वही धीन उसीके सुर-ताल और शैली के अनुरूप गद्य में है :

'रुस्तम व सोहराब' में तहमीना अपने पुत्र सोहराब से कह रही है :

(बाब दूसरे के तीसरे सीन में)

तहमीना : सोहराब, ईरान की सरजमीन जादू की जमीन है, यहाँ आते ही इन्सान अपने प्यार और अपनी पिछली मुहब्बत को भूल जाता है। मुझे खौफ है कि यहाँ से जाने के बाद अपने बाप की तरह कहीं तू भी न तोड़ तहमीना को न भूल जाय।

तेरी सूरत, तेरी बातें मेरे दिल को सहारे हैं।
तुझी को देखकर दुनियाँ में इतने दिन गुजारे हैं
कलेजे से लगा लेने को पाऊँगी कहाँ तुझको
करेगा कौन चाँद मुझसे कहेगा कौन माँ मुझको ?

'पहुँची की लड़की' में दृश्य महल से लेकर रास्ता, मकान, डाकखाना,

इन्दरसभा' और कामिक महल तक फैला है। इसीके अनुरूप इसमें अंग्रेज, यहूदी, धनीमानी हुक्काम और पामूली हिन्दू-मुसलमान शरीक आते हैं, इसलिए इस नाटक की भाषा 'पंचित' है। मदेलियों के दौर जहां ब्रजभाषा के नजदीक है, वहां इसके कामिक बोलचाल की हिन्दी-उर्दू जबान में है। और जहां मारकस, कैरिलिन, राहेल और डेसिया के बीच ड्रामा चलता है, वहां की भाषा उतनी ही नाटकीय, उतनी ही शुद्ध उर्दू जबान में उभरती है।

आरंभ पर्दे में, बगीचे के दृश्य में मारकस यह गेय संवाद कहता हुआ आता है :

> जरूरत क्या है उन्हें तेगोतबर की
> अदा काफी है इक तिरछी नजर की।
> वह क्या जाने किये बैठे हैं उल्फत
> खबर क्या है उन्हें दर्दो-जिगर की।

ठीक इसी तरह 'खूनगुरत बला' नाटक मुसलमानी पात्रों तथा उनकी जिन्दगी और समाज पर आधारित होने के कारण जहां उर्दू जबान में है, वहां 'आंख का नशा,' हिंदू चरित्र तथा उनकी जिन्दगी और समाज पर निर्मित है और इसकी भाषा बोलचाल की उर्दू-हिन्दी है। इसके सारे गाने ब्रजभाषा में हैं और इसकी दुनिया उस समय का हिंदू या मुस्लिम समाज है। इसके भीतर से उस समय का समाज इस तरह प्रतिबिम्बित है कि उसके मन-प्राण का कुछ अंदाज मिल जाता है, साथ ही उस काल के दर्शक की पसंद और मनोरंजन-स्तर का भी अपेक्षा मिलता है।

इन सामाजिक नाटकों का वातावरण मुख्य तौरपर, छेड़छाड़ और रोमानी व्यवहारों से भरपूर है। जिस प्रेम को यहां विषय बनाया गया है, वह स्वभावतः, लौकिक और पूर्णतः स्वच्छन्द है। शायद इसीलिए मूल कथा के साथ जो कामिक प्रसंग यहां आते हैं उनका दृश्य उसीके अनुरूप यहां और अधिकतर भड़कीला होता है।

इन नाटकों में सम्भवतः तभी इन दोनों स्थितियों को एक नाटकीय सम देने के लिए प्रायः घटना-वैचित्र्य और रोमांचकारी दृश्यों की अवतारणा करनी पड़ी है।

रोमानी नाटक-प्रवृत्ति के प्रायः सभी नाटकों में संरचना-सम्बन्धी कुछ बातें समान रूप से मिलती हैं। सभीमें अतिनाटकीय प्रसंगों की भरमार है। इनमें महबूबा या प्रेमिका से पहली नजर में यह रिश्ता कायम हो जाता है। इनका मिलन निश्चय ही किसी रमणीय या एकांत स्थान में होता है और इसमें नजरों से ओझल हो जाने पर, फिर इनके बीच 'रोमियो-जूलियट' या 'आथेलो' से कुछ मिलता-जुलता संघर्ष शुरू होता है। शादी से पहलवाले आती है, तरह-तरह से, कई तरीकों से, अलग, तमाशा, परेशानी हैरत आदि प्रकट होते हैं। फिर दोनों की बड़ी-बड़ी मनोदशाएं होती हैं। युद्ध,

तैयारी, उद्यम, न जाने क्या-क्या करने पड़ते हैं। और अंत में या तो सब बाधाएँ दूर हो उनका विवाह-मिलन होता है, या सदा के लिए करुण विछोह: जैसे 'लैला-मजनूं', 'शीरीं-फरहाद', 'सस्सा व सोहराब' में। इन नाटकों में दैवी घटनाओं, संयोगों का भी खूब उपयोग है। प्रायः हर्षों की सीमा में कुछ टोटके, करिश्मे बार-बार यहाँ आते हैं, जैसे भूत, जादू, सिद्ध, ज्योतिष आदि।

पुनरुत्थानवादी नाटक

इस धारा और प्रवृत्ति के अन्तर्गत 'उत्साह' और 'राधेश्याम' आते हैं। पौराणिक-ऐतिहासिक दोनों प्रकार के नाटकों की मूल प्रवृत्ति यही सांस्कृतिक पुनरुत्थान की होती थी। इसके अन्तर्गत हिन्दू आदर्श नारी, त्याग-बलिदान, धर्म तथा स्वाधीनता की धर्मनिष्ठा, सामाजिक आदर्शों के प्रति सच्ची अनुपम आस्था—ये सारे तत्त्व प्रमुख रूप से यहाँ उभारे गए हैं। साथ ही इस तरह के नाटकों में इस बात पर मुख्यरूप से बल दिया गया है कि उन्हीं आदर्शों का फिर से यहाँ नवोत्थान हो, तभी राष्ट्रीय सम्मान में भारतवासियों की विजय होगी और उन्हें अपना खोया हुआ प्राप्त होगा। वही राम-रावण जैसा युद्ध, अर्जुन जैसा वीर, पांडवों जैसा राज्य।

'उत्साह' का 'पाटलदेवी', 'राधेश्याम' का 'वीर अभिमन्यु', 'आगा हश्र' का 'चन्द्रहास' अर्थात् 'कला, सुरसती' जैसे चेतना और उद्देश्य पर निर्मित हैं, उनमें इसके वही सारे आदर्श किसी न किसी तरह से उपस्थित हैं। इन नाटकों में ऐसे बहुमूल्य स्थल हैं, प्रसंग हैं, जहाँ कुछ से कुछ आदर्शों की रक्षा हुई है, जहाँ ऐसे-ऐसे संवाद कहलाए गए हैं, ऐसे-ऐसे चरित्र-उदाहरण पेश किए गए हैं जिन्हें देखकर उस काल की जनता गद्गद और हर्षविभोर होकर तालियाँ बजाती थी, दूसरी ओर साथ ही आँसुओं से रोती थी और अपना सब कुछ राज्य, धर्म और ज्ञान पर न्योछावर करने को सहर्ष तैयार हो जाती थी।

इन नाटकों का मूल उद्देश्य प्राचीन प्रसिद्ध कथाओं, इतिहासों (विशेष मंचन) तथा महान चरित्रों के आधार से पुनरुत्थान की भावना भरनी थी। इसलिए इन नाटकों का आग्रह उच्च संवादों, त्याग-कर्म, भावुकता-भरे उपदेशों पर रहता था, साथ ही ऐसे कार्यों और दृश्यों पर, जिन्हें देखकर जनता वाह-वाह कर सके, सर्वसाधारण को पुकार सके और अपने खोए हुए गौरव को देख मोहनी आँसू पी सके।

5

नाटक का रचना-विधान

भारतीय रंगमंच की यात्रा में पारसी थियेटर कुछ ऐसी विरोधी दिशा में बहने वाली नदियों का एक ऐसा अपूर्व संगम है, जहाँ पूरब-पश्चिम, शास्त्रीय और लोक, व्यावसायिक और पुनरुत्थानवादी, तथा राष्ट्रीय और रोमानी चेतनाएँ परस्पर घुल-मिलकर एक अजब रूप और अन्दाज़ में हमारे सामने आई थीं। एक समय भारतीय लोक के उस लम्बे गहन संक्रमण में सम्भव भी था, जब एक ओर हम क्रमशः सीधे पश्चिम के सम्पर्क में आ रहे थे, और दूसरी ओर अब हममें राष्ट्रीय चेतना, प्राचीन इतिहास-पुराण के गौरव की भावना तीव्र हो रही थी। धर्मभीरु हिन्दू जनता, जो आर्यसमाज और अन्य सुधारवादी आन्दोलनों के कारण धर्म में बाहर आई थी, उसे अपने गौरवपूर्ण चरित्र

और महान आदर्शों से
दिल्ली, आगरा आदि
गाँवों-कस्बों के हज़ारों
रंजन के लिए कुछ ऐसी नई
ही, साथ ही मन बहलाने
पुरुषों कलकत्ता, बम्बई
रोमांचित नाटकों की रचना
था, उनके नाटकों-थियेटरों में
से थियेटर सर्वत्र एक
भारतीय जनता, विशेषकर
भगत-स्वांग से ऊब चुकी
रोमानी कहानियों, अरब,
अफ़सानों की ओर ध्यान दि
अंग्रेज़ों के 'थियेटर' जैसी
जब इस मंच की विशुद्ध
अपनी कम्पनियों के नाम
अल्फ्रेड, न्यू अल्फ्रेड, कोरोनेशन
साथ ही उन्होंने
अंग्रेज़ी रंगमंच से आए
हाथों में बेल-बिल्ला रहे थे
या काल्पनिक-रोमानी होते
उन्होंने अपने थियेटर में
परीक्षण और मूल्यांकन
और अपेक्षाओं से हमारे

कथावस्तु और चरित्र-

पारसी थियेटर के
थियेटर के व्यावसायिक
मालिक के होते थे। भा
स्वभावतः भाषा की रच
इसीलिए जान-बूझकर
और भी कि कथन दोष
कारण के बीच भी एक
के अनुसार, बल्कि यहाँ
नाटक लिखना, उसमें
वह स्वयं निर्देशन गायन

और महान आख्यान देखने पसन्द आता था। कलकत्ता, बम्बई, इलाहाबाद, दिल्ली, कानपुर आदि नगरों में, जहाँ औद्योगिक व्यावसायिक उन्नति के कारण गाँवों-कस्बों के हजारों मजदूर, मिस्त्री और बाबू लोग आए थे, उनके मनोरंजन के लिए कुछ ऐसी नई चीज की आवश्यकता थी जो लौकिक-शृंगारिक भी हो, साथ ही मन बहलाने वाली या उपदेश देने वाली भी।

मुख्यतः कलकत्ता, बम्बई और दिल्ली जैसे नये विकसित होते हुए कास्मोपोलिटन शहरों की जनता—जिनका अंग्रेजी नाटक-संस्कृति का सीधा संपर्क था, उनके थिएटरों में जो नई चीज पश्चिम से आई थी, उसके प्रभाव से थिएटर बनाया गया नये रूप में उसकी कल्पना में आया था। अब तक भारतीय जनता, विशेषकर मध्यदेश की जनता धार्मिक लीलाओं, पिकेरिंग मनोरंजन में ऊब चुकी थी। स्वतन्त्रता की कल्पना ने उनमें देशप्रेम की रोमानी कहानियों, अरब, रोम, फारस की प्रेमकथाओं और इश्क के नये रूपमानों की ओर ध्यान खींचा था। साथ ही अब जनता रास-लीला की तथाकथित अंग्रेजों के 'थिएटर' जैसी नई चीज की तलबगार थी। इसीलिए पारसी लोग जब इस माँग की विशुद्ध व्यावसायिक स्तर पर, पूर्ति करने चले तो उन्होंने अपनी कम्पनियों के नाम भारतीय न रखकर विशुद्ध पश्चिमी अन्दाज में रखे — अल्फ्रेड, न्यू अल्फ्रेड, जोरोस्टियन, कारोनेशन, विक्टोरिया, नेशनल थियेटर आदि। साथ ही उन्होंने रनिज्म के उस थिएटर की नकल की, जो उस समय भारत में अंग्रेज लोग के आए थे या जो वे लोग अपने मनोरंजन के लिए अपने थियेटर हालों में खेल-खिला रहे थे। साथ ही कथावस्तु, भारतीय पौराणिक-ऐतिहासिक या काल्पनिक-रोमानी होने के कारण और दर्शक समाज यहाँ का होने के कारण उन्होंने अपने थियेटर में कुछ ऐसी रंग-परम्पराओं को विकसित किया जिनका परीक्षण और मूल्यांकन तथा उनके उद्गम-मूलों की खोज आज कई दृष्टियों और अपेक्षाओं से हमारे लिए नितान्त आवश्यक है।

कथावस्तु और चरित्र-विधान

पारसी थियेटर में नाटक लिखने वाले की हैसियत महत्त्वपूर्ण थी, किन्तु थियेटर की व्यावसायिक संरचना के बीच स्वभावतः उसकी स्थिति कम्पनी के मालिक के नीचे थी। मालिक को इसके मुकाबले अधिकार प्राप्त थे, इसलिए स्वभावतः नाटकों की रचना मालिक की बुनियादी नजर के अनुसार होती थी। इसीलिए जान-बूझकर नाटककार को नाटक-लेखक की संज्ञा दी गई है। इसलिए और भी कि नाटक-लेखक स्वतन्त्र रचनाकार के बजाय मालिक और उपभोक्ता के बीच की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी था। वह मालिक की इच्छा और उद्देश्य के अनुसार, बल्कि यहाँ तक कि उसके दिए-दलाए हुए विषयवस्तु के आधार पर नाटक लिखता, उसमें विनोदात्मक दृश्य के लिए कुछ नई सृष्टि करता साथ ही वह स्वयं निर्देशन, गायन, नर्तन और संगीत का भी ज्ञान रखता। इस दृष्टि

के अन्त में 'वन्समोर' की पुकार जब तक दर्शक समाज से न हो जाए, तब तक न नाटक श्रेष्ठ माना जाता था, न निर्देशक, न अभिनेता, न स्पॉन्सरी, न दावत, न नर्तक। फलतः बहुत हद तक इस हिसाब से अभिनेता-दर्शक-केन्द्रित ही थियेटर का दिग्दर्शन था :

"मेरे स्वभाव ने थियेटरशिप के साथ साथ करने का सरोकार रखा है। इसी स्वभाव ने एक महीने ही के अन्दर उस 'रामायण' नाटक का संशोधन ही नहीं कराया, उसके गाने भी ठीक कराए और स्टेज पर खड़े होकर डाइरेक्शन भी मुझसे कराया... हारमोनियम मास्टर अलग भी मेरी ही बताई तर्जों और मुक्तियों आदि के अनुसार गायकों को गाने ठीक कराते थे।"[1]

नाटक लेखक और पारसी थियेटर दोनों एक-दूसरे के अविभाज्य अंग थे और दोनों व्यावसायिक सीमा के अन्दर बंधे थे। व्यावसायिक सीमा में बहुत हद तक शास्त्रीयता और मौलिकता भी बंधी थी, पर मूल अन्तर था रचना-प्रतिभा और कौशल की आन्तरिक स्वतन्त्रता का जिसमें दर्शक समाज के मनोरंजन-बोध और मानसिक स्तर का भी उतना ही हाथ है।

पारसी थियेटर की तीनों प्रवृत्तियाँ, जिनकी चर्चा अभी हम करने जा रहे हैं, प्रकटतः उस काल के व्यापक दर्शक समाज की रुचि और रुचि को ही प्रकट करती हैं। साथ ही नाटक-लेखकों की मौलिक प्रतिभा और दृष्टि के भी ऐसे उदाहरण हैं जहाँ यह स्पष्ट है कि इनमें या तो कलात्मकता, उपदेश की प्रधानता है, या भावुकता-भरी पुनरुत्थान की भावना है या इनमें ऐसा रोमानी अन्दाज है जो आँख-कान के लिए चाहे जितना प्रिय और मूल्यवान हो, पर मन, प्राण के सौन्दर्य-बोध के लिए पर्याप्त नहीं है। यह सारा नाट्य-लेखन केवल दर्शक-भावना को सन्तोषित था, यह इसकी प्रवृत्तियों से प्रकट है :

1. पौराणिकता,
2. रोमानिपन और
3. पुनरुत्थान की भावना।

यहाँ यह भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि ये तीनों प्रवृत्तियाँ एक-दूसरे से सर्वथा विच्छिन्न नहीं हैं बल्कि पारसी थियेटर के प्रत्येक नाटक में, चाहे उसका विषयवस्तु पौराणिक हो, राजनीतिक, ऐतिहासिक या रोमानी अथवा आर्थिक—सबमें किसी न किसी स्तर से पौराणिकता, पुनरुत्थान और रोमानिपन का होना अनिवार्य है। दरअसल यही उस काल का समाज और दर्शक-बोध था।

इन तीनों नाट्य-प्रवृत्तियों के अन्तर्गत कथा और चरित्र विधान का मूल्यांकन कई सशक्त विशेषताओं की ओर ध्यान आकृष्ट करता है जैसे :

1. पुराण-इतिहास के मूल कथा-प्रसंग को, बिलकुल उसी तरह, बिना

1. 'मेरा नाटक-काल', संक्षेपांश, पृष्ठ 23, प्रथमावृत्ति

किसी हेर-फेर के रखना ताकि दर्शक समाज की भावना को किसी तरह ठेस न लगे।

2. इसी तरह पुराण-इतिहास के चरित्रों के बारे में भी यही मत है कि उनके उसी चरित्र, स्वरूप को नाटक में रखना है, जो पहले से, बल्कि परम्परा और विश्वास में दर्शक के भीतर मौजूद है।

3. यही स्थिति प्रसिद्ध दन्तकथाओं और अफसानों की कथावस्तु और चरित्रों के बारे में भी है, जैसे 'लैली-फरहाद', 'लैला-मजनूं' आदि में।

4. कथा और चरित्र-विधान की मौलिकता उन नाट्य-लेखकों ने दिखलाई और काव्य गीत या हास्य-अंशों में प्रचुर सामग्री में दिखाई है जैसे बेताब ने 'महाभारत' नाटक में चन्द चमार और मनी गोपी की उपकथा और चरित्र के अन्तर्गत किया है। राधेश्याम ने 'वीर अभिमन्यु' नाटक में राजा और सुन्दरी की उपकथा और चरित्र-विधान में अपनी मौलिकता और कल्पना की क्षमता प्रकट की है। आगा हश्र ने 'विल्वमंगल' (सूरदास) में चिन्तामणि के मनन और चरित्र के लिए जिन चरित्रों और कथा-प्रसंगों की रचना की है वह सब भी इसीलिए नवीन है।

विशुद्ध विधान की दृष्टि से कथावस्तु और चरित्र का शिल्प और उपयोग जिस तरह से लेखकों ने हुआ है जैसे, समूचे नाटक के क्रमिक विकास (संघर्ष के विकास) तथा चरित्र-अभिव्यक्ति के परिप्रेक्ष्य में कथा का विकास, जैसे पहला अंक उद्घाटन, दूसरा अंक संघर्ष का विकास आदि। इस तत्व का प्रयोग और उपादान पारसी थियेटर आगा हश्र के नाटक 'यहूदी की लड़की' में हुआ है। जैसे इसके पहले बाब (अंक) के पात्रों सेठ अमरनाथ, तुरान के जंगल में रुस्तम के घोड़े का गायब होना, शाहे-समरकन्द के दरबार में रुस्तम का आना, शाह द्वारा रुस्तम को (तूरान के सबसे बड़े दुश्मन को) मेहमान बनाना और इसका सरदार पैरुसम का विरोध करना, सहजादी तहमीना का रुस्तम के प्रति आकृष्ट होना (प्रथम दृश्य में) और अन्तिम दृश्य में जहां शाही महल में रुस्तम सो रहा है, पैरुसम धोखे से उसे जब नींद में मारने को होता है, तभी तहमीना का वहां पहुंचना और दोनों में इश्क का इजहार होना तथा छिपे हुए पैरुसम का प्रकट होना, तहमीना को गिरफ्तार करना। अन्त में रुस्तम गुस्से और बहादुरी से, खुद को बन्दी तहमीना को मुक्त करता है और सब पर खड्ग से हमला करता है।

पहले बाब के इस दृश्य-विधान से कथा के सहारे नाटक के उस स्तर में, बल्कि उस तरह नाटक का उद्घाटन नहीं होता, जिस तरह रंगमंचीय में होता है। यहां उद्घाटन घटना और कार्य के ही स्तर पर होता है और पहले अंक का पर्दा जहां किसी आक्रमण-दृश्य पर गिरता है, वहां 'बन्दमोर' और 'वाह' का बोध ज्यादा होता है, नाटक के कार्य, चरित्र, समस्या या संघर्ष-बोध का कम, अर्थात् पहला अंक घटना के स्तर पर जंग और इश्क के उद्घाटन का

अंक है।

दूसरे अंक में इस तरह सीन हैं :

1. रुस्तमखान का शाही महल—बहसीन बैठी सोच रही है कि रुस्तम ने वह अर्ज़ शादी में भी मेरी जवानी का ख़याल था।

2. तूरान का शाही महल—तूरान के बादशाह अफ़रासियाब ने गुस्से में है गुलना पिलवर कि बहसीना ने सोहराब नामक रुस्तम के बेटा हो चुका है और अब वह पन्द्रह साल का है। इसी पोशीदा घटना पर नाराज़गी है। वज़ीर इसे मानता है। पर उसे गुलना की सज़ा मिलती है।

3. रुस्तमखान का शाही महल। सोहराब के मुख से रुस्तम की याद और विरह-भाव। सोहराब का रुस्तम से भेंट के लिए इरान की ओर रवानगी।

4. ईरानी सरहद, किला सफ़ेद का अन्दरूनी हिस्सा। बहराम सोहराब से मुलह करने जा रहा था, पर अचानक हुजूम गर्द आफ़रीद मना करती है। और जिन्दाबाद ईरान।

5. मैदान जंग। सोहराब से गर्द आफ़रीद की भेंट। संघर्ष—युद्ध। वह पुरकोशिश से लड़ रही थी; सहसा यह ज़ाहिर होना कि वह औरत है—दोनों में इश्क।

6. किला सफ़ेद का बाद दरवाज़ा। ईरान, बारमान और गर्दाफ़रीद की मय लश्कर के मौजूद है। सोहराब गर्द आफ़रीद के इश्क में फंसा है। गर्द आफ़रीद किले की दीवार पर होती है, पर दरवाज़ा खोलने से मना करती है, क्योंकि सोहराब उसके मुल्क की आज़ादी और राहत लूटने आया है। सांस्कृतिक भावना की उद्दीप्ति : तूरानी लश्कर का किले पर हमला। सोहराब के गुर्ज से दरवाज़ा टूटकर गिरता है।

7. किले का अन्दरूनी हिस्सा। हमलावरों का शोर। घायलों की चीखें, हथियारों की झंकार। खून में रंगी तलवार लिए आफ़रीद आती है। प्रेम और फ़र्ज़ में आत्मसंघर्ष। सोहराब का हुक्म देना कि आफ़रीद गिरफ़्तार की जाए।

8. किले का अन्दरूनी हिस्सा। तहख़ाने में नज़रबंद आफ़रीद आती है। नवशहराम बहराम द्वारा आफ़रीद को गिरफ़्तार करने की ओशिश। युद्ध करती है। घायल, बेहोशी के आलम में सोहराब से भेंट। बातचीत, इश्क और बदमाश्ती की। पर जाती है। सोहराब गद्दार बहराम को मार डालता है।

इधर के उस दृश्य-विधान से प्रकट है कि कथा और चरित्र इन दोनों स्तरों में इस दूसरे अंक में संघर्ष का पूर्ण विकास हो गया है। इश्क और देशप्रेम की सूली पर आफ़रीद कुर्बान हो चुकी है। गद्दार को सोहराब तुरंत कत्ल करता है। बदमाश्ती की यह कल्पना आफ़रीद ने खुद की है। कथा घटना और चाहरों

कथ्य के धरातल पर युद्ध के मैदान में विस्मित हुई है। कथा अपने मूल विकास में जरा भी इधर-उधर नहीं हुई है, अतएव पूरा प्रभाव बनाता है। चरित्र-स्तर पर आफरीद और सोहराब के भीतर अपने व्यक्तित्व-बोध की त्रासदी खिलती है। आफरीद पुरुष के तेज में स्त्री प्रबल होती है। यह एकतीकरण चरित्र-अनुसंधान के स्तर पर न होकर बिम्बन-आख्यान के स्तर पर होता है। यही विधान सोहराब के चरित्र पर दूसरी तरह से लागू होता है। वह अपने चरित्र के द्वैत को कहता है, अपने को कथा सम्भाषण, आत्मालाप प्रस्तुत करता है। अतएव इन चरित्र के भीतरी रूपों को पहले उन्हीं के मुँह से सुनते हैं और उनके कार्यों द्वारा उन्हें देखते हैं।

तीसरे अंक का दृश्य-विधान इस तरह से है :

1. सोहराब के लश्कर की छावनी : हुमान, बारमान और तूरानी सरदार और सिपाही अपना मना रहे हैं। रक्काशा रक्सानामक में मस्त है।

2. ईरान के शहनशाह केकाउस का दरबार : तुम्से का खत है पहलवान रुस्तम पर, पर रुस्तम की रुस्ती नहीं है, वह बेकाबू है। शाह इन बातों समझ रहे हैं। रुस्तम के चरित्र के बारे में वह खुद कहता है। दरबार में रुस्तम का कथा जाना :

3. सोहराब के लश्कर की छावनी। शाम का वक्त : यहाँ पर ईरानी और तूरानी लश्कर के मेले दिखाई दे रहे हैं। यहाँ बातों से सूचना (सूक्ष्म दृश्य है यह) कि केकाउस गुरूरबार-जल्दबाज बादशाह है। रुस्तम फिर केकाउस के पास आ गया है।

4. मैदाने-जंग : ईरान के सिपाही भागते नजर आ रहे हैं। रुस्तम सोहराब की बहादुरी की तारीफ करता है। सोहराब आता है। संघर्ष।

5. हुमान व बारमान का खेमा : (सूक्ष्म दृश्य) सोहराब से लड़ाई के लिए (रुस्तम उसे पहले खंजर फेंक दिया था, नजरबाज में आकर) फिर से जोश भरने की बातें।

6. मैदाने-जंग। रुस्तम एकाकीपन दिल के साथ आसमान की ओर देख रहा है। सोहराब आता है। फिर वही लड़ने न लड़ने का दोनों में संघर्ष। अन्त में लड़ाई। रुस्तम सोहराब के सीने में खंजर भोंक देता है। दोनों में तय बातें होती हैं। परिचय होता है। सोहराब लड़खड़ाता हुआ गिरता है, मजबूत पेश करता है—रुस्तम की जिन्दगी। दोनों गले मिलते हैं। रुस्तम का दुःख। सोहराब का मरना। रुस्तम इस दुःख से दोबारा ही पुकारता है 'सोहराब', 'सोहराब'। और अन्त में पर्दा गिर पड़ता है।

और इसपर 'ड्रापर' पर्दा गिरता है।

इस अंक के दृश्यों को देख-पढ़कर और उनके आँखों जिस तरह कथा वेदना वेगों के संघर्षों के बीच बढ़कर चरमसीमा पर समाप्त हो जाती है, और ठीक उसी

तरह चरित्र के स्तर पर सोचने या भावना और कर्म के बीच, जज़्बात और जिम्मेदारी के बीच जो संघर्ष तेज़ी से उभरकर मोहराब की मौत के कलुष से उत्पन्न बुद्धि-ज्ञान पर चुनौती देता है, इन दोनों स्थितियों के अध्ययन से न उसपर शेक्सपियर का नाटक विधान लागू होता है, न संस्कृत का, न लोक संगीत का।

शेक्सपियर के नाटक विधान में नाटक का स्वरूप पाँच अंकों में माना गया है। जहाँ सीमा अंक तथा और नाटक के मध्य-बिन्दु को चरम सीमा है। लगता है आगा हश्र ने इस नाटक-विधान से शेक्सपियर का यही कथन तीन अंकों पर लागू करने के लिए गढ़ा है। चौथा और पाँचवाँ अंक, जो क्रमशः संघर्ष (फाल-लिंग) और निर्वहण (डिनाउमेण्ट) का था, उन्हीं दोनों में रखा गया है।

संस्कृत नाटक और रंगमंच में भी क्रमशः पाँच-छह अंकों का विधान था, जहाँ कथा के साथ ही नायक और नायिका की उनके कार्यव्यापार (आरम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम) परिभाषित होती थीं। परोक्ष रूप से यही विधान लोकरंगमंच में भी अब तक कायम है।

शेक्सपीरियन विधान में केवल तीन अंकों को ही लक्ष्य आगा हश्र ने यह इस तरह नाटक क्यों लिखा है—इसकी वृहियत में जाने से पहले यह जान लेना है।

पहला—यह नाटक जिस विशिष्ट स्थितियों से सम्बद्ध है और जिनमें अतिरंजना, चमत्कार मुख्य तत्वों की माँग है और साथ ही पूरे नाटक का उद्देश्य विशेष भावना के स्तर पर जिस तरह यांत्रिक प्रसार को देखने में लाना है, उसके अनुरूप कार्यसंगठन (तीसरे अंक) के आगे जाने का कोई मतलब ही नहीं है। शेक्सपीयर के नाटक में चौथा-पाँचवाँ अंक क्रमशः संघर्ष में भीतर के विचार और चरित्र-अन्वेषण की अन्तिम परिणति के रूप हैं। 'विचार' और 'अन्तिम परिणति' जैसी चीजों की यहाँ कोई जरूरत न थी। न दर्शक के स्तर से, न नाटककार की प्रतिज्ञा (मुख्य की आत्म-प्रवंचनता और अभिव्यक्ति की विवशता) के रूप में।

दूसरा—इसके रंगमंच का दृश्य-विधान मुख्य अंकों या पर्दों का मोल-मटोल था। हैरत कि इस नाटक 'रुस्तम व सोहराब' में स्पष्ट है—रंगे हुए फलकों का था अर्थात् यह उनका ने आगा हश्र की आयामी मंच था, इसलिए इसमें वही इतना 'फिट' हो गया। सपाट कथा जिसमें अनेक हैरतअंगेज घटनाएँ, आश्चर्यजनक संयोग हों और जिसमें खूबसूरती, वीरता, आदर्शों से भौंकातर आकर्षित करने वाले चरित्र हों, इतने ही चौथे और सम्भव हैं।

(अ) अत्युत्तमगुणों सपाट रंगों को सजाने के लिए तरह-तरह के मनोहारी दृश्य।

(आ) अतिरंजना-प्रधान, हैरत में डाल देने वाले चरित्रों को और भी अधिक प्रभावपूर्ण, भावुकतापूर्ण बनाने तथा उनके दर्शक को हैरतअंगेज मनोरंजन

हो, उन्हें चरमसीमा पर ही रोक देना जरूरी था।

इस चालाकी का और भी स्पष्ट, व्यापक अनुसरण नाटक के अन्य सभी बिन्दुओं में संभव हो सकता है, जैसे :

* रंग-संरचना के स्तर से, अंक का आरम्भ और अन्त, तथा उसके अन्तर्गत दृश्य का आरम्भ और अन्त।
* पात्रों का एक विशेष ढंग से, विशेष परिस्थिति में प्रवेश और प्रस्थान।
* उनके कार्य और व्यवहार।
* और अन्तर्वीकरण के स्तर से इन नाटकों के संवाद, उनका अभिनय-पाठ और दृश्यत्व।
* भाषा।
* संगीत और नृत्य।

इन बिन्दुओं पर विचार करने से पहले इस आधार-भूमि को पकड़े रहना होगा कि यह संस्कृत रंग और नाट्य-चेतना जिन सांस्कृतिक कारणों से विकसित हुई थी, उसमें अभिजातकीयता (हाई मेलोड्रामा) एक प्रतिवादी बात थी। यह बात इस राष्ट्रीय चेतना-काल के जन-जागरण और पुनरुत्थानवादी लहरों से भीतर से उभरी थी। यह पूरा काल ज्ञान, आस्था, अतीत और पुरातन के 'हाई मेलोड्रामा' में स्वयं मन्त्रमुग्ध था। साथ ही अंग्रेजी में जिसे 'आइरनी' कहते हैं 'दुर्योग' समझा है यह बोध यहाँ की चेतना-भूमि का अनुपम गान है। वास्तव में यह 'दुर्योग'-बोध उस पूरे काल की साहित्यिक चेतना में भी मौजूद है 'भारत-दुर्दशा' से लेकर 'भारत-भारती' और 'आँसू' तक; 'अंधेर नगरी' से लेकर 'स्कन्दगुप्त' 'गबन' और 'गोदान' तक।

इस बोध के कारणों पर प्रकाश डालने की यहाँ गुंजाइश नहीं है। पर प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष ढंग से इस 'दुर्योग-बोध' के मूल भाव पर पारसी रंगमंच के द्वारा तारे अन्तिम-रूप नाट्य रच गए हैं, यह तथ्य याद रखना है। यह बोध उस काल के दर्शकों का सांस्कृतिक और सामाजिक कारणों से बहुत प्रिय था—यहाँ इतना ही संकेत काफी है।

इस 'दुर्योग बोध' ने अभिजातकीयता के लिए बड़ी उर्वर भूमि दी।

संरचना और प्रस्तुतीकरण इन दोनों आयामों पर विचार करने की भूमिका अब तैयार हो गई है।

अंक और दृश्य

[illegible] के पहले बाद के पहले दृश्य में [illegible] हसीन चाँदे पर [illegible] पर आता है। ध्यान देने की बात है 'हसीन चाँदे' पर। जाहिर है चाँदा हसीन बनाया गया होगा, यानी उस [illegible] भूमिका में सजाया गया होगा। अब प्रश्न है इस से चाँदा कैसे अलग होगा?

संस्कृत रंगमंच के अनुरूप यह कुछ तो नहीं लाया गया है, क्योंकि यह शैली या रंगपरिपाटी ही और थी। लोकरंगमंच के अनुरूप यह भाव का घोड़ा भी नहीं है; क्योंकि वह रंगपरिपाटी भी इससे पूर्णतः अलग है। अब एक ही स्थिति लेकर बनती है—कि बादशाह घोड़े पर चढ़े हुए [illegible] है, और उसकी पीठ पर बैठे-बैठे [illegible] है। उसकी पीठ पर [illegible] फिर [illegible] करता है, प्यार से घोड़े की गरदन थपथपाता है, और चाबुक के लिए छोड़ देता है। इस दृश्य का अन्त होता है—[illegible] के घोड़े को [illegible] के कारण [illegible] में [illegible] और [illegible] के साथ [illegible]।

और इस अंक का अन्त होता है अर्थात् पहला 'दृश्य' लिखता है [illegible] के दृश्यों पर [illegible] उपाय का [illegible] करता है।

इस तरह बहादुरी और [illegible] अकाल से [illegible] की [illegible] और [illegible] पर [illegible] मिलता है।

अंक की किसी दृश्य योजना के पीछे [illegible] और [illegible] मुक्तक [illegible] एक के बाद एक पड़ता रहे, उसके लिए [illegible] का पहला सीन मैदान का अर्थात् पीछे [illegible] पर्दा पड़ा रहे जिसके पीछे [illegible] का [illegible] किया [illegible]। [illegible] दूसरा दृश्य अह नामक है; और इस दृश्य के पीछे [illegible] महल बना का दृश्य बिलकुल तैयार है और उसके पीछे शाही महल का दृश्य बना तैयार है।

संस्कृत स्तर पर इस तरह दृश्य और अंक-विधान न [illegible] है, न संस्कृत, न विशुद्ध लोकरूपक। यह मुख्यतः अलंकरण-प्रधान [illegible] के [illegible] था और यहाँ आती हुई [illegible] अंग्रेजी कम्पनियों के रंगमंच के प्रभाव का फल है।

पूरे दृश्य-विधान संस्कृत रंगमंच के विष्कम्भक, अंकास्य या अंकावतार [illegible] दिया है [illegible] के दृश्य जो दो महत्त्वपूर्ण दृश्यों के बीच मात्र पाँच-छः मिनटों के लिए सूचनार्थ या रस पर टिप्पणी देते अथवा इस बीच [illegible] और घटना के स्तर पर क्या-क्या हुआ, इस बीच कितना समय बीत गया, इनके लिए मुख्य दृश्य के रूप में आते हैं। जैसे तीसरे [illegible] में तीसरा और पाँचवाँ दृश्य।

प्रवेश और प्रस्थान

[illegible] दृश्य के अन्त हो, और यही क्यों, [illegible] और [illegible] की [illegible] की संगति में पात्रों का दृश्य में [illegible] विशेष प्रवेश-प्रस्थान आवश्यक हो या [illegible] के लिए आता हुआ [illegible] ने अपने नाटक में मुख्यतः इतनी बातों पर ध्यान दिया है :

* नायक और नायिका को एक विशेष नाटकीय-परिस्थिति में प्रवेश कराना और आश्चर्यजनक भी लगे साथ ही यथार्थ-पूर्ण भी।

* जहाँ से कथा में सहसा एक मोड़ या धमाका महसूस हो जाए।

* इस प्रवेश के लिए पहले से समुचित भूमिका विशेषकर एक ऐसा माहौल बना पात्र का अचानक आना बड़ा ही नाटकीय लगे।

* पात्र जिस मनोभाव में आ रहा है उसके खिलाफ परिस्थिति, यानि उसके मनोभाव में और भी तीव्रता और अनिवार्यता आ सके।

उसके उदाहरण में फ़िल्म व सीरियल के पहले दृश्य के दूसरे सीन में यहाँ मुहूर्त-समारोह के दरवाजे में मनीषा का स्वागत चल रहा होगा। [illegible] और उसके बाद जब वजीर अहमद से बादशाह के सबल और मानो उमराव दरबार में गमन जमेंगे-शराब पेश करते हैं, और इसी वक्त, सम्मान जुलूस और सीन में शामिल होता है (और इसे और भी ज्यादा तीव्र, प्रभावपूर्ण बनाने के लिए पिछले से ठीक बाद की बजाया जाता है—यह।)

प्रवेश के कुछ अन्य ढंग भी हैं, जो सीधे रंगमंच के बहुत करीब हैं जैसे चल तीसरे के दूसरे सीन में कैमाइल को प्रशंसा में गाते हुए सम्मान का प्रवेश। सरकुर का शेक्सपियर रंगमंच के करीब आने वाले प्रवेश, जैसे चार दूसरा, सीन छठे में अजमुद्दीन-लाला गोकुलचन्द का दाखिला मुहल्ले के नाम में हुआ हुआ मरा

इसी तरह नाटकीय अभिव्यक्तियों उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रस्थान की भी अपनी कुछ विशेषताएँ हैं। नाटककारों ने प्रायः इन्हीं बातों पर, मुख्य पात्रों के प्रस्थान के प्रति ध्यान दिया है :

* दृश्य में अपनी पूरी बात कहकर।

* दर्शकों की चरमसीमा पर (ताकि दर्शक तालियाँ बजाकर पात्र-समीक्षा करके अभिनेता को फिर बुला सके)।

* चाहे किसान विकास कथा चरित्र: कार्य-विकास में लगा जाए, परिणाम अपना पूरा असर दिखाकर ही जाएगा (इसे इस तरह से भी सोचा जा सकता है कि जब तक दर्शक का पूरा मन अभिनेता पर भर दे, तब तक पात्र भी तो रुकेंगे ?)।

* पात्र का जिस मनोभाव में प्रवेश हुआ है जब उस मनोभाव के ठीक विपरीत मनोदशा में वह पहुँच जाए।

* प्रस्थान से कथा-चरित्र में अचानक अकल्पनीय मोड़ पर।

* आश्चर्यचकित करने के लिए।

* दृश्यान्त के लिए।

प्रस्थान की इन पद्धतियों पर शेक्सपियर और एलिजाबेथियन नाटकों नाटक शैलियों का प्रभाव है। ऐसी प्रस्थान-कल्पनाएँ अपने मूल में संस्कृत में हैं न सोचिये में : दरअसल ऐसे प्रवेश-प्रस्थान [illegible] नाटक की पूरी संरचना,

रंगमंच शैली एवं कथावस्तु और दर्शक की रुचि के पूर्णतः अनुकूल थे भी। इसके अतिरिक्त और कोई शैली कैसे होती ?

रंगकार्य और व्यवहार

थियेटर में रंगकार्य और चरित्र-व्यवहार मूलतः अभिनय के अन्तर्गत आता है, या कुछ रूप में चरित्र-निर्माण के अन्तर्गत। पर यहाँ रंगकार्य और व्यवहार कुछ ऐसे विशिष्ट ढंग और चमत्कारपूर्ण अंदाज में इस्तेमाल किया जाता है कि इसे उन दोनों से थोड़ा अलग ठहराकर देखने की जरूरत है; ताकि इसे आगे अभिनय और चरित्र-सृष्टि के प्रसंग में भी कुछ खुलासा हम से जोड़कर दिया जा सके।

वस्तुतः कथा और चरित्र-निर्माण की अतिरंजकीयता मूलतः इसी रंगकार्य और व्यवहार पर आकर आती थी। और इसकी अतिनाटकीयता के साधन के रूप में आगे के तत्व, जैसे अभिनय, भाषा, संवाद, संगीत और नृत्य इस्तेमाल होते थे।

प्रेम और युद्ध प्रायः यही दो मूल स्थायी भाव थे पारसी नाटक के। इन भावों में जितनी अतिनाटकीयता की गुंजाइश थी, इन नाटककारों ने उसे अपनी क्षमता और उद्देश्य के अनुसार इस्तेमाल किया।

फरहाद व शीरीं में रंगकार्य और व्यवहार के अन्तर्गत युद्ध, हमले के दृश्य, तलवार चलाना, खंजर उठाकर हमला करना, किले का दरवाजा तोड़ देना यह आम बात है। पर इसके आगे रंगकार्य और व्यवहार की, रंग की दीवानी जड़ुन के अतिरिक्त जहाँ चरित्र निर्माण के लिए उनका व्यवहार हुआ है, वे अनोखे हैं।

* पीलराम और उसके साथी एहराम पर हमला करते हैं। एहराम हमलावरों को मिटाता देख के बाद पीलराम को जमीन पर गिराकर खंजर निकालता है।

* तरबीना पीलराम की कलाई पर जोर का घूसा मारती है। पीलराम के साथ में तलवार छूट जाती है। तहमीना तलवार पर पाँव रखकर खड़ी हो जाती है।

एहराम जोश में आकर चाहता है, उस वक्त एक अकबीर आकर उसके सीने पर अपनी तलवार की नोक रख देती है।

मदीना लियाम से इनकाई शीरीं-नाजक के साथ गई आफरीद का आना।

* लियाम पर हमला एक अकबीर ने खोपड़ा डाला। एक अकबीर की शिकस्त। पाँव में जमीन पर गिरी तलवार। लेकिन अचानक ही आने वे आफरीद के बाद तुलकार चिल्ला जाता है। एक के लिया में एक हमीर पाकीजा। तो दूसरा के लिया हमला रह जाता है।

वस्त्र और
दृश्य-सज्जा

वस्त्र और दृश्य-सज्जा

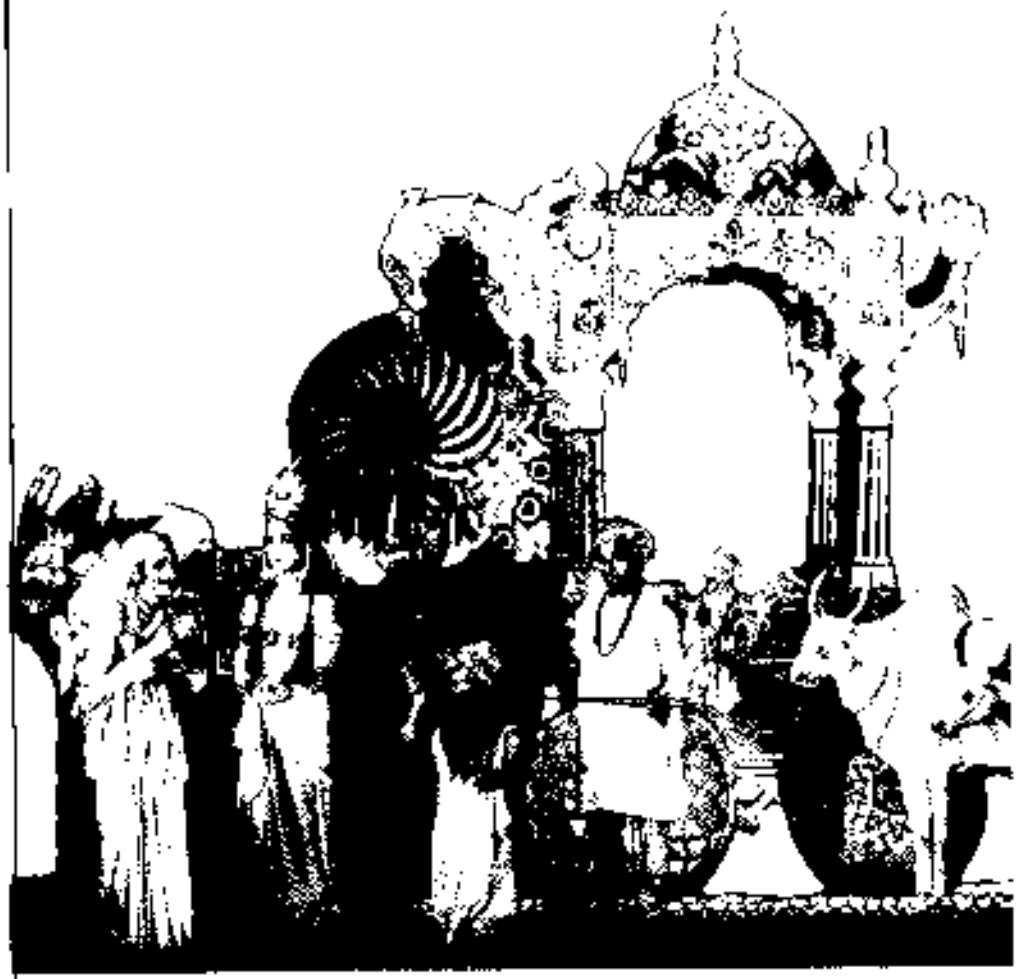

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

जाहिर है इस तरह के चमत्कार और व्यवहार इस अविश्वसनीय रंगमंच के अनुरूप ही हैं। इनसे मंच पर शोर, आश्चर्यजनक चमत्कार पैदा करना, दर्शकों को हैरत में डालकर उन्हें तीन-साढ़े तीन घंटे बांधे रखना सम्भव होता था। इनसे कथा, चरित्र और दृश्यत्व में एकरूपता, रमणीयता तथा मंच प्रभावोत्पादकता की जो शोभा थी वह साथ उत्पन्न जो एक खासीयत था उसे गुणान्वित किया जाता था और भरा भी जाता था।

साथ ही मुख्य अभिनेता को अच्छे से अच्छा पार्ट देने के लिए नाटक में ऐसे-ऐसे अनेक मनोरंजक-आश्चर्यमूलक बातों की स्थितियां पैदा की जाती रही हैं। इससे दर्शक की भावुकता, आवेगपूर्ण तार्किकता के बोध को भोजन मिलता था, साथ ही पारसी थियेटर के मुख्य अभिनेताओं तथा अभिनेत्रियों को अच्छे पार्ट की भूमिका प्राप्त होती थी। यह सारा कार्य-व्यवहार शेक्सपीयर-गन नाटकों की नकल से आया था। यह उस विशिष्ट अभिनय-शैली का अंग भी था जो अधिकांशतः पश्चिमी और अंततः अपने यहां के परंपराबद्ध अभिनय के सम्मिश्रण से पैदा हुआ था।

अभिनय और दृश्यत्व

इस अभिनय-तत्त्व का अध्ययन आगे एक स्वतंत्र अध्याय में किया गया है। पर यहां इसकी एकरूपात्मक और बुनियादी स्थितियां आवश्यक हैं। पारसी थियेटर का अभिनय इस अर्थ में विशिष्ट है कि यह एक ओर जहां शोरो-शायरी, बाज-गायन, शोर-हंगामा और तलवार की तलवारों के साथ दर्शकों की भावना से जुड़ा था वहीं यह रंग-बिरंगे, चमचमाते हुए दृश्य-पटलों और अनेक तरह के मनोरंजक कारनामों, हैरतअंगेज व्यवहारों के तात्पुरुषिक दृश्यत्व से सम्बद्ध था।

पारसी थियेटर की अभिनय-शैली बुनियादी रूप में विशेषीकृत, [illegible] अभिनय-शैली की नकल से पैदा हुई। विशेषकर अल्फ्रेड और यू अल्फ्रेड नाटक कम्पनियां (पारसी थियेटर की मूल कम्पनियां) इससे बहुत घनिष्ठता से जुड़ी थीं। अतः इस की इसी अभिनय शैली के कारण अपने रंगमंच के प्रथम चरण में शेक्सपीयर के नाटकों की छाया पर ही नाटक रचना [illegible] और यह बात और भी ज्यादा उल्लेखनीय है कि पारसी थियेटर कम्पनी के एक पत्रकार एकदम मुहम्मद बुफल साहब ने अपने पहले [illegible] निकाले जिन्हें [illegible] और [illegible] अपनी तमाम मुताबिक कराया। यह इतना पसन्द किया गया कि कम्पनी [illegible] इस पहले चरण में हम के [illegible] अंग्रेजी के आजाद अनुवाद थे। [illegible], [illegible], [illegible] [illegible] यह भी याद रखने की बात है कि [illegible] इतना [illegible] [illegible] [illegible], [illegible], [illegible]

पता होता था कि दर्शक उसे सह नहीं सकते थे। इस अनुभव के उपरान्त कंपनी के मालिकान के कहने तथा स्वयं के अनुभव के आधार पर हरेक ने इन नाटकों को फिर से सोचा। उसे काटा, घटाया-बढ़ाया। पर रंज की जगह खुशी नहीं, रंज के बाद वह लामुहाला खुशी का मंजर देता था। आगे चलकर दूसरे और तीसरे चरण में, जहाँ दृश्य ने सामाजिक रोमांस के नाटक लिखे या दन्तकथाओं पर आधारित प्रेम-मूलक ड्रामे लिखे और उनमें 'नाटकीय' दृश्य जोड़े, फिर पारसी अभिनय-शैली में। भारतीय दर्शक की रुचि और संतोष के लिए अभिनय की भारतीय परम्परा जो इस काल तक (और आज तक भी) लोक-नाट्यों में प्रचलित था, जैसे यात्रा, भवाई, नौटंकी, स्वांग, नाच और तमाशा आदि में—उसकी कुछ अभिनय-पद्धतियों, रूढ़ियों और लयकारी की पारसी अभिनय शैली में सहज ही मिलाया गया।

पारसी ड्रामा की अभिनय-शैली के ये दो विकास-चरण यहाँ के थियेटर के इतिहास से बिलकुल स्पष्ट हैं। इस पहले चरण में जब अभिनय-शैली विल्कुल पारसी थी और शेक्सपीयर या शिक्षोचित अभिनय-पद्धति की नकल थी, तो स्वाभावतः उस समय के अत्यन्त प्रसिद्ध एक्टर थे पारसीजी खटाऊ आदि थे (जो अत्यन्त शिक्षित पारसी थे, एक्टर और गायिका थे और जो प्रायः शेक्सपीयर के ड्रामे करते थे), जिन्होंने न जाने कितने दिनों तक थियेटर के पर्दे किए। वे हिन्दुस्तानी 'एडविन' (एडविन 1838-1905 विक्टोरिया-काल के इंग्लैंड के अभि. प्रख्यात एक्टर-मैनेजर, जिसने लगभग तीस वर्षों तक विदेशी थियेटर पर राज्य किया। उसने अपने ही स्तर की अभिनेत्री सुल्तान टेरी के संग कार्य किया और उसने कई नाटक, शाइलॉक, किंग लियर जैसी अनेक अमर भूमिकाएँ की) कहलाए जाते थे। 'सेवाय' के 'महाभारत' के परंपरा दुर्योधन की भूमिका यही करते थे।

इस अभिनय-शैली के कारण विशेष प्रकार के ही नाटककार, जो उस रुचि के अनुसार ही ड्रामे रचते थे और वैसा व्यवहार करते थे, सिर्फ उन्हें ही रखा गया, जैसे :

सैयद मेहदी हसन,

'सेवाय' और

आगा हश्र।

अभिनय-शैली का जहाँ से भारतीय अभिनय-परम्परा का संगम होता है और जिसका अगली अवस्था में पारसी अभिनय-शैली का एक अंग बन जाता है, वहाँ से अनेक उच्चकोटि के अभिनेताओं तथा अभिनेत्रियों का स्वयं शुरू होता है और पूरा पारसी थियेटर उन अभिनेताओं के हुनर पर आधारित, संचालित तथा अनुशासित होने लगता है। यही स्थिति पारसी थियेटर की चरम सीमा है, जो अपने अन्त तक बरकरार बनी रही और आगे मृत्यु के बाद यही अभिनेता-स्वामी परम्परा फिल्म और टेलीवीजन में चली गई। जिसमें

इस तक यही अन्तर भी है।

पारसी थियेटर के राजा बहादुर), भि... निगार (अभिनेत्री की... हमेशा (पारसी थियेटर... सुल्ताना (आगा हश्र की कहानी), अभिनेता... मोहम्मद अली (पारसी... प्रसिद्ध थे :

प्रायः प्रत्येक बड़े... अभिनेताओं की संख्या... विषयों का उतार-चढ़ाव... काल की अभिनय पद्धति... पिता स्वर में बहुतेरे... में द्रौपदी की विविध... में सुभद्रा, अनारकली और... संवाद और अभिनय... लड़कों के लिए उन्हीं...

अभिनेता-अभिनेत्री... अभिनेताओं के लिए... फेरते, कुश्ती, नाच... आवाज में, एक... तरन्नुम से पार्ट बोलते...

संवाद और वाचिक

शब्दालंकार और... इसमें जो कविता या... एक ओर अलंकरण... हाथ-पैर चालना व... संवाद-विन्यास ही... गुलाल, कई प्रयोग... अश्रुपात, कोकल, तथा... भावपूर्ण, जनाखिल, ... संहा सम्भव है।

उन प्रयोजनों में

हद तक यही आज भी पूरे भारतीय रंगमंच और फिल्मी दुनिया में वर्तमान है।

पारसी थियेटर की इस परम्परा में क्रमशः मोहनावली (वीर अभिमन्यु के रचयिता), भोगीलाल, दीनियार दादा (गहरी की लड़की के मुहर), विनायक (अभिमन्यु की प्रसिद्ध भूमिका के एक्टर), चुन्नीलाल नायक, फिदा हुसैन (नरसी भगत), अली एकबर (व्यायुक्त आर्य कम्पनी, मेरठ), मिस्टर दुबरी (ओरिजनल पारसी थियेट्रिक कम्पनी), सैयद अब्बास अली (दिल्ली की नूरजहाँ कम्पनी), अभिनेत्रियों में मोहन जान और गौहर। स्त्री अभिनय करने में मोहरबाई (फर्रुखबेग में रमजानी का प्रसिद्ध पार्ट), भोगीलाल के नाम प्रसिद्ध थे।

प्रायः प्रत्येक महत्त्वपूर्ण पारसी कम्पनियों में चालीस से लेकर पचास तक अभिनेताओं की मण्डली होती थी। पहले और दूसरे अंक तक लड़के ही लड़कियों का जनाना पार्ट करते थे। इस विधि का बल भी इन्हें शेक्सपीयरियन काल की अभिनय-परम्परा से मिला था। आगा हश्र ने 'रुस्तम व सोहराब' में सिर्फ स्त्री पात्रों की कल्पना की है, 'सैलानी' ने 'महाभारत' में द्रौपदी को जीवित किया है और राधेश्याम ने जिस स्तर से 'वीर अभिमन्यु' में सुभद्रा, उत्तरा और सुन्दरी को रखा है, उस रंगकर्म, व्यवहार, भाषा, संवाद और अभिनय की एकी विशेषताओं से यह प्रकट है कि ये सब पारसी लड़कों के लिए उन्हींके हेतु था।

अभिनेता-प्रशिक्षण और नाटक के प्रशिक्षण पर यही इनको के लिए, सारे अभिनेताओं के लिए गाना गाना जरूरी था। साथ ही तलवार, युद्ध, लट्ठ फेरने, कुश्ती, नाच, मारपीट करने का अभ्यास नियमित होता था। ऊपरी आवाज में, एक खास अदा, अंग-चालन, हाथ-पैर भाजकर संवाद और तरन्नुम से पार्ट बोलने का प्रशिक्षण सबसे ज्यादा आवश्यक था।

संवाद और वाचिक-आंगिक अभिनय

शब्दाडम्बर और अति आवेग पर सारा संवाद-विधान टिका होने के कारण इसमें जो कृत्रिमता या भारीपन होती थी, वह अपने रंगमंच की प्रकृति के अनुकूल एक ओर अलंकरण-प्रधान होती थी, दूसरी ओर वह व्यापारमूलक संवाद को हाथ-पैर चालन से और रंग व्यापार से जोड़ने वाली होती थी। इसीलिए पूरा संवाद-विधान ही यहाँ इतना विशेषज्ञ और रंग, तरन्नुममय है। संवाद यहाँ मुख्यतः नई प्रयोजनों को लेकर रचा जाता था, इसीलिए इसमें प्रत्येक उपदेश शायरी, कविता, मवाल-गायन, चुटकुलेबाजी, हाजिर जवाबी, व्यंग्योक्ति, आकाशभाषण, जनान्तिक, सम्भाषण आदि न जाने किस प्रकार के संवादों के दर्शन बड़ा आसान है।

उन प्रयोजनों में मुख्य इतने हैं :

*सूचनार्थ
*प्रस्तावनार्थ
*रंग-रंग-विधान सूचनार्थ
*निष्कर्ष हेतु
*व्याख्या या टिप्पणी के लिए
*आवेश और आवेश-उद्दीपन हेतु
*अजबानी फलसफा के लिए ।

मुख्यतः आगा हश्र ने 'रुस्तम व सोहराब' में संवाद को विशेषकर चार अवस्थाओं पर ही रखा है। पहला स्वगत कथन—जैसे पहले अंक के पहले सीन की शुरुआत तो ही रुस्तम एकांत, निर्जन और अपने को अकेलापन प्रकट करने के लिए इतना लम्बा कथन करता है और भावना की चरम सीमा पर ले जाने के लिए दो बार शायरी का इस्तेमाल करता है। यह इसका सबसे (पश्चात् भाग की शायरी) ही बनाया गया है।

इसका वाचिक अभिनय कल्पना को लगाने के लिए है इसलिए इसमें आंगिक अभिनय या अंग-चालन की इतनी गुंजाइश नहीं है पर फिर भी अंग-चालन बिना दर्शक का मनोरंजन कैसे होता, इसीलिए इसमें भी शायरी डालकर उसकी स्थिति पैदा की गई है। ऐसा स्वगत कथन दृश्य के आदि में ही आता, शेक्सपियर और संस्कृत दोनों रंग-सिद्धांतों में था, क्योंकि वहां दृश्य-बंध नहीं थे, सब कुछ दर्शक की कल्पना पर था। पर यहां तो दृश्यबंध था, फिर भी इस शैली को अपनाने की आवश्यकता अशिक्षित दर्शक और उनकी मनोरंजन-स्थिति के उद्देश्य से पड़ी थी। दूसरे, रुस्तम का पार्ट करने वाला अभिनेता अपनी वाणी और स्वर की क्षमता को भी दिखाना चाहता था; वह भी एक चमत्कार था और उसपर दर्शक 'क्लैपर्स' कहने या तालियां बजाने के लिए मजबूर होता था और इस तरह नाटक के नाम पर व्यापार की बाजी चलती थी।

दूसरा है, आत्मकथन (सोलिलाग), यहां नायक या अन्य मुख्य पात्र अपनी मानसिक स्थिति की कई भावनाएं एक के बाद एक प्रकट कर सके और उसे कई तरह के वाचिक-आंगिक अभिनय की गुंजाइश मिल सके। इस तरह के आत्मकथनात्मक संवाद के लिए आगा हश्र ने कई जगह रखे हैं, विशेषकर प्रेम और क्रोध की भावनाओं के बीच भाव-मुक्ति के लिए।

रुस्तम व सोहराब के बाद दूसरे और तीसरे सीन में, सूने मैदान पर (जिसे के अन्तर्गत हिंसा के दृश्य हैं) खून से भरी हुई तलवार लिए नई अफसोस आती है और आत्मकथन करती है।

"शाबाश मुल्क के जिन्दादिलो...तुम्हारी बहादुरी देखकर मगरूर सोहराब भी....." (सोहराब का नाम जबान पर आते ही दिल में मुहब्बत का असर पैदा हो जाता है।) [illegible]

"आह मोहतरमा, मेरे दिल को मुहब्बत के नूर से रोशन करने वाले, तुम गमख्वार में क्यों पैदा हुए ? अगर तुम मादरे-वतन के फरजंद होते तो मैं कनीज बनकर तुम्हारी खिदमत में अपनी जिन्दगी···" (मुहसिन ख्याल बदलता है।) —दूसरा भाव

"बेवकूफ औरत, तू क्या मुल्क और कौम के एतबार को ठोकर दे रही है···।" (गुस्सा पैदा होता है और प्रतिक्रिया) —तीसरा भाव

"इस तहार में क्या रखा है ? दिल में भी और सर में भी···" (फिर दोस्ताने-मुहब्बत भड़कता है।) —चौथा भाव

"दूर हो ऐ औरत के दिल की नापाकीजगी, दूर हो···।" (आत्मसंघर्ष) —पाँचवाँ भाव

"मुहसिन पीछे हट···पीछे अपने घर।" (निर्णय और वास्तविकता का बोध) —छठा भाव

एक ही आन्तरिकता में वर्तमान और आगामी इन दोनों स्तरों पर अन्तर्द्वन्द्वों के इतने प्रतीकों पर अभिनय करती अभिनेत्रियों के लिए कड़ी चुनौती थी। बचपन और अब इन दोनों स्तरों की संगति भी बड़ी स्वाभाविक बन सकी है। पात्रों मध्य पर अनेकों आकर्षक भावभंगियों के इतने विविध और परस्पर-विरोधी आयामों पर अभिनय करती हुई दूर मंच पर अपने बचपन, अंक और वस्त्रभूषा का मोहक और करिश्मा दिखाती है। इस भाव पर 'रस्मखेज' और नाज नीमा (अदाओं-नाज) पर अपने-अपने ढंग के भावुक आदर्शवादी दर्शक बनने में पात्रियों की गड़बड़ाहट पैदा होती है। इस स्तर के संकेत इसके नाटक में भरे पड़े हैं।

नीमरा है, जो कोई संवाद (ऐतिहासिक उपन्यास) जहाँ नारी की सीमित और स्वाधीनमूलकता आत्मसंघर्षजनक बन के उभरती है। बाद पहला, तीन चौथे, आठवें दृश्य के दृश्य में रस्मम के कथन पहली बार सहसीना आती है।

रस्मम : तुम्हारा नाम ?

सहसीना : सहसीना।

रस्मम : और जिसकी जिन्दगी के बाग में यह हसीन फूल पैदा हुआ है, उस बागवान का नाम ?

सहसीना : माई-मगनलाल...

(रस्मम चौंकता है।)

(धीरे-धीरे दरवाजे की तरफ लौटती है।)

रस्मम : वही तो वही रस्मम है ···आज एक औरत के दुख ने फतह कर लिया।

(विलय हो जाता)

रस्मम : (मिर्जा जयारी द्वारा मसीलाल को प्रकट करता है।)

नसीना : (नेपथ्य में ही संवाद करती रहती है।)

यहाँ अभिनय वाचिक, आंगिक और ध्वनि-प्रसार के स्तर पर अत्यन्त चमत्कारपूर्ण है। पर है यह सब केवल एक ही सपाट स्तर पर। अर्थात् मानसिक सम्बन्धों और संघर्षों को केवल सूचित और परिभाषित ही किया जा रहा है। व्यंजना से इसे दूर रखा जा रहा है। अनुभव की तिर्यक भंगिमा प्रदर्शन ही मुख्य उद्देश्य बनाया जा रहा है।

यहाँ है, व्यंग्यात्मक संवाद। इसमें दो तरह के संवाद हैं पहला गुरुत्व और अर्थ व्यापार-मूलक स्थितियों के मानसिकरण का, दूसरा उसमें व्यंग्य देने का।

नसीना के अलावा शहर सेनकार्ये चाहे वह सीता हो या चाहे मरजा-मारजा हो या उसका कमला या नकरात कमला, वह सब पहले नाटकीय कहकर फिर वह कर्म करता, अर्थात् उस कार्य का अभिनय करता। इसमें एक विशिष्ट अभिनय-शैली पारसी थियेटर में आया था। अर्थात् एक ही कार्य को दो आयाम देने का सौन्दर्य पहले नाटक के स्तर में, फिर कर्म के स्तर में। अर्थात् एक दर्शक को कल्पना या सूचना के लिए, दूसरा अभिनेता के अभिनय के लिए। दर्शक और अभिनेता की यह पारस्परिकता, संगति वस्तुतः नाटकीय, सौन्दर्यमंडल और अवतरणियर के नाटक की बड़ी शक्ति थी। यहाँ पर अर्थ स्वाभाविक रूप से सीमित अर्थ में ग्रहण किया और उसके प्रभाव को केवल दर्शक से गृहवाही जन-समाज और लाखों तक के ही उद्देश्य तक सीमित रखा।

उदाहरण के लिए मुकाम झाल का तकिया बनाकर जमीन पर लेटना है और नींद के बारे में शायरी करना-करना सो जाता है। अपना हुआ चाकर मोहराब तब तक नहीं पसरता, जब तक वह पूरी बात दर्शक से (मंच पर) कह नहीं लेता। यही तक नहीं, जब तक वह अर्थ जान का दूसरा सिरा नहीं खींच लेता।

दूसरा आकस्मिक संवाद कार्य पर, घटना पर टिप्पणी दार्शनिक, निर्वैयक्तिक उपसंहार-भाव देकर उभरता है। जैसे मोहराब मर रहा है और अपने दोनों को लिखते का राज समझाकर सान्त्वना दे रहा है :

मोहराब : ...बाबा, मर गो। मेरी मौत की खुदा की बरकत समझकर सब्र करो।

गिरे नई कुछ जो किस्मत में राज लिखी थी
बाप के साथ मेरे को कजा लिखी थी।

इसी तरह जब मोहराब मर जाता है, तब कमला और मैं जैसे जिन्दगी की तल्ख स्वीकार करता है। यहाँ तक होता तो यह संस्कृत के करुण काव्य जैसा कुछ लगता, पर बात उसमें आगे जाती है, मध्यम दर्शकों की तरह मोहराब की पुकार-आत्मा करता गश खाकर गिर पड़ता है और अभिनय चरित्र संघर्ष को अपना सीमा पर छूट जाता है।

यहाँ अभिनय में वह रूप या संतोष नहीं है जो संस्कृत में है, यहाँ चरित्र के संघर्ष की वह परम परिणति भी नहीं है जैसा कि शेक्सपियर की त्रासदियों में है। यहाँ सब कुछ केवल चरम सीमा के उद्देश्य से अभिनीत है।

अभिनय के संदर्भ में अत्यन्त उल्लेखनीय बात यह है कि यहाँ अभाव, अपेक्षाओं पर मात्र प्रदर्शन है, उसे जीना नहीं है। संस्कृत परिनिष्ठ-परम्परा में जो मुख्य, वही अभिनय (प्रदर्शन) का भाव था, और उसमें जो गहरी साक्षेकता, अनुभूति-प्रवणता, धर्मनिष्ठा उसकी कल्याणकारिता में छिपी थी और जिसकी अनुभूति (अभिनेता के सम्पूर्ण अभिनय में) दर्शक वर्ग करता था, इसका यहाँ सवाल ही नहीं उठता। शेक्सपियर और संस्कृत रंगमंच का अभिनय सम्प्रेषणीयता के गहन मूल्यों से धर्मनिष्ठ था, इसीलिए यहाँ के अभिनय में सम्प्रेषणीयता न जाने किसी स्तरों तक होती थी, पर इसके लिए वैसा विशिष्ट परम्पराशिक्षित, प्रशिक्षित और गुणग्राहक दर्शक वर्ग था। यहाँ की स्थिति ठीक उससे विपरीत थी। कलात्मक विधान, प्रस्तुतीकरण और अभिनय आदि सभी धरातलों में सम्प्रेषणीयता केवल एक ही स्तर (भावना) पर थी और भौतिक, मानसिक सम्बन्धों और संघर्षों को केवल सूचित, परिभाषित और प्रदर्शित ही किया जाता रहा।

इस प्रदर्शन के लिए पारसी थियेटर में अभिनय की कई विलक्षण रूढ़ियाँ पैदा हुईं—जैसे गुस्सा प्रकट करने के लिए पैर पटककर बोलना, क्रुद्ध या प्रतिहिंसा प्रकट करने के लिए म्यान से तलवार निकालकर कहना। इश्क-मुहब्बत इज़हार करने के लिए घुटने टेककर, कलेजे पर हाथ रख और आँख ऊपर उठाकर दुःख का संवाद या शायरी करना। पारंपरिक अभिनय के लिए सो-सौ संवाद बोलना, गला खाँसकर गिरना, बाल नोचना, चिल्लाना और छाती पीटना।

पारसी थियेटर का 'दृश्यत्व' इतने धरातलों में समायोजित होता था और इन तमाम सांस्कृतिक परंपराओं में वह सम्पूर्ण होता था :

* मंच-दृश्य : सीन-सीनरी
* अभिनय : वाचिक, कायिक और आहार्य
* रंग-भाषा की प्रचुरता का प्रदर्शन
* सांकेतिक साधनों से मंच पर हेरफेरवाले दृश्य पैदा करना
* युद्ध और आक्रमण के भारी-भरकम नजारे
* पात्रों के समूहन और दृश्य से उनका पारस्परिक जोड़कर प्रायः दृश्य के अंत में रंग-भाषी का ऐसी प्रस्तुत करना
* और नृत्य।

'इन्द्रसभा' या 'मोहनराव' में हश्र ने दृश्यत्व के लिए इन सब साधनों का सहारा लिया है जिनसे प्रेम और जिज्ञासा, गहरी और बौद्धिकता (नाट्यीयता) के बीच में अभिनवतोपना पैदा हो और जनता खुश हो, हाय हाय और वाह-वाह भी करे। पर हश्र ने यहाँ केवल दो माध्यमों का इस्तेमाल नहीं किया

है [illegible] न हैरानअंगेज [illegible] न झांकी या रैलो। [illegible] इन दो प्रमुख शाखाओं के स्थान पर हेय ने खूबसूरत, हसीन और [illegible] औरतों के रोल पैदा किए हैं। दृश्य गमित [illegible] स्थितियां पैदा की हैं।

भाषा

पारसी नाटक और थियेटर में भाषा का इस्तेमाल संवाद और अभिनय की आवश्यकता से हुआ है। साथ ही मनोरंजन जैसे [illegible] को पावना या बनाने और उन्हें [illegible] बनाने के लिए भी हुआ है। स्थिति अनुसार, [illegible] अनुकूल, दृश्य अनुसार उसका प्रयोग हुआ है। [illegible] स्थिति और प्रभाव की दृष्टि से कथा का न सार्थक अभिव्यक्ति के लिए इस्तेमाल हुआ है न [illegible], न [illegible] की कोई गहरी सार्थकता के लिए। [illegible] और [illegible] [illegible] मुस्लिम, पारसीपन और [illegible] हुए हैं, इसीलिए वहां भाषा का [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] से उसका अनिवार्यतः [illegible] हुआ है। भाषा की [illegible] [illegible] यहां प्रधान है, साथ ही [illegible] [illegible], [illegible] भावनाओं और भावनाओं के प्रदर्शन, [illegible] का [illegible] बोध है कि यह एक [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] के लिए नहीं [illegible] जाता। [illegible] यह [illegible] उद्देश्य भी नहीं था इस रंगमंच का।

इसके [illegible] [illegible] में [illegible], [illegible] और विषय के अनुकूल गद्य गाम्भीरिक [illegible] का इस्तेमाल किया है। [illegible] में यहां [illegible] [illegible] और अन्य [illegible] वर्गों [illegible] [illegible] [illegible] की भरमार है।

[illegible]-[illegible] की [illegible] [illegible] यहां पुरुष पात्रों के इस्तेमाल की है। [illegible] [illegible] [illegible] स्त्री [illegible] की [illegible] विशेष भाषा यहां [illegible] की है।

[illegible] में [illegible] के [illegible] [illegible], और [illegible] [illegible] [illegible] ने [illegible] [illegible] इस्तेमाल किया है। सवाल-जवाब, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] में होते थे। [illegible] से [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। भाषा-इस्तेमाल [illegible] [illegible] [illegible] के आगमन के समय।

इस [illegible] में [illegible] की [illegible] में [illegible] का स्वाभाविक और सशक्त इस्तेमाल [illegible] [illegible]। [illegible] की ओर भी [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] के लिए ही इसका [illegible] का इस्तेमाल किया है, वरना वही [illegible] भाषा। जैसे :

आफरीदी — [illegible] दुनिया का [illegible] झुकाने के लिए पैदा हुआ है। झुकने के लिए नहीं हुआ।

ईमान के [illegible] में है [illegible] ने [illegible]।
[illegible] से पैदा हुए [illegible] व [illegible]।
हर फर्द यहां [illegible] [illegible] है।

एक शेरों का गहवारा, सुजाअत का बसेरा है ॥

अंक के अंत में प्रायः शेरों में ही संवाद समाप्त किया गया है, दर्शकों को अगले अंक की बाँधे रखने के लिए। इसलिए भी कि आगा शेर अभिनेता कहलाता था, शेर बनकर दर्शकवर्ग पूरा कर देता था। और इस तरह मंत्रमुग्ध दर्शक समाज अगले अंक की बड़ी बेसब्री से इन्तज़ार करने लगता था :

पहले आप का अंदाज़।

लैलमम : देखना ही शीशा जो कुछ है तेरी तस्वीर में
देखने के लिए बनाया है इस जहाँगीर ने।

मजनूं : लोग मजनूं के लिए काफ़ी ये तदबीर नहीं।
आप के लिये है ये लोहे की ज़ंजीर नहीं
(ज़ंजीर तोड़कर गुर्ज़ बढ़ाने के लिए दौड़ता है ॥)

छंद

इस शायरी में (हज़ल हिस्सा) मुख्यतः लम्बे छन्द, जिसे फ़ारसी में बहरे-तवील कहा गया है, इसीका इस्तेमाल बहुत हुआ है। इस लम्बे बहर के प्रयोग में दो उद्देश्य पूरे होते थे। पहला, इसके अभिनय की पूरी स्थिति फ़ारसी थी। इसके लिये वे और बनावट पैदा करने की गुंजाइश थी। साथ ही इसी वजह से गीत का सुअवसर था। बहरे-तवील स्वभावतः दूसरे शब्दों में संवाद के लिए था :

तोहफ़ा : सुन तोप-कुजा का आलम है जलवा जिसके नाज़ों पर।
निसार है हुस्ने-शाम-जमाल बहरे देखने अपनी पर।
हसीन आँखें, रसीले लब, नज़र में अन्दाज़ दिलबरी के
बिछौने मखमल है आ-लोशा, निसार है हाथ में परी के।

और स्त्री पात्रों के लिए स्वभावतः यहाँ एक छोटा बहर, इस्तेमाल होता था, जिसे बहरे-मुतक़ारिब के नाम से जाना जाता है, जब उन्हें बेहद कोमल और मधुर चित्र उनके अभिनय करने की स्थिति होती थी। इन दोनों के उदाहरण हमें यहाँ खूब मिलते हैं।

बहरे-मुतक़ारिब में आफ़रीन कहती है :

मैंने तुझ पीज़ आरज़ू की रवानी देख ले
अब तू भी बुरिश-तरी अपनी देख ले।

और इसी बहर में आगे तोहफ़ा भी कहता है :

दिल को नशा इश्क़ का आँखों को दीद का।
तोहफ़ा आज हुक्म है मेरे आफ़रीद का॥

इस थियेटर की प्रकृति और उद्देश्य के अनुसार संगीत और नृत्य का स्थान काफ़ी महत्वपूर्ण था। यह थियेटर पारसियों और पूरब के लोकरंगमंच के जिन तत्वों का मिश्रण हो गया था, इन दोनों परम्पराओं में संगीत का बड़ा

स्थान था। पश्चिम की अपेक्षा हमारे यहाँ के लोकरंगमंच में संगीत, नृत्य-नाट्य के सामने कुछ नहीं था। भारतीय दर्शक संगीत और नृत्य की अपनी बलवती परम्परा से बंधे रहनेवाला था। नर्तकियों द्वारा नाच-परम्परा भी खूब थी। पारसी थियेटर में यह संगीत-नृत्य उसी परम्परा से, बंधनों से यहाँ प्रयुक्त हुआ है।

अपना दुख है 'रस्तम व सोहराब' में संगीत और नृत्य का इस्तेमाल उसके थियेटर और नाट्य-विधान के अनुसार केवल कनीजों की रक्स (नृत्य) के रूप में किया है। निस्सन्देह, 'रक्स' केवल नृत्य को कहते हैं, पर लोकरंगमंच में नृत्य के साथ इतना संगीत मिला हुआ है कि यहाँ रक्स में संगीत का होना लाजमी हुआ है।

संगीत-नृत्य के स्तर पर उत्तरार्ध अथवा पारसी थियेटर की दूसरी प्रवृत्ति धारा का प्रवर्तन 'बेताब' और राधेश्याम के अन्तर्गत किया गया है। इस प्रवृत्ति के अन्तर्गत हम ने ली जो नाटक—जैसे 'बिल्वमंगल', 'सूरदास', 'श्रीकृष्ण का बचपन' लिखे हैं, उनमें संगीत-नृत्य की भरपूर विधा और इस अंग पर उत्तरोत्तर आग्रह बढ़ा है। संगीत और नृत्य का अध्ययन आगे हम विस्तारपूर्वक करेंगे।

दूसरी धारा पुराण और पुनरुत्थान की : 'बेताब' और राधेश्याम का नाट्य

धर्म, पुराण के आधार से राष्ट्रीय पुनरुत्थान की चेतना ने पारसी थियेटर को एक और स्वरूप दिया। कथावस्तु, चरित्र-चित्रण की नवीनता ने यहाँ स्वभावतः कथा और चरित्र-विधान में कुछ और विशेषताएँ पैदा कीं। इस धारा के नाटकों का मुख्य दर्शकवर्ग की भावना और मनोरंजन एवं पर बिलकुल स्पष्ट रूप से निश्चित था। हिन्दू धर्म, राष्ट्रीयता और दल के प्रति, अपने पवित्र धार्मिक रिवाजों के प्रति दर्शक में गौरव पैदा हो सके, इसे ध्यान में रखकर 'बेताब' और राधेश्याम कथावाचक की तरफ व्यावसायिकता के मिश्रित तो भी नहीं मुड़े।

विषयवस्तु के अनुरूप और अनुसार इनके नाटकों में संस्कृत नाट्य-रूप-परम्परा थी, जिसमें वे लोग अपने धार्मिक चरित्रों, अवतारों को सही तरीके से रखते थे। पर व्यावहारिक रूप में मंचन का पश्चिम का यह रंगमंच, और उसीके आकर्षण में पारसी और उर्दू दोनों रूपों में। अर्थात् चेतना न था संस्कृत रंगमंच और व्यवहार में यह परिवर्तन था थियेटर—उसीके तरीके, बल्कि नाटकों में मुख्यतः 'बेताब' और राधेश्याम का नाटक तैयार होता है।

कथा और चरित्र-विधान

पारसी थियेटर में 'बेताब' एक ऐसे महत्त्वपूर्ण नाटककार थे, जिन्होंने

पौराणिक नाट्य-लेखन की प्रतिष्ठा दी। बालकृष्ण दीक्षित, नारायण के बाजार में इन्होंने धर्म को नाटक का विषय बनाया और होंठ तो इस प्रकार के, जहाँ नाटकरिया छिपी थीं, कहाँ चोर के रूप में मुखाग्र को लिए रखा था। 'महाभारत' नाटक 'नारीय उत्तीय जनवरी' तीन को लेकर को स्वर्गीय नेह कावनजी पानजी खड़ाक की कलाकी द्वारा मंगल विवेचन देहली में पहली बार मेला गया। जब यह नाटक रंगशाला में आया तो सत्य के गुण बल से असत्य के जन्मदाता पर विजय प्राप्त की। एक ऐसे अकीर्ण नाटकों तथा हिन्दू राजाओं तथा महापुरुषों के मजाक बनाने वाले नियमों में कार्ड बनाना असंदृष्ट थी। जिन्हें नाटक थे, जो लोग अपने कुटुम्ब की स्त्रियों को नाटक दिखाना पाप समझते थे, तो विवेचक साथ आ-जाकर दिखाने लगे। विषयों ने जो उसका इतना आदर किया कि मेरी को विवश कर न केवल दिल्ली के लिए और मजबूर एक नाटक करना पड़ा था, जिसके पूरा दाखिल नहीं होते थे।"[1]

पेतरब के इन शब्दों से यह स्पष्ट है कि हिन्दू धर्म और उसके दैव पुराण-कथाओं की भावना के उद्देश्य से ही नाटक की रचना और परिवेश-विधान को बात हर तरह से सर्वोपरि है।

'महाभारत' और 'वीर अभिमन्यु', इन दोनों नाटकों में कथा और परिवेश-विधान हुए के 'पहाड़ व सोहराब' से सर्वथा भिन्न है। इसमें अंक नहीं तीन ही हैं, पर दोनों पौराणिक नाटकों में जैसे पूरे महाभारत की कथा चलती है प्रकरण है। पौराणिक पात्र भी उतने ही हैं और उसी रूप में हैं। परिवेश-विधान इतिवृत्तात्मक है। आदि से अन्त तक यह चरण सीमा पर नहीं रुकती, बल्कि भारतीय दृश्य में यह चमत्कार (कलाएँ) तक गयी है।

उदाहरण के लिए 'महाभारत' नाटक में कथा ठीक महाभारत की तुल्य कथानुसार कृष्णार्जुन के राजसूय यज्ञ से शुरू होकर स्वर्गारोहण तक है, बल्कि स्वर्ग में प्रवेश तक। इसी तरह 'वीर अभिमन्यु' का कथानक अभिमन्यु की मृत्यु के बाद से समाप्त है, जयद्रथ-वध तक नहीं। क्योंकि इस नाटक का नायक युधिष्ठिर सीजर की तरह नाटक के पहले भाग में ही समाप्त हो जाता है। तथापि कुछ मित्रों के आग्रह से लेखक ने परीक्षित का राज्याभिषेक और दिखा दिया है, जो इसकी कथा में अभिमन्यु-वध की घटना का जोड़ शामिल करने के लिए तथा संस्कृत नाटकों के नियमानुसार नायक की मृत्यु तक नहीं के लिए अच्छा ही हुआ है।"[2]

किन्तु उल्लेखनीय यह है कि मंगलाचरण, नटी-सूत्रधार के बाद 'वीर अभिमन्यु' के पहले अंक के दूसरे दृश्य में यह अभिनाटकीय शुरू हो जाती है

1. पेतरब, 'महाभारत' की भूमिका से
2. वही
3. 'वीर अभिमन्यु', भूमिका, लेखक : विद्यालय, पृष्ठ 21-22

जो पारसी थिएटर की अपनी चीज है और यह अतिनाटकीयता कथा और चरित्र दोनों स्तरों पर उत्तरोत्तर बढ़ती हुई जघन्य-बिन्दु तक जाती है। पर इसके उपरान्त धीरे-धीरे 'महाराज की जय' और इसके बाद भी राजेन्द्र के राज्याभिषेक के 'उपसंहार-दृश्य' कभी भर। नाटक जैसे कुछ विशेष तत्त्व से यह नाटक समाप्त होता है, और कैसे प्रसन्नता समाप्त होती है। फिर भी रंगमंच ने इस पुराण-कथा को नाटकीय बनाने के लिए कुछ प्रयत्न भी किए हैं। कुछ घटनाओं का इन्होंने निषेध भी किया है—जैसे 'गीता' का प्रसंग, दुर्योधन का विश्वास्त्रों व रक्त अभिमन्यु को निःशस्त्र करना, भीम का अर्जुन के घोड़ों को मारने की प्रतिज्ञा करना, कृष्ण का अर्जुन को कैलाश ले जाना आदि।

महाभारत का भी कथा विधान ठीक इसी तरह है—कृष्णा के चमत्कार और प्रसन्नता की भावना से युक्त।

तीनों नाटकों में दो चीजें और हैं—'लोकगाथाएँ' है। 'वीर अभिमन्यु' में राजा बहादुर की कथा लोकगाथा का प्रसंग है, जो मूलकथा के साथ-साथ विडम्बना, लोक-गाथा, राजा की मस्ती के उल्लेख में है। पर इसका संबंध मूलतः नाटक के [illegible] 'पात्रों' के अनुसार नहीं है, यह है पश्चिम के [illegible] से अनुकरण।

'महाभारत' में केवल उमरि और नयी गोपी का 'लोककथा' प्रसंग [illegible], 'अंधुरीयार', 'अली-उपदेश' और 'गाय-भजन' (लोकिक विलोक) की मिश्रित-सी भाषा में गाया है।

गीत-विधान में भी दोनों नाटकों में भारतीय गायक-नायिका और ड्रामा के हीरो-हीरोइन के मिले-जुले तत्त्व एकत्रित कार्यरत हैं। 'वीर अभिमन्यु' में राजा बहादुर के परिवार की 'विदूषक' नाम देखा गया है, परमानन्द खटाऊसिंह इसके विदूषक लगते हैं—पर इसका संस्कृत के विदूषक से इनके चरित्र का न कोई साम्य ही है, न वैसा कोई नाटकीय-विधान ही इनके जुड़ा चलता है। इस के चरित्र की अपेक्षा यहाँ के चरित्र और भी ज्यादा प्रलापवादी, [illegible] और चीखने-चिल्लाने वाले हैं। इनमें संघर्ष बाहर के प्रदर्शित है—क्योंकि मारा नाटक ही [illegible] है, और इनमें भी अधिक से कई तीखा-व्यंग्य, हिन्दू एवं भारतीय सोच के उपदेशक और प्रवक्ता भी है। [illegible] नाटकीय चरित्र को कोई महत्त्व नहीं दिया होगा, अपितु वह पुराना पुराण-बोध भी नहीं उभरता उनकी [illegible] भूमिका के कारण।

इस तरह से रंगमंचीय [illegible], [illegible], [illegible] और [illegible]—ये सीमाएँ [illegible] उभरकर आती हैं।

रंगमंच-विधान

'रूपक' और 'ड्रामा' इन दो विरोधी नाट्य-परम्पराओं के [illegible] में एक

नाटकों के शिल्प और रंग पर कुछ अजब तरह का उद्देश्यों का प्रभाव पड़ा है। एक ओर इनमें हाई मेलोड्रामा, भयावह दृश्यों और गानों की रचना होती है, पर दूसरी ओर इनमें उपदेश, समाज-सुधार और धर्म की झलकी, रामलीला, कृष्ण-लीला की झाँकी का आभास मिलता है। अजब था इस संक्रान्ति-काल के दर्शक की रुचि और मनोरंजन-स्तर। वह एक ही नाटक में परस्पर विरोधी न जाने कितनी चीजें, जश्न, दिल-बहलाव, उपदेश, जोश, हँसी, आँसू और विस्मय, आश्चर्य, नाच-गाने, युद्ध-शान्ति, तड़क-भड़क, नीरव-नीलम-वंदन—और न जाने क्या!

बेताब, राधेश्याम और इस धारा के दृश्य में इस तरह से इतनी रचना-का विविधता, अस्वाभाविकता, घटना-प्रधानता और स्व-अभिव्यक्तिपूर्णता के लिए उस काल का वही दर्शक-वर्ग और समय की माँग की पूर्ति का कारण-कारण तत्व इतना जिम्मेदार है और मूल है पूरे पारसी थिएटर की विशुद्ध व्यावसायिक वृत्ति। बेताब रंगमंचीय भी व्यावसायिक रंगमंच का नाटककार था और उसका रंगमंच भी उस काल के दर्शक की माँग-पूर्ति था। पर मूल अन्तर यही सांस्कृतिक स्थिति का है, और सृजन-प्रतिभा का।

अंक और दृश्य

'महाभारत', 'वीर अभिमन्यु', 'आगा हश्र का थियेटर' यहाँ तक कि 'आँख का नशा' और 'खूबसूरत बला' जैसे नाटक इस रंगमंच-परंपरा के अन्तर्गत प्रस्तावना, ईश्वरोपासना, पूर्वरंग और मंगलाचरण से शुरू होते हैं। इन प्रस्तावनाओं और देव-पूजन-स्तुति से कई दिलचस्प बातें पकड़ होती हैं। संस्कृत नाट्य में रंग और रंगशाला-तन्त्र के अनुसार विशेषतः देवी देवताओं का मंगलाचरण होता था, यहाँ ऐसा कोई नियम नहीं है। 'थियेटर' विचारधारा व आयोजनाओं में अतः इनकी प्रस्तावना, 'थीम' और 'आइडिया' के मंगलाचरण से होती है। राधेश्याम कुछ गणेशवन्दना के अलावा इनकी प्रस्तावना (मंगलाचरण) सारे हिन्दू देवताओं की पूजा-भक्ति से भरपूर है। 'आगा हश्र के मंगलाचरण' खूबसूरत बला' की प्रस्तावना में रंग की माँग 'जोगी-न्यारी, बलिहारी' कहा है और दर्शक की माँग के मुताबिक 'थियेटर' के आयोजनाओं और नाटकों में दर्शकों की रुचि का ध्यान रखा है:

> "हमारा देश भारत
> अँधेरा, निराशा, पाखण्डहीन, जग का दाता
> ब्रह्म ज्योति, 'ज्ञानी सुखकारी।"[1]

'महाभारत', 'वीर अभिमन्यु' में प्रस्तावना अंश (पहले अंक का पहला दृश्य) बहुत लम्बा रखा गया है—दोनों में क्रमशः महाभारत-सार और गीता-सार की दर्शकों को परोसा था।

1. 'खूबसूरत बला' का प्रथम दृश्य

दोनों नाटकों में दूसरा दृश्य कौरव-शिविर और शिशुपाल-भवन (महाभारत) का आता है और वहाँ से 'दुर्गा'-अतिनाटकीयता की शुरुआत सहसा हो जाती है। अन्त द्रौपदी के गीत से होता है। किन्तु 'वीर अभिमन्यु' में दूसरे दृश्य का अन्त दुर्योधन के स्वगत कथन से होता है। 'महाभारत' का तीसरा दृश्य (जबकि दुर्गा दूसरे दृश्य के अन्त में बिलकुल गिर गया था) अतिनाटकीयता से शुरू होता है। दुर्योधन के अपहरण के प्रसंग से, वह दृश्य को ज्वाला लिए शामिल होता है। इसके विपरीत 'वीर अभिमन्यु' का तीसरा दृश्य नाटकीयता से शुरू होता है (जबकि दूसरे दृश्य का अन्त ट्रैजेडिक ढंग से हुआ है)। ठीक उसी तरह 'महाभारत' का तीसरा दृश्य ट्रैजेडिक ढंग से खत्म होता है, अतएव इसका चौथा दृश्य लक्ष्मणा के दृश्य में गाने-नाच से शुरू होता है।

एक दृश्य का दूसरा एक दृश्य अति नाटकीय से दूसरे दृश्य की शुरुआत नाच-गान से—यह दृश्य-विधान सचेत उल्लेखनीय है।

इसी तरह दोनों नाटकों में प्रत्येक अंक का अन्त—जहाँ दुर्गा गिरकर की तरह से किया जाता है।

पहला विस्मयकारी, रोमांचक कार्य व्यापार के साथ। 'वीर अभिमन्यु' के पहले अंक का अन्त—शान्त वीर एक चक्रव्यूह अभिमन्यु का वध करते हैं। आकाश से लेखाओं पर बैठे हुए दर्शक अभिमन्यु की लाश पर गुप्त बाणों से घायल दिखाई देते हैं, सब आश्चर्यचकित होते हैं धीरे-धीरे यवनिका-पतन होता है।

इसी तरह 'महाभारत' के पहले अंक का अन्त—दुःशासन द्रौपदी का चीर उतारता है और चीर बढ़ता ही जाता है। लोक-परलोक दोनों जगह का दृश्य नाटकीय अन्त है। यहाँ अन्त चीर का अन्त करने की दुःशासन अथक जोर लगा रहा है, वहाँ स्वार्थों के नाश नगों के साकेत अपना दुपट्टा द्रौपदी की नग्नता को पहुँचा रहा है—इसीलिए कृष्ण।

'महाभारत' नाटक में आने वाले अंकों की शुरुआत दृश्य के ऊपर नाच-गान के साथ होता है। बहुत सारी कथा इन्हें (पूरे महाभारत की प्रधान कथा) इसी एक नाटक में कहनी थी, इसीलिए उन्हें यह नाच-गान-विधान अपना करना पड़ा है। वैसे उसके लिए संस्कृत का विष्कम्भक दृश्य-विधान बहुत उपयुक्त था, पर उसकी मदद उन्होंने अपने अन्य पात्रों से नहीं ली।

दुर्गा जोकी या पैंडले के साथ अंक का अन्त। 'महाभारत' के तीसरे अंक का अन्त—'दुःख और युधिष्ठिर गायब है। नरक (दृश्य) स्वर्ग में बदल जाता है। स्वर्ग के अधिकारी स्वर्ग का सुख भोगते हैं। अप्सराओं का नृत्य, मनोहर दृश्य—सोमरस (की शोभा)।'

'वीर अभिमन्यु' के दूसरे अंक का अन्त—'दूसरा अभिमन्यु अभिमन्यु वह आशीर्वाद देता है, दृश्य और बढ़ता है। स्वर्ग में अभिमन्यु दिखाई देता है और दूसरे में उत्तरा से कहता है—तुम दुनिया में जिओ, अपने लिए नहीं तो मेरे बच्चों के लिए जियो, इसी अन्तर (जोकी) में यवनिका 'गिरती

जाती है।'

अंत और उपसंहार

इस भाग के नाटकों
है। 'महाभारत' में स्वर्ग
अभिमन्यु' में पुत्र उत्तरा
रणांगन पर एक बोले गि
अन्त में। इस तरह के
(परीक्षित का मल्लयुद्ध
जाती है। इस तरह
भारत की लोक-रंगमंच
रामलीला, रासलीला
आज तक गोकुल है। क
पश्चिम के नाटक-विधान
इस विशेष पारसी
दर्शाता रहा था, लक्षित
करना था।

महाकवि पारसी, पर
समीहलकर भाषण हों,
हों, विलक्षण पात्रों
वह दर्शक।

अन्य रंग-व्यापार अ

पर्दा-परदान, र
है। अन्तर केवल
में है।

यहाँ के कार्य औ
दूर, धीमान और अ
'महाभारत' में
• तथा दुर्योधन
का अन्तर दिखाई
रहता है (
• दूसरे अंक के
दूसरी अन्तिम
'वीर अभिमन्यु
• भीम

जाती है।'

अंत और उपसंहार

इस युग के नाटकों का अन्त तुलात्मक ही नहीं उपसंहारात्मक भी होता है। 'महाभारत' में स्वर्ग का दृश्य अन्त है और उन्हें का प्रवेश है। 'वीर अभिमन्यु' में पूरा अपहरण-वध के बाद जब मूल नाटक खत्म हो जाता है, तो रंगमंच पर एक बोर्ड 'परदा' जाता है, जिसमें लिखा होता है 'महाभारत के अन्त में'। इस बोर्ड को उठाने के पश्चात् अगला उपसंहार वाला विशेष दृश्य (परीक्षित का राज्याभिषेक) आता है। यह भी एक तरह की उपसंहारात्मक झांकी ही है। इस तरह की झांकी में अंक के अन्त-विधान का उद्गम-स्रोत भारत का लोकरंगमंच है—विशेषकर पुराने खेल, प्रसंगोपात्त झांकियाँ, रासलीला, रामलीला की झांकियों की परम्परा पूरे मध्ययुग से लेकर आज तक मौजूद है। कार्य-व्यापारमूलक और चमत्कारपूर्ण दृश्यों के अन्त पर पश्चिम के नाट्य-विधान का प्रभाव स्पष्ट है। और उसकी सांकेतिकता (रिटम) इस विशेष पारसी थिएटर की अपनी चीज है। इसी 'चोज' पर इस बात का दर्शक रोना था, तालियां बजाता था और 'रंगमंच' पहले आस्वादपरक बनता था।

मतलब यानी, घटनाएं हों, ड्रैमाटिक स्थितियां हों, अद्भुत संकेत हों, संगीतमय-भरे भाषण हों, दिलचस्प मजाक हों, कलेजे में छुरी मारने वाले गाने हों, दिलकश नाचों और तर्कीबों के मेल हों—यही सब कुछ तो चाहता था वह दर्शक।

अन्य रंग-व्यापार और अभिनय

प्रवेश-प्रस्थान, रंगकार्य और व्यवहार में कमोबेश वही शैली यहां भी मौजूद है। अन्तर केवल उनके सन्दर्भ और प्रयोग की अतिरंजकता और अति-नाटकीयता में है।

यहां के कार्य और व्यापार पहली नजर में अधिक नहीं ज्यादा विभिन्न, क्रूर, बीभत्स और अस्वाभाविक लगते हैं। उदाहरण के लिए:

'महाभारत' में कुछ रंगकार्य और व्यापार की झांकी :

* राजा दुर्योधन के सामने संजय ने रेशा-रेशा कमर का गोला लपेटकर उसके अन्दर दिखाया है कि यहां बलीवीर मौजूद है। फिर 'जाम्बवन्त-युद्धम्' करता रहता है (पृष्ठ ९)।

* दूसरे अंक के अन्त में द्रौपदी आती है, जीभ दुशासन का पकड़कर उसको अपनी ओर खींचती है और मुंह चिढ़ाकर के द्रौपदी के केश पर करता है।

'वीर अभिमन्यु' से उदाहरण :

* भीम धारिणी को मारता है। उसकी लाश पर बैठकर खूब

[illegible]

[illegible] को [illegible] करते हुए [illegible] दिखाई देता, उसकी ओर से [illegible] का [illegible] होकर [illegible] है। [illegible] को [illegible] और [illegible] को [illegible] होकर [illegible]।

[illegible] के [illegible] और [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] जो [illegible] [illegible] रह जाता है वह है गीत-संगीत और मुद्रायोजित [illegible] से [illegible] अभिनय का। इसके लिए आवश्यक है पहले भाषा-संवाद का [illegible] कर लें।

भाषा-संवाद

यह [illegible] है कि पारसी थियेटर ने हिन्दी भाषा के [illegible] का [illegible] स्वीकार और [illegible] की है। 'फेनार्ड' ने 'महाभारत' [illegible] की प्रस्तावना में [illegible] के [illegible] पर [illegible] किया है, यह उनकी [illegible] और [illegible]-विधान का उल्लेखनीय दस्तावेज है :

> [illegible] : [illegible] हिन्दी [illegible] उर्दू, [illegible] [illegible] हिन्दी-बुली [illegible] :
> [illegible] [illegible] [illegible] हिन्दी-बुली रूप में बुली [illegible]।

इस तरह की हिन्दी-बुली भाषा का उद्देश्य उस तरह का साहित्यिक संवाद लिखना नहीं था जिसका लक्ष्य होता है विचार या भाव-संघर्ष की [illegible] गाम्भीर्य, व्यंजना से अभिव्यक्ति। इस भाषा ने भी संवाद का उद्देश्य था :

> "मुख्य उद्देश्य तो मतलब समझाना है, न कि भाषा का गौरव दिखाना।" ('महाभारत' के प्रस्तावना-दृश्य से।)

भाषा और उसमें निहित संवाद का अपना एक उद्देश्य [illegible] था। मुख्यतः 'महाभारत' में, सामान्यतः हिन्दू धर्म के [illegible] जिनके सामाजिक [illegible] [illegible] अनमोल उपदेश [illegible] हैं, उन्हीं को [illegible] योजना के साथ [illegible] जगह-जगह पर 'प्रदर्शित' किया है।

'मतलब समझाना' (वेताब) और भाव-विचार को 'प्रदर्शित' करना —भाषा की इस बेलौस प्रवृत्ति ने यहाँ नाटक के संवाद को मार्मिक नाटकीय [illegible] की अपेक्षा प्रचार, [illegible], वाचन या अधिक से अधिक [illegible] [illegible] तक ही सीमित कर दिया है। यही कारण है कि जब अचानक तीव्र संघर्ष के क्षण आते हैं तो संवाद [illegible] [illegible] में छटपटाकर रह जाते हैं। सम्भवतः [illegible] जो [illegible] संवाद में नहीं सम्प्रेषित हो पाता, पारसी अभिनेता [illegible] [illegible] [illegible] चाहता है— [illegible] रूप से [illegible] [illegible] पारसी है [illegible] [illegible], [illegible], [illegible] या [illegible] [illegible]।

संवाद-संरचना यहाँ तीन संवाद-प्रकारों को लेकर चलती है :

* [illegible] कथन (कथा-प्रधान)
* [illegible] भाषण (विचार प्रधान)
* [illegible] (भाव प्रधान)

अभिनय, मंच और प्रस्तुतीकरण

[illegible]

[illegible]

[illegible]

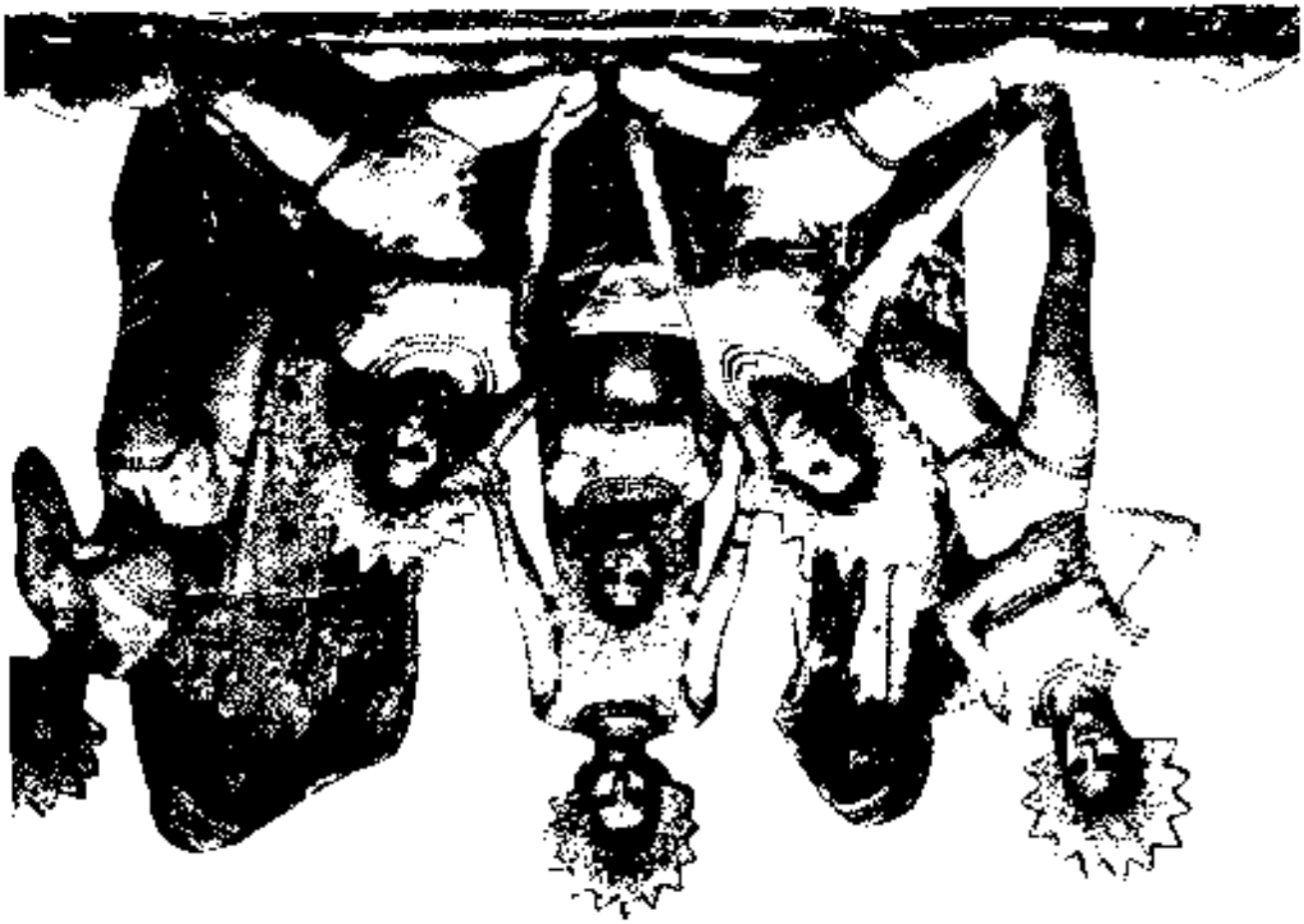

[illegible]

* आत्मप्रकाश [illegible]
करना।
* जनात्मिक [illegible]
* [illegible]
* कर्मात्मक [illegible]

और संकेत के इतने [illegible]
अग्नि का [illegible],
प्रदर्शित [illegible]
में एक विधान [illegible]
करना। [illegible]

[illegible]
है गाना के [illegible]
विषय को लेकर [illegible]
कृष्ण (यशोदानन्दन) [illegible]
आने वाला कुंवर, [illegible]
गाता गाता है :

बाकायदा तीन अ[illegible]
और गायन [illegible]
पर आने वाली [illegible]
[illegible] 'बेताब' [illegible]
ने 'आत्मिक', [illegible]
[illegible]
का प्रमुख [illegible] है।
पर पश्चिमी शैली [illegible]
इनके अतिरिक्त, [illegible]
गए हैं।

आत्मिक-[illegible]
भारतीय लोकगीतों [illegible]
दुर्योधन [illegible]
[illegible]
[illegible]
एक गाने में [illegible]
दुर्योधन :
[illegible]
[illegible]

[illegible] ।

* आत्मप्रलाप (दो-तीन, या कुछ में चीख-चीखकर अपने-आपको प्रकट करना)
* जनश्रुति (अफवाह)
* संवाद (कथा-योजना के अंगों में नाटकीय वार्ता)
* कथोपकथन (डायलॉग)

और संवाद के अपने स्वरूपों में भी तब पात्र-सम्प्रेषण नहीं हो पाता, दृश्य का, चरित्र का स्वरूप, घटना का, कथ्य का स्वरूप जब नहीं समझ में आता या 'प्रदर्शित' नहीं हो पाता तब इसके लिए पद्य अंश ले। प्रयोग होता है। पद्य अंश में एक विशेष यही है आगा दृश्य का [illegible] घटना को कहकर उसे सम्भावित करना फिर उसे 'पहले तकलीफ' में भावना जगाने के लिए कहना।

'नेत्रा' और 'राधेश्याम' में पद्य-प्रयोग का एक रूप (टुकड़ा) इस रूप आता है 'गाना' के रूप में। अभिमन्यु पहले अंक के चौथे सीन में जहाँ प्रेम और कर्तव्य विषय को लेकर स्वगत कथन, भाषण और आत्मकथन करने-वाले सब कुछ (कथासम्भव) कह लेता है और इस निर्णय पर आता है कि 'युद्धस्थल को जाने वाला दूत, पहले प्रेमस्थल में जाता है' तो इसकी चरम व्याख्या में एक गाना गाता है :

देखो, प्रेम का पंथ निराला।

वास्तवतः तीन अंकों आगे इस प्रेमपथ को लाकर तब वह प्रस्थान करता है। आगे तीसरा दृश्य फिर 'चौबोला' गीत से शुरू है, और तब इस गीत के आधार पर आगे राधेश्याम ठाकुर के चरित्र की व्याख्या पर उतर आती है। प्रायः यही स्थिति 'विराट' के 'महाभारत' में है। इस तरह के संवादों और गाना-प्रयोगों से 'वाचिक', 'आंगिक' अभिनय का जो स्वरूप सामने आता है, उसपर चपलीला, कृष्णलीला, रासलीला, गरुड़ा और तोरंगी-नौटंकी-शैली के तत्त्वों का प्रभाव होता है। आजकल शौकरणवंश शैली के स्थान के चमत्कार तथा अभिनय का पारिवारिक शैली का परिवर्तन या मुख्यतः [illegible] के लिए इन नाटकों में [illegible] अतिरंजित, हास्यअंगज और वीभत्स घटनाएँ और कार्य-व्यापार रखे गए हैं।

आंगिक-वाचिक अभिनय, प्रायः संवाद से पुकारा (नाच भी) होने के कारण, आजकल मंचे रंगमंच के शैलीबद्ध अभिनय का बहुत गवीप था।

दुर्योधन—यह रण का बाजा अब मुझे नहीं सहाता है।
युद्ध का रस मेरे हृदय के भावों को बदरंग बनाता है।
[illegible] मेरे [illegible] की याद दिलाता है।

इसी तरह दो परिस्थिति और कथ्य की सोचने के लिए 'चौबोला' (छन्द) का इस्तेमाल :

गलाम मे हो गी रही, और [illegible] की हार
[illegible] को [illegible], [illegible] है [illegible] !

'बेताब' और 'शाहेख्वाब' तथा सामान्यतः सभी पारसी थियेटर में अभिनय मूलतः वाचिक और स्थूल आंगिक था। व्यंजना की वहां गुंजाइश नहीं थी। जहां आ भी जाती थी, वहां शेर, बहरे-तवील, बहरे-खफीफ, चौबोला, दोबोला, घनाक्षरी, कुंडलिया आदि में कहकर, सूचित अथवा परिभाषित कर दिया जाता था।

यह सारा रंगमंच चमत्कारपूर्ण दृश्य, घटनाओं, कथाओं से पटा था, साथ ही समाज-सुधार, राष्ट्रीयता, धर्म-सुधार, धर्म-उपदेश और आदर्श कथनों-भाषणों से लबालब था। आर्यसमाजी जनता, हिन्दू सनातन धर्मी जनता, स्त्री समाज, गरीब-धनी और आजादी की लड़ाई के जज्बातों से भरी हुई जनता, या जो भाव रंगमंचीय है, हंसोड़े, अन्तर्मन—सब पूरे दर्शक वर्ग के लिए प्रत्येक नाटक में तरह-तरह से परोसा जुटाया हुआ होता था। उनके लिए अकूत साधन का भाण्डागार-कक्ष।

रंग के अभिनय के स्तर से जहां एक ही संवाद में अनेक तरह की भावनाओं के अभिनय की एक के बाद एक की स्थिति थी, यहां भी एक संवाद में कई तरह की भावनाओं की स्थितियां आती हैं, पर वह स्थिति तार केवल झनझना कर भाव सूचित कर दी जाती है या गाना गाकर उसे संप्रेषित कर दी जाती है। 'वीर अभिमन्यु' के पहले अंक, चौथे गीत के अभिमन्यु के चरित्र-अभिनय की स्थिति देखिए या 'महाभारत' के पहले अंक, तीसरे दृश्य के दुर्योधन की स्थिति देखिए।

प्रस्तुतीकरण विधान के कुछ तथ्य

पारसी थियेटर के इस रूप के नाटक, और सामान्यतः सारे नाटकों के लिए विशेषतः जिन्हें घूम-घूमकर अनेक शहरों, गांवों, पड़ोसियों आदि के बदले होने से कलाकारों को दौरे या नाटकियता-तत्त्व इसलिए स्थायी आधार स्टेज और रंगशाला बनानी पड़ती थी। नए अन्दाज के लिए रंगमंच की चौड़ाई (स्टेज और चैम्बर ने स्थान लिया) कुछ कम, कुछ बढ़ती थी और लम्बाई रहती थी साढ़े कुछ। ड्रेसरूम की जगह (जहां अलग होती थी) दोनों (दर्शकों की जगह) की लम्बाई एक भी तरह कुछ बढ़ती थी, और चौड़ाई साढ़े कुछ। स्टेज के बीच में एक पुर्जा भी रहता था—जिसका नाम गुरुत्व बनाकर भी रखा जाता था, जिसकी बीच-बीच में रहती थी। पुर्जों में पर्दा लगा था पुर्जों के निकट आता उसी पुर्जे द्वारा होता था। इसी दिशाओं का जरूर होता था अन्यथा होता तो उस पुर्जे द्वारा ही आता, रखा जाता था। इसके अतिरिक्त, एक मशीन की तेजी रहती थी जिसे विभिन्न दिशाओं में चलने वाले भाव को प्रकट करने या नीचे गिराया जाता था। मशीन घुमाने वाला, मशीन के पीछे से घुमाकर मशीन घुमाता था।

इस गीत के साथ स्टेज मेकेनिक रहता था वह एक चाबुक घुमाकर

1. [illegible]

करता था—जो लकड़ी की, पहियेनुमा होती थी, और जिसकी आवाज ऐसी निकलती थी, मानो कोई चीज फट रही है। सीन-ड्रॉपकर के समय यही लकड़ी घुमाई जाती थी। स्टेज मैनेजर ही ड्रॉप सीन उठाने-गिराने की घंटी भी बजाया करता था। डोरे वाली इन्हीं-सी घंटी का सम्बन्ध रंगमंच के ऊपरवाले भाग के मचान से भी रहता था—जहाँ पर्दे खींचने और गिराने वाले एक-दो आदमी हाजिर रहते थे—स्टेज मैनेजर की घंटी पर ही वे पर्दे उठाने-गिराने का काम करते थे। उन हाजिर रहने वाले कर्मचारियों की देखरेख भी बड़ी जिम्मेदारी की थी। बिजली का नल तथा स्वीच भी स्टेज मैनेजर के पास रहता था—जिसका बटन दबाते ही हारमोनियम मास्टर के आगे एक हल्की-सी बत्ती जल जाती थी—जिसे गाने की तर्ज शुरू करो। या इस गाने की धुनमोर दी जाती है—फिर गाना होगा तो। स्टेज मैनेजर ही प्रत्येक दृश्य की पोशाक-बाजा-पोशाक आदि देखा करता था। अपनी बुद्धिमत्ता स्टेज मैनेजर को दिखाकर ही नट स्टेज पर जाता था। एक विश्वस्त और ज्ञानवाला कर्मचारी भी स्टेज मैनेजर के पास बैठता था जो स्वयं भी तथा स्टेज मैनेजर की आज्ञा से भी—प्रिम्पटबुक में गलतियाँ लिखा करता था। इस तरह की लिखी हुई गलतियाँ—वही नाटक जब फिर कभी किसी रात को होता था—तो दिन की रिहर्सल में—डाइरेक्टर ठीक करता था या एक्टरों से अवाव-तलब करता था। नाटक की इस्लाहिया किताब रात को थियेटर में नहीं रहती थी और न प्रामप्ट ही दिया जाता था। फिर स्टेज मैनेजर को सम्पूर्ण नाटक कंठस्थ भी होता था। यदि एक्टर इतना भूले कि नाटक खेल में भद होने की नौबत आ जाए तो स्टेज मैनेजर अपनी याददाश्त से प्रामप्ट देता था; पर उसके बाद—फिर वह नाटक हो तो—उस एक्टर का पार्ट ही छिन जाने की नौबत आ जाती थी या वह बहुत शर्मिन्दा होकर क्षमा माँगे तो डाइरेक्टर क्षमा की आज्ञा देता था। इस तरीके का असर यह था कि एक्टर से ऐसी गल्ती होती ही नहीं थी। हो तो पार्ट जाए, पार्ट गया तो पोजीशन गई। पोजीशन गई तो नौकरी खत्म। स्टेज मैनेजर का यह सभी काम तथा रिहर्सल में असिस्टेंट डाइरेक्टर का काम एवं सीनरी, ड्रेस और नाच-सम्बन्धी कार्य सोराबजी के समय में मोतीलाल ने किया है, और मेरे जमाने में नगदाशंकर शिष्टा नायक ने। इस पद की भी कल्पनी में शान रहती है—सभी स्टेज का स्टाफ उसके हाथ में रहता है। उसके ऊपर डाइरेक्टर का पद है और फिर उसके ऊपर मालिक का।[1]

जहाँ तक है, वस्तुतोऽपि ने सबसे अधिक ध्यान रंगमंच पर दिया जाता था। दर्शकों को चमत्कारपूर्ण दृश्य द्वारा ही प्रभावित करना और रंगशाला में उन्हें बाँधे रखना उनका प्रधान उद्देश्य था। बेताब, आगा हश्र, राधेश्याम और

1. राधेश्याम, 'मेरा नाटककाल' पृष्ठ 157-158

व्यापकता की दृष्टि से कथा और चरित्र विधान में कुछ नया और कलात्मक मार्ग आ गए थे पर उस काल के विशाल दर्शक के लिए चमत्कार सबसे बड़ी चीज थी। इस चमत्कार के आगे पारसी नाटक और प्रस्तुतीकरण में स्वाभाविकता और यथार्थ तत्व की सदैव हत्या हुई है। जैसा हम आगे जरूर कह सकते हैं पर उस काल विशेष में वही बड़ा नाटक था और वही महान प्रस्तुतीकरण है—जिसपर उस काल के नेता, पत्रकार, समाज-सेवी सभी मुग्ध थे।

दर्शकों पर ये विलक्षणताएँ इसलिए भी दिखाए जाने जरूरी थे कि उनसे दर्शक चाहकर ही नाटक के सारे दोषों की ओर ध्यान ही न दे सके। स्टेज पर आँधी आना, बिजली चमकना, सिर पटके हुए, आकाश में तारे टूटना, भयंकर-विकराल दानवीय मूर्तियाँ दिखाना, लोगों का मुँह से आग और धुआँ निकलना और इस तरह के हजारों और दृश्यों, नजारों, करिश्मों के आगे कौन ध्यान देता है कथा, पटना, चरित्र और भाषा की स्वाभाविकता और प्रतीति पर? वह युग, वह दर्शक वर्ग, वैसा विशिष्ट था ही, जिसने वैसा स्वरूप चाहा और उसमें मोह लिया, आवेश सुना और मोहित हुआ।

संगीत और नृत्य

आगे के अध्याय में इस विषय का विस्तृत अध्ययन है। यहाँ प्रसंगवश इसके आधार पर चर्चा है।

चमत्कारपूर्ण दृश्य हो, उपदेशपूर्ण अतिनाटकीय नाटक हो तो उसके अनुकूल, चाहे उसके पूरक रूप में वैसे ही संगीत और नृत्य की अनिवार्यता होती।

विशाल दर्शकवर्ग जाहिर है, जो उतना ही अरुचि, बोलने वाला, शोर मचानेवाला, बलामोर करने वाला, ताली बजाने वाला, जय-जयकार करने वाला है, उसे संवाद सुनाई पड़े, उसके लिए पारसी अभिनेता एक विशेष जोर और लहजे में स्वर को एकाएक ऊँचे उठाकर गिराता था, ताकि दर्शक चुप होकर सुने और संवाद के गिरते ही वाह-वाह कर उठे। इस अनवरत शोर—वाहवाही—में संवाद का भी गाना स्वाभाविक था। इसीलिए संवाद के इसी भाव को लिए न विश्व में अभिनेता वैसा करता था; और पूरे दृश्य, अनुकूल, प्रसंग के भाव पर अलग वह गाना गाता था। अतिसंगीत की यह स्थिति 'महाभारत' और 'वीर अभिमन्यु' में इसीलिए इतनी ज्यादा है कि इन दोनों नाटकों पर कोई न कोई गीत है। यही स्थिति नृत्य की भी है। 'महाभारत' के प्रत्येक दृश्य का आरम्भ गीत, नृत्य या दोनों से होता है, बीच में भी गाने और नृत्य दृश्यों के अंत में भी गाने।

गीतों के प्रयोग की भिन्न-भिन्न वजहें हैं, परिस्थिति को और नाटकीय बनाने के उद्देश्य से। जैसे

* समूह-गान
* [illegible] गान
* सवाल-जवाबी गान
* दो [illegible] गान

[illegible] नृत्य भी [illegible] नृत्य तक। इसरी ओर स्त्री-[illegible] आकर्षक की व्यावसायिक [illegible] और गाने की तर्ज पर [illegible]

'[illegible]' और '[illegible]' [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] किन्तु संवाद के [illegible] [illegible] [illegible] किया है [illegible] [illegible] किया हुआ संगीत [illegible] [illegible] [illegible]

* समूह-गान
* एकाकी गान
* सवाल-जवाबी गान
* दो-तरफा गान।

इसी तरह नृत्य भी तरह-तरह के, एकाकी नृत्य से लेकर दो, तीन और समूह-नृत्य तक। दूसरी ओर स्त्री-पुरुष के सम्मिलित नृत्य से लेकर लास्य-नृत्य तक। आजकल की आडम्बरपूर्ण प्रस्तुतियों की तरह नये से नये नाच के ढंग और गाने की तर्ज पर एम्बूलीकरण का सूत्र पिरो रहना था।

वैतालिक और राजेश्वरम् ने 'महाभारत' और 'वीर अभिमन्यु' में पुरुष-स्वर, वेसर, कहरवा, ढोल और वादन का प्रयोग किया है। संगीत के अतिरिक्त संवाद के साथ-साथ इन्होंने 'गवाक्षों', 'कुंडलिया', 'पद' आदि का भी इस्तेमाल किया है। पर यह भी उल्लेखनीय है कि दूसरी ओर (दृश्य) में इस्तेमाल किया गया संगीत और 'बरवै-सवैल', 'बहर-तवील' का आकर्षक प्रयोग कहीं भी मन्तव्य नहीं है, अतः 'विलास', राजेश्वरम् ने नए संगीत और छन्द भी दिया है। शायद इसलिये छुपाने के लिए इन दोनों ने संस्कृत के कुछ अत्यन्त ही योग्य कलाकारों, उपकरणों और मंत्रों को पूर्ण संस्कृत में ही नाटक में रख लिया है।

पारसी थियेटर का समूचा नाट्य और संगीत आगे चलकर अपनी जिन्दगी में रंगमंच और रूपक है। विषय, उद्देश्य, कथानक, चरित्र, कर्म, संवाद, दृश्य, अंक तथा प्रस्तुतीकरण इन सभी स्तरों पर अतिनाटकीय है। दृश्य में निस्संदेह कुमार की चेतना और प्रतिभा अत्यधिक है। पर दूसरे पक्ष के नाटकों में मूलतः न भाषाचार और उपदेशक—कारणकर्ता थे, फलतः इनके नाटक में नाटक, भाव और संगीतमय में बाधाएँ, अस्वाभाविकता, बहुदेशीयता होना अनिवार्य-सा हो गया है।

दृश्य की अपेक्षा इन दोनों नाटककारों ने भारतीय संस्कृत और लोक-रंगमंच के अनेक तत्वों को अपने ढंग और अपनी शैली में काफी इस्तेमाल किया है।

6

पारसी रंगमंच के आधारभूत तत्त्व

पारसी रंगमंच व्यावहारिक रंगमंच था। इसने भी अपना यह व्यावसायिक रंगमंच था। फलतः सभी नाटकों की रचनाएं इसी व्यावसायिक रंगमंच की मांग और इसकी शर्तों के अनुसार होती थीं। यह एक ऐसी अपेक्षा थी जिसके चलते नाटककार कम्पनी के मालिक की नीति के भीतर आती [illegible] था। सभी-सभी कम्पनी का मालिक ही रंगमंच का निर्देशक और प्रस्तुतकर्ता भी था। यही नहीं, किसी किसी कम्पनी में निदेशक ही रंगमंच की मांग के अनुसार नाटककारों से विशेष नाटकों की रचनाएं करवाता था। इसकी समूची कार्यवस्तु और लेखन प्रवृत्ति को अनुशासित करता था। इसका मैं परिचित करता था, अपनी नजरों से कुछ दृश्यों को, रिहर्सल के दौरान फिर

से लिखवाता था। विशेष प्रभावों और तत्त्वों को नाटक में कार्य के अनुसार लिखवाता था। अभिनेताओं की विशेष क्षमताओं के अनुसार ही नायिका की कल्पनाएँ की जाती थीं। उनमें वे तत्त्व, वे विशेषताएँ मिलाई जाती थीं, जिनके अभिनय में कम्पनी के अभिनेता और जिनकी प्रस्तुतीकरण में कम्पनी के निर्देशक विशेष रूप से दक्ष होते थे।

इसी प्रकार जिस कम्पनी में जैसे अभिनेता होते थे, जैसे हास्य-अभिनेता और खलनायकत्व के अभिनेता होते थे, तदनुसार नाटक में उनकी भूमिकाएँ पैदा की जाती थीं। अभिनेत्री या अभिनेता अच्छा गायक है तो उसे ध्यान में रखकर नाटक में ऐसी विशेष स्थिति पैदा की जाती थी कि कलाकार के उस विशेष गुण का इस्तेमाल हो सके। यही स्थिति नृत्यतत्त्व, युद्ध-तत्त्व, वाक्-तत्त्व आदि की भी होती थी। यह स्थिति वहाँ तक बढ़ी हुई थी कि अल्फ्रेड जैसी कम्पनी में, जहाँ दृश्य बनानेवाले एक से एक बड़े कारीगर थे, ऐसे ही नाटक चुने या लिखवाए जाते थे, जहाँ अद्भुत आश्चर्यजनक सेट-निर्माण करने की गुंजाइश हो।

इस तरह पारसी रंगमंच वस्तुतः अपने विशिष्ट रंगतत्त्वों के लिए अद्वितीय हो उठा था और उन्हीं विशिष्ट तत्त्वों के सामूहिक प्रभाव से वह विशेष रंगमंच सिद्ध हुआ था। अध्ययन की दृष्टि से उन रंगतत्त्वों को हम इस तरह बाँटकर देख सकते हैं :

- निर्देशक
- सिहर्ल या सेनारी (स्टाइल)
- अभिनय
- प्रस्तुतीकरण की शिल्पविधियाँ
  - (अ) मंचसज्जा
  - (ब) वस्त्र और रूप-विन्यास
  - (स) ट्रॉली अथवा टैब्लो
  - (द) प्रकाश और ध्वनि प्रभाव
- गीत और नृत्य।

ऊपर के ये रंगतत्त्व पारसी थियेटर ने अपनी निजी विशेषताओं के लिए परम विकसित थे। प्रत्येक तत्त्व के लिए कम्पनी किसने पैसे और श्रम खर्च करती थी, इसका अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि कोई भाग्य दर्शक को दिखाने से पूर्व कम्पनी के मालिक के सामने संपूर्ण रूप से प्रस्तुत किया जाता था तो मालिक यदि उसमें किसी तरह की कमी पाता तो अभिनय प्रदर्शन दर्शक के लिए बहुत देर तक रोक लिया जाता, जब तक वह कमी दूर न हो जाए।

रभूत तत्त्व

निर्देशन

पारसी रंगमंच में निर्देशक का स्थान सबसे ऊँचा था। [illegible] इसका कि निर्देशक ही नाट्य-लेखक को दुनियावी तौर पर अनुशासित करता था। उसी-ही पलट में नाटक का कुछ होता और यही नाटक के दृश्यों को फिर से लिखवाता और नाटक को नक़ली संरचना पर अपना प्रभाव डालता। न्यू अल्फ्रेड के वरिष्ठ डाइरेक्टर मोरावजी ने नाटककार राधेश्याम कथावाचक की पहली फ़िल्म का निम्नलिखित उद्धरण इस बात का एक सबूत है कि निर्देशक का कुछ महत्व दर्शाया गया था :[1]

"सन् 1931 ईस्वी के नवम्बर में न्यू अल्फ्रेड फिर बम्बई आई। [illegible] बार 'अहल्या दामन' लेकर आई, जो आगा हश्र काश्मीरी का लिखा हुआ था। बम्बई की सभी कम्पनियों ने धार्मिक नाटक खेलने की लहर, जो पौराणिक नाटकों को बाकायदा फिल्मोंवाला कम्पनी द्वारा ही हो चुका था, न्यू अल्फ्रेड के मालिक भी [illegible] इस नाटक के बन चुके थे। [illegible] दिल्ली नाटककार [illegible] नहीं लिखा था। मैं [illegible] ही था; कम्पनी के असिस्टेंट डाइरेक्टर मोतीलाल भाई मुझसे 'मिलो आप आप मोरावजी (डाइरेक्टर) से मिलने के लिए मुझे [illegible] किया। यह लिखना की जरूरत नहीं कि न्यू अल्फ्रेड की [illegible] नारायण ने मेरी [illegible] की थी और मेरी [illegible] ने ही मोरावजी को [illegible] किया और तब उन्होंने मोतीलाल द्वारा मुझे बुलवाया और [illegible] से उनसे मिला। मोरावजी बड़ी मीठी [illegible] के डाइरेक्टर थे। [illegible] के बाद उन्होंने मुझसे 'वीर अभिमन्यु' के गीत सुने। [illegible] होने के कारण [illegible] गीत [illegible] गीत पसंद। [illegible] मोरावजी ने 'वीर अभिमन्यु' कम्पनी के लिए पसन्द किया। [illegible] बाद दो-तीन [illegible] मोरावजी ने [illegible] मोतीलाल के लिखवाकर [illegible] कहा। [illegible] मोरावजी ने स्वयं कहा कि मुझे इसी गीत पर [illegible] डालना पसंद है, [illegible] इसका [illegible] है।"

निर्देशक [illegible] अपनी इच्छा-आवश्यकता के अनुसार दृश्यों में अदल-बदल और पुनर्संपन्न ही नहीं करवाता, बल्कि एक-एक शेर में अर्थ पर भी ध्यान रखता था और उसे लिखवाता था।[2] 'वीर अभिमन्यु' के एक शेर पर मोरावजी ने शंका खड़ी कर दी :

> जो [illegible] मोड़ लेता है, वह अपना नाश [illegible] है।
> मेरी बोली के [illegible] ही तोड़ [illegible] से आता है।।

उन्होंने कहा, 'इसकी पहली लाइन अर्थ की दृष्टि से बिलकुल सही नहीं, दूसरी

1. 'मेरा नाटककाल', लेखक : राधेश्याम, पृ० 40, 41, 43, पहला संस्करण, 1957

निर्देशन

पारसी रंगमंच में निर्देशक का स्थान सबसे ऊँचा था। इसका कारण था कि निर्देशक ही नाट्य-लेखन को दृश्यमानी तौर पर अनुशासित करता था। उसी-की पसंद से नाटक का चुनाव होता और वही नाटक के दृश्यों को फिर से लिखवाता और नाटक को नाटकीय संरचना पर अपना प्रभाव डालता। न्यू अल्फ्रेड के प्रसिद्ध डाइरेक्टर मोरावजी ने नाटककार राधेश्याम कथावाचक को पहली बार का लिखित उद्धरण इस बात का एक सबूत है कि निर्देशक का इस समय क्या स्थान था।[1]

"सन् 1921 ई० दिसंबर के नवम्बर में न्यू अल्फ्रेड फिर कलकत्ते आई। इस बार आइना दासजी कंपनी में आ गए। और आगा हश्र काश्मीरी का लिखा नया नाटक था। बम्बई की सभी कम्पनियों में धार्मिक नाटक लिखने की लहर आ गई। पौराणिक नाटक लिखने की प्रेरणा तो शायद कम्पनी द्वारा ही दी जा चुकी थी। न्यू अल्फ्रेड के पारसी भी इस नाटक के बन चुके थे। पर किसी नाटककार उन्हें नहीं मिल रहा था। मैं इसकोशिश में लगा हुआ था; कम्पनी के प्रतिनिधि डाइरेक्टर मोहीलाल भाई मुझसे 'मिला आए आप मोरावजी (डाइरेक्टर) से मिलने के लिए मुझे उत्साहित किया। यह विषय की जरूरत नहीं कि न्यू अल्फ्रेड की रामायण में मेरी सेवाएँ ली चुकी थीं। किसी सेवाओं से ही मोरावजी को प्रभावित किया और वह उन्होंने मोहीलाल द्वारा मुझे बुलवाया और नाटक में उलझा दिया। मोरावजी थियेटरिकल कला के डाइरेक्टर थे। थोड़ी-सी बातचीत के बाद उन्होंने मुझसे 'वीर अभिमन्यु' के तीन सीन लिखने के लिए कहा। ..... मोरावजी ने 'वीर अभिमन्यु' कम्पनी अपनी के लिए पसन्द किया। ..... उसके बाद दो-तीन सप्ताह मोरावजी ने (पुराने अल्फ्रेड के मोहीलाल के लिखवाकर) उन्हें पढ़ा। एकाएक वाशन की समस्या को अपनी राय कायम की कि पहला पर्दा उसी सीन पर डालेंगे, जहाँ अभिमन्यु युद्ध के लिए अभिमन्यु को विदा करती है। मोरावजी ने स्वयं कहा कि मुझे इसी सीन पर पर्दा डालना पसंद है, इससे कला का और उभार हो।"[1]

निर्देशक नाटककार से अपनी इच्छा-आवश्यकता के अनुसार दृश्यों में अदल-बदल और परिवर्तन ही नहीं करवाता, बल्कि एक-एक शब्द के अर्थ पर भी ध्यान रखता था और उसे फिर से लिखवाता था। 'वीर अभिमन्यु' के एक सीन पर मोरावजी ने इसका बड़ी कड़ी कर दी :

> जो आदत तोड़ दोगे है, वह आदत नाश करती है।
> मेरी बोली के कारण ही तोड़ा पिंजरे ने आदत है।।

उन्होंने कहा, 'इसकी पहली लाइन अर्थ की दृष्टि से बिलकुल गलत नहीं, दूसरी

1. 'मेरा नाट्य-काल', लेखक : राधेश्याम, पृ० 40, 41, 43, पहला संस्करण, 1957

लिख दीजिए। मैंने एक दो पन्ने में संक्षेप-सोलह लाइनें लिख-लिखकर नहीं दिखाईं। सब फेल हो गए। मुंशी बेकल और अहसन ने भी उन्होंने लिख-वाईं, आगा हश्र से भी लिखवाईं। अन्त में गलाइसवीं बार मेरी इस लाइनें रखी गईं: अर्थात् :

> जिसको नमाज़ ने मैदान जंग का-सा एक दिखलाया है।
> मोमिन बनने के कारण ही, सोता गिजदे में आया है॥[1]

'मेरा नाटक-काल' पुस्तक में इन्हें ने 'पीर अभिमन्यु' नाटक की एक-एक पंक्ति और शब्द-शब्द पर लिखा। मोतीवाली का उल्लेख आया है।

निर्देशक नाटक की भाषा, भाव और कथ्य की ही जानकार नहीं थे, चरित्र चरित्र-चित्रण पर भी उनका अधिकार रखते थे। 'पीर अभिमन्यु' में सुन्दरी और राजा बहादुर की हास्य-उत्पत्ति तब उन्होंने लिखित की गई थी कि नाटककार मोतीवाली स्वयं एक उत्कृष्ट हास्य-अभिनेता थे। राजा बहादुर की अविस्मरणीय लोकप्रिय भूमिका उन्होंने ही की थी। उन्होंने मानो 'प्रह्लाद' नाटक में लोमी-नाथ की भूमिका तैयार की गई थी, उनकी निर्देशनकला के बारे में प्रोफे-सर ज्ञान [illegible] एक महत्त्वपूर्ण उल्लेख है :

> "'प्रह्लाद' में मन मोतीवाली के चरित्रांकन का सौन्दर्य प्रत्येक पात्र में पाया। [illegible] और [illegible] (पुरुषोत्तम मारवाड़ी) और प्रमोद (कुलवन्त मारवाड़ी) तथा हिरण्यकशिपु (शाकिर भाई) के उच्चारणों को तो [illegible] मोतीवाली ही [illegible]।"[2]

निर्देशक : सर्वव्यापी व्यक्ति

निर्देशक का यह सम्बन्ध और प्रधान केवल नाटककार तक ही नहीं था, बल्कि पूरे संगमंच में उनका व्यक्तित्व एक तरह से सर्वव्यापी था। उनके व्यक्तित्व में ये तीनों आयाम निकले हुए थे :

1. संगीत-निर्देशक
2. गीत-सीनरी-निर्माता
3. अभिनेता

संगीत निर्देशन में तात्पर्य था हारमोनियम मास्टर या तबला मास्टर द्वारा गाने वाले अभिनेताओं के साथ लिखा द्वारा लिखे गानों के बोलों को तर्जें और सुर बनाना। इस कम्पनियों में दो हारमोनियम मास्टर होते थे। बड़ा और छोटा। बड़ा मास्टर निर्देशक की इच्छानुसार [illegible] के गानवाले एकटरों को गाने सिखाता था। गानों की तर्जें बनाकर हारमोनियम की सुनाकर गाता उसकी जिम्मेदारी थी। वह तर्जें का हारमोनियम के साथ इन्हें सुनाता था, ताकि गाने वाले एकटर भी [illegible] सहित तर्जें फिर [illegible]। तब

1. [illegible], [illegible], पृ० 47
2. वही, पृ० 94

[illegible] दीजिए। मैंने एक ही घंटे में [illegible] लिख-लिखकर [illegible] दिखाई। सब फेल हो गई। मुंशी बेकल और [illegible] ने भी [illegible] लिखवाईं, आगा [illegible] से भी लिखवाईं। अंत में सत्ताइसवीं बार मेरी [illegible] रखी गई: अर्थात् :

> [illegible] सभ्य [illegible] मैदान [illegible] का-सा [illegible] दिखलाता है।
> मोटे [illegible] के कारण ही, [illegible] जिंदे में आता है।[1]

[illegible] नाटक-काव्य [illegible] में [illegible] अभिमन्यु नाटक की [illegible] [illegible] [illegible] पर लिखा [illegible] मोतावली का [illegible] है।

निर्देशक नाटक की भाषा, भाव और [illegible] को [illegible] नहीं थे, [illegible] चरित्र-चित्रण पर भी [illegible] अधिकार रखते थे। 'वीर अभिमन्यु' में सुंदरी और राजा बहादुर की [illegible] तब उन्होंने लिखित की गई थी कि [illegible] मोतावली स्वयं [illegible] हास्य-अभिनेता थे। राजा बहादुर की [illegible] लोकप्रिय भूमिका उन्होंने ही की थी। उन्होंने [illegible] 'प्रह्लाद' नाटक में लोमी-[illegible] की भूमिका तैयार की गई थी। उनकी निर्देशनकला के बारे में [illegible] [illegible] एक महत्त्वपूर्ण [illegible] है :

> 'प्रह्लाद' में मत मोतावली के [illegible] का सौन्दर्य [illegible] पात्र में पाया। [illegible] और [illegible] (पुरुषोत्तम मारवाड़ी) और [illegible] (कुलवन्त मारवाड़ी) तथा हिरण्यकशिपु (आर्दिक भाई) के [illegible] को तो [illegible] मोतावली ही [illegible] [illegible]।[2]

निर्देशक : सर्वव्यापी व्यक्ति

निर्देशक का यह सफल और प्रधान [illegible] नाटकों तक ही नहीं था, बल्कि पूरे संगठन में उनका व्यक्तित्व एक [illegible] में सर्वव्यापी था। उनके व्यक्तित्व में ये तीनों आयाम [illegible] थे :

1. संगीत-निर्देशक
2. गीत-सीनरी-[illegible]
3. अभिनेता

संगीत निर्देशन में [illegible] था [illegible] मास्टर या [illegible] मास्टर द्वारा गाने वाले अभिनेताओं के साथ [illegible] द्वारा लिखे गानों के बोलों को [illegible] और सुर बनाना [illegible] में दो हारमोनियम मास्टर होते थे बड़ा और छोटा। बड़ा मास्टर निर्देशक की इच्छानुसार [illegible] में गानेवाले एक्टरों को गाने सिखाता था। गानों की [illegible] बनाकर [illegible] को सुनाकर [illegible] उनकी [illegible] थी। वह [illegible] का [illegible] के सामने [illegible] सुनाता था, [illegible] गाने वाले एक्टर [illegible] [illegible] [illegible] तब

1. [illegible], [illegible], पृ० 47
2. वही, पृ० 94

निर्देशक यह देखता था कि वह गायन, वह लंबे संवाद के, दृश्य के अनुकूल व अथवा नहीं। उससे नाटक की गति में क्या प्रभाव पड़ता है।

उस काल में ऐसा था कि अगर अभिनेता वास्तव में गवैया है तो वह भी उस तर्ज में मुर्कियाँ उतार-चढ़ाव की गाय हारमोनियम मास्टर को देता। और इसी तरह तबले वाला भी कुछ दम और ठग, ताल और लय की तोड़-पलट पर ध्यान दिलाता था। और "उस वक्त वे सब लोग इसी ख्याल से बिलकुल नहीं करते थे कि डाइरेक्टर को अपना गाना सुनाना है। उस समय जब गाने को 'पास-फेल' करना डाइरेक्टर का एकाधिकार था।"[1]

निर्देशक छोटे-बड़े हारमोनियम मास्टरों के कार्यों को भी निर्देशित करता था। कोई हारमोनियम मास्टर पहले अंक ही में हारमोनियम बजाता था और कोई मास्टर दूसरे और तीसरे अंकों में बजाता था। यह इसलिए कि वह स्टेज के बाजू बजे तक जाकर जरूर सो जाए, क्योंकि फिल्म में वही फिल्म डाइरेक्टर के निर्देशानुसार गानेवाले एक्टरों के साथ कई बुरे कारनामे था।

नए एक्टर कंपनी में निर्देशन के अंगों में अनभिज्ञता के कारण तीन-तीन निर्देशक थे: अल्ला सोनाबाई, द्वितीय भोगीलाल और तीसरे इब्राहिम खाँ। दीनशा बलसारा एक ही तरह डिक्टेटर थे और उनके साथ रहते थे वासुदेव, दर्जी थे बुहम्मद अली। इन सबकी मिलाकर निर्देशक सीन-सीनरी और वस्त्राभूषण की योजना बनाता था। राजमहल, बाग-बगीचे की सीन-सीनरी पर ही कल्पना का प्रस्तुतीकरण काला-पहनाना जाता था। इसके लिपाण में रंग पर अत्यधिक बल दिया जाता था और निर्देशक का यह काम था कि वह नाटक के कार्य-व्यापार के अनुसार इनकी प्रतिष्ठा करे।

अभिनय के निर्देशन में निर्देशक अभिनेता की चाली, संवाद-कथन और लय-ताल ऊँची आवाज पर ज्यादा बल देता था। अभिनेता के खड़े होने, गति-संचार पर भी बल देता था।

पारसी थियेटर के पूर्वार्ध चरण तक, जब तक कि नाटक सीन-सीनरी-रंगे पर्दों के आगे प्रदर्शित होते थे, अभिनेता प्रायः पंक्तिबद्ध खड़े होकर ही अभिनय करते थे और अभिनय का सारा बल वाणी के अभिनय पर होता था। बाद में उत्तरार्ध चरण में जब मंच पर मंच की अवतारणा हुई, तब नाटक अभिनय के अभिनय-पक्ष में आये हुए से व्यापकता और गहराई प्रकट हुई। तब निर्देशक अभिनेता के गति-संचार, मंच-व्यापार और कार्यों की कुशलता के प्रमाण में लगा। इसे यह देखना पड़ा कि पात्रों और कार्यों के लिए अभिनेता का समुचित और ठीक क्या और कैसे है। इसमें अभिनय-पक्ष में वाचिकता के स्थान पर शिल्प पक्ष भी खड़े होकर अभिनय करने की बात पैदा हुई और निर्देशक का काम अभिनेता के साथ बढ़ने लगा। आगा हश्र के 'सीताबनवास' नाटक में अभिनय की यह विशिष्ट शैलीगत इनके संवादों की प्रकृति और दृश्यों,

1. [illegible], [illegible], पृष्ठ [illegible]

कार्यों की समरेखा में प्रकट है।

राधेश्याम के 'वीर अभिमन्यु' और नारायणप्रसाद 'बेताब' के 'महाभारत' में जहाँ अभिनय की समरेखा समानान्तर है या कहीं-कहीं आमने-सामने है, वहाँ आगा हश्र के 'सलम व शीरीन' के अभिनय की भारी भिन्नता नाटक के कार्य-व्यापार और रंगमंचीय की प्रकृति के अनुसार आमने-सामने और आगे-पीछे, गहरे सामने ('डायगोनली अरेंज्ड') है। यहाँ निर्देशक का कार्यक्षेत्र अभिनय-निर्देशन के प्रसंग में बड़ा ही व्यापक और गहन हुआ है। इसमें एक ओर सेना के प्रवेश-प्रस्थान, खड़े होने की जगह और उनकी भंगिमाएँ पर निर्देशक की सजग सतर्कता की बहुत अपेक्षा है।

व्यापक रूप से पारसी थिएटर में निर्देशन के मूल और उसके कार्यक्षेत्र में वह गंभीर कला-सजगता नहीं थी, जिससे कोई प्रदर्शन परिवेश-बोध को प्राप्त करता है, या उसमें कोई कलात्मक अनुभूति प्राप्त होती है। अगर ऐसे निर्देशन मुख्य उस रंगमंच में होते तो नाट्य-लेखन की प्रकृति में ही अन्तर आता। नाटक बाहर ही बाहर, कथानकों, घटनाओं और सज्जा में ही नहीं होते होंगे, तब उनमें भावनीय गहराई आती। उनमें आदेश-भाषण के स्थान पर नाट्यीय संवाद होते, अतिनाटकीय सज्जा-व्यापारों के स्थान पर नाटकीय संकेतों और भावनीय अनुभव पैदा होते, कथोपकथन की वाचालता के स्थान पर यथार्थ संवादों की स्थिति पैदा होती।

दरअसल इस रंगमंच में निर्देशन की प्रकृति और उसके उद्देश्य में था नाटक का ऐसा अतिनाटकीय प्रदर्शन कि दर्शक वाह-वाह कर उठें। निर्देशन के उद्देश्य में दर्शक को भावना-अनुभूति प्राप्त करना नहीं था, बल्कि उसे सीन-सीनरी, ट्रिकों के उपयोग, गाने-नाच और विलास-उच्छृंखलों से अभिभूत और प्रभावित करना था। मिलन-वियोग, युद्ध और मृत्यु तथा विजय-पराजय के विविध दृश्यों, अनुदृश्यों के बीच दर्शक को बाँधना रहता था। ऐसा भासता कि वह मंचस्थ जगत् तथा आश्चर्यचकित रोमांच संगीतों से पर होते। उसकी अनुभूति की जगाना और उसका कालीय शोषण निर्देशक का उद्देश्य था, और उसकी सारी संरचना में यही उद्देश्य कार्यरत था। इसी उद्देश्य के प्रत्यक्ष दृष्टिगत है उसकी थिएटर-कार्य के सभी तत्त्व। उस नाटकों की सारी प्रकृति और उनके निर्देशक का यह मूल्य था।

कुछ प्रसिद्ध निर्देशक

पारसी रंगमंच में कुछ प्रसिद्ध निर्देशकों के नाम लेना उपयोगी न होगा। अल्फ्रेड कम्पनी के प्रसिद्ध निर्देशक थे मेहरजी राणा, जो अल्फ्रेड के प्रमुख निर्देशक थे मोहनलाल शर्मा, जिन्हें लोग 'शर्मा' कहते थे। यह उन निर्देशकों में थे जिन्होंने नाटक के सम्पूर्ण अंगों पर अधिकार प्राप्त किया था, जैसे लेखन, दृश्य-चित्रण, प्रस्तुतीकरण, कथानक, दृश्यों

के मंच, अभिनय, निर्देशन, गीत संगीत, नाच, मीमारी और ड्रेस। कोरेग्राफिक के निर्देशक थे मास्टर नागजी।

इन सभी निर्देशकों में भी ऊँचा स्थान था अमृतलाल केशवलाल नाटक का। प्रायः सभी नाटककारों ने बारह बारह में स्वीकार किया है कि अमृतलाल जितने ही बड़े सूत्र साहित्यिक और थियेटर के सभी अंगों के पंडित थे। इनका नाम्बर इन्डरेक्टर के रूप में प्रसिद्ध अल्फ्रेड थियेट्रिकल कम्पनी में रहा है। और इन्होंने बड़ा सारे महत्वपूर्ण नाटक लिखे और उनके प्रदर्शन पर अपने व्यक्तित्व की छाप छोड़ी है। अन्य प्रसिद्ध निर्देशक रहे हैं: भगवानदास, रतनशाह सिनेमा, [illegible] दाता, मास्टर मोहन, [illegible], तैमूरशाह, मास्टर सिनाम, [illegible], मणिकजाद [illegible], मास्टर मणिकलाल, [illegible] और [illegible] पवार।

रिहर्सल

पारसी थियेटर में नाटकों की रिहर्सल का अत्यधिक महत्व था। रिहर्सल का कार्यक्रम बहुत बड़े पैमाने पर आयोजित किया जाता था। [illegible] नाटक लिखे गए हैं जिनकी रिहर्सल पूरे एक बड़े समय की गई है। ये रिहर्सलें प्रायः दिन में होती थीं क्योंकि रात में पुराने नाटकों के प्रदर्शन अबाध गति से चलते रहते थे। प्रायः हफ्ते में सोमवार के दिन छुट्टी हुआ करती थी क्योंकि इस सोमवार को हर शाम के दो प्रदर्शन हुआ करते थे: एक 4 बजे मैटनी शो और दूसरा शाम में साढ़े नौ बजे रात का शो। वैसे प्रायः रात में साढ़े नौ बजे से ही शो नाटकों का प्रदर्शन होता था। इस नियम प्रतिबंध को भी [illegible] अवकाश का [illegible] और [illegible] नाटक की रिहर्सल की जाती थी।

कुछ कम्पनियाँ प्रतिदिन दिन के दस बजे से दिन के एक बजे तक रिहर्सल किया करती थीं। और कुछ दिन के 12 बजे से सन्ध्या पाँच बजे तक क्योंकि उसके बाद तिरेपन बजे से रात के प्रदर्शन के लिए 8 बजे से मेकअप शुरू हो जाता था।

रिहर्सल की अपनी कुछ मर्यादाएँ थीं। जैसे:

1. जब पूरा रिहर्सल करके नया नाटक की कापी रहेगा [illegible] जाता था।

2. रिहर्सल के दौरान सिगरेट पीना, पान खाना मना था।

3. [illegible] कलाकारों को वह थियेटर के [illegible] आकर खा-पी [illegible] था।

रिहर्सल की प्रक्रिया

[illegible] की प्रक्रिया या कार्यक्रम निम्नलिखित ढंग से पूरा किया जाता था:

1. [illegible], 2. मुंह पर [illegible] करना।

इसके बाद अभिनय [illegible]

1. मुद्राओं के साथ अभिनय [illegible]
2. [illegible] के साथ आकर अभिनय-[illegible] का अभ्यास, 3. [illegible] प्रयोग [illegible]

[illegible] के अन्तर्गत [illegible] पात्रों के लिए [illegible] अपने संवादों [illegible] इनके [illegible] काटा-छाँटा जाता था, फिर [illegible]

जब पूरी पांडुलिपि इस [illegible] की अभिनेताओं द्वारा इसका [illegible] कहते थे। जिस तरह पांडुलिपि [illegible] जाता था, उसी तरह मुंह पर [illegible] था। इसके बाद अभिनेताओं [illegible] का समय दिया जाता था और [illegible] जाते थे।

इसके बाद पूरे हारमोनियम [illegible] कम में कार्य नहीं किए जाते [illegible] पर केवल मुद्राओं के अन्तर्गत [illegible] अभ्यास कराया जाता था।

पात्र-अभिनय के [illegible] शुरू होता था। इस क्रम में [illegible] साथ अभिनेताओं के खड़े होने [illegible] थी।

इसके [illegible] मुख्य [illegible] अभिनय का अभ्यास करना [illegible] अभिनेताओं के लिए [illegible]

इसके बाद [illegible] पर अभ्यास करना पड़ता [illegible] एक किस्सा आता, [illegible] जाकर [illegible] अभिनेता [illegible] एक विशेष प्रकार का प्रभाव अभिनय दिखाता होता था।

1. पाठशुद्धि, 2. मुँह पर चढ़ना, 3. गाना गाना, 4. खड़े होकर अभ्यास करना।

इसके बाद अभिनय स्तर के पूर्वाभ्यास इस तरह शुरू होता था :

1. मुद्राओं के साथ अभिनय, 2. प्रवेश और प्रस्थान को प्रभावपूर्ण बनाना, 3. मंच के बीचों बीच खड़े होकर बोलना, 4. लोगों पात्र (विंग) से दूसरे पात्र के सामने आकर अभिनय-अभ्यास, 5. फुट लाइट के पास आकर वाद्य-संगीत का अभ्यास, 6. अंग्रेजी पुस्तकों का अभ्यास आदि।

पाठशुद्धि के अन्तर्गत शब्दशुद्धि पर बल दिया जाता था। चूँकि नाटक की पाण्डुलिपि प्रायः हाथ से लिखी हुई होती थी, इसलिए नाटककार के साथ बैठकर समस्त अभिनेता अपने संवादों को शुद्ध करते थे। उसके आशय-संकेतार्थ और अर्थ को स्पष्ट करते थे। उसके अन्तर्गत पात्र अभिनेताओं के अनुसार लकीरों को काटा-छाँटा जाता था, फिर से लिखा जाता था।

जब पूरी पाण्डुलिपि इस तरह संशोधित और परिष्कृत होकर तैयार होती थी तो अभिनेताओं द्वारा उसका पाठ शुरू होता था। इस क्रिया को मुँह चढ़ाना कहते थे। जिस तरह पाठशुद्धि के लिए एक के बाद एक कई को समय दिया जाता था, उसी तरह मुँह पर चढ़ाने के लिए एक दूसरे का क्रम मिलता था। इसके बाद अभिनेताओं की पूरी भूमिका समझाकर उन्हें पन्द्रह दिन का समय दिया जाता था और वे अपने सारे संवाद याद करके तैयार हो जाते थे।

इसके बाद खड़े होकर नाटक का पूर्वाभ्यास शुरू होता था। इस अभ्यास-क्रम में गाने नहीं किए जाते थे बल्कि केवल पढ़ दिए जाते थे। और इन बिन्दुओं पर केवल संवादों के अन्तर्गत उनका अर्थों के ऊपर बलाघात डालने बलाघात देने का अभ्यास कराया जाता था।

वाच-अभिनय के इस पूर्वाभ्यास के बाद आंगिक अभिनय का अभ्यास शुरू होता था। इस क्रम में मुद्राओं पर बल दिया जाता था और साथ ही साथ अभिनेताओं को खड़े होने, आने-जाने तथा रंगमंच करने की ट्रेनिंग दी जाती थी।

इसके उपरान्त पूर्ण अभिनेताओं को मंच के बीचों बीच खड़े होकर सम्पूर्ण अभिनय का अभ्यास करना पड़ता था। इसके साथ ही साथ मुख्य अभिनेता तथा सहयोगी अभिनेताओं के साथ सम्बन्धों को भी निखारा जाता था।

दूसरे पात्रों के लोगों गाने के समय आकर बोलने के लिए अंकिता को इस प्रकार अभ्यास करना पड़ता था कि उनमें वाच् अभिनय से बढ़कर आंगिक अभिनय पर विशेष आग्रह, विशेष बलाघात दिया जाता है। फुटलाइट के पास आकर वाच अभिनय बोलने का अभ्यास करना था तो उसके मुख पर एक विशेष प्रकार का प्रकाश डाला जाता था और इस अवसर प्रभावपूर्ण अभिनय दिखाना होता था। इसके लिए अभिनेता को सहयोगी पूर्वाभ्यास करना

1. पाठशुद्धि, 2. मुँह पर चढ़ना, 3. वाद्य-अभ्यास, 4. खड़े होकर अभ्यास करना।

इसके बाद अभिनय स्तर के पूर्वाभ्यास इस तरह शुरू होता था :

1. मुद्राओं के साथ अभिनय, 2. प्रवेश और प्रस्थान की प्रभावपूर्ण बनाना, 3. मंच के बीच में खड़े होकर बोलना, 4. दूसरे पात्र (विंग) से दूसरे पात्र के सामने आकर अभिनय-अभ्यास, 5. फुट लाइट के पास जाकर वाद्य-अभिनय का अभ्यास, 6. अंग्रेजी एक्शन का अभ्यास आदि।

पाठशुद्धि के अन्तर्गत शब्दशुद्धि पर बल दिया जाता था। चूँकि नाटक की पाण्डुलिपि प्रायः हाथ से लिखी हुई होती थी, इसलिए नाटककार के साथ बैठकर समस्त अभिनेता अपने संवादों को शुद्ध करते थे। इसके अलावा-अभिप्राय और अर्थ को स्पष्ट करते थे। इसके अन्तर्गत पात्र अभिनेताओं के अनुसार संवादों को काटा-छाँटा जाता था, फिर से लिखा जाता था।

जब पूरी पाण्डुलिपि इस तरह संशोधित और परिष्कृत होकर तैयार होती थी तो अभिनेताओं द्वारा उसका पाठ शुरू होता था। इस क्रिया को मुँह चढ़ाना कहते थे। जिस तरह पाठशुद्धि के लिए हम ने क्रम एक घंटे का समय दिया जाता था, उसी तरह मुँह पर चढ़ने के लिए एक घंटे का क्रम मिलता था। इसके बाद अभिनेताओं को पूरी भूमिका समझाकर उन्हें पन्द्रह दिन का समय दिया जाता था और वे अपने पार्ट याद करके तैयार हो जाते थे।

इसके बाद खड़े होकर नाटक का पूर्वाभ्यास शुरू होता था। इस अभ्यास-क्रम में संवाद नहीं किए जाते थे बल्कि केवल पढ़ दिए जाते थे। और इस बिन्दु पर केवल संवादों के अन्तर्गत उनका बन्दी के ऊपर ध्यान डालने, बल्कि देह का अलग करना जरूरी था।

वाच-अभिनय के इस पूर्वाभ्यास के बाद आंगिक अभिनय का अभ्यास शुरू होता था। इस क्रम में मुद्राओं पर बल दिया जाता था और साथ ही साथ अभिनेताओं के खड़े होने, आने-जाने तथा रंगमंच करने की ट्रेनिंग दी जाती थी।

इसके उपरान्त पूरा अभिनेता को मंच के बीचों बीच खड़े होकर सम्पूर्ण संवाद का अभ्यास करना पड़ता था। इसके साथ ही साथ मुख्य अभिनेता तथा सहयोगी अभिनेताओं के संवाद-अदायगी को भी निखारा जाता था।

दूसरे दर्जे के लोगों को गति के साथ आकर बोलने के लिए अभिनेता को इस अभ्यास करना पड़ता था कि उसमें वाच् अभिनय से बढ़कर आंगिक अभिनय पर ध्यान दिया जाता था, जिसका [illegible] होता है। फुटलाइट के पास [illegible] अभिनेता बोलने का अभ्यास करता था। जो उसका मुख्य एक विशेष प्रकार का प्रकाश डाला जाता था और उस अवसर प्रभावपूर्ण अभिनय दिखाना होता था। इसके लिए अभिनेता को बहुतों पूर्वाभ्यास करना

पड़ता था। तथा स्वगत कथन या संवादों की सारी मनःस्थितियों को अभिनय द्वारा प्रकट करने का अभ्यास करना होता था। इस अभ्यास में निर्देशक या मैनेजर रंगशाला की सबसे पिछली सीट पर बैठकर अभिनेता को सुनता था और जब तक अभिनेता उस अंतिम आदर्श दर्शकों को सब तरह से प्रभावित नहीं करता था, तब तक उसका अभ्यास जारी रहता था।

जहाँतक पठन में पारसी है, अभिनेता का अभिनय करते-करते मंच पर पैर पटकना, छाती पीटना, रोना और करुण चिल्ला करना। इसके लिए भी अभिनेता को बहुत अधिक अभ्यास करना होता था। इस अभ्यास में इस बात को विशेष तौर पर देखा जाता था कि इससे दर्शक के मन पर कोई अप्रीतिकर प्रभाव न पड़े।

चूंकि पारसी थियेटर अभिनय में अभिनेता अपनी को दर्शक की ओर पीठ नहीं कर सकता था इसलिए उसे अपने शरीर, मुद्रा को, अभिनेता की विविधता प्रदान के लिए और अन्य पात्रों के दृष्टिगत करने पड़ते थे। मुख्यतः वाक्-अभिनय के साथ और मुद्रा के स्थान को लेकर। युद्ध के दृश्यों में अभिनेता को गदायुद्ध से लेकर कुश्ती, घुड़सवार युद्ध करना होता था। इसके लिए भी उन्हें बहुत सारी ऐसी बातों पर ध्यान देना होता था कि दर्शक में अनावश्यक उत्तेजना तो अवश्य पैदा हो पर उसमें कहीं अन्य भाव न पैदा हो जाए। इस तरह प्रेम के दृश्यों में नायक-नायिकाओं के बीच आलिंगन बिलकुल नहीं था केवल वे दोनों हाथ बढ़ाकर ही एक-दूसरे के प्रति अपना प्रेमभाव प्रदर्शित करते थे। इस मर्यादा के भीतर कई अभिनेता ने यह अपेक्षा की जाती थी कि वह शृंगार भाव का विभाव-दीप्ति और स्थायी भाव दर्शकों में पैदा करे कि वह सहज देख और सुनकर भाव-विभोर हो जाए। इस प्रभाव को पैदा करने लिए, ऐसे भावदृश्यों की सफलता के लिए और ऐसे प्रसंगों को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए अभिनेतागण महीनों पूर्वाभ्यास करते रहते थे। नाटक के समस्त पद्यों तथा गद्यखंडों के समस्त अंशों के पूर्वाभ्यास के बाद नाटक का अन्तिम चरण तब शुरू होता था जब कथा के क्रम तथा घटनाओं के नीत-नीतियों, प्रकाश, रंग-प्रभाव, ध्वनि-आनुपातिक पुष्ट-संगीत के साथ सम्पूर्ण प्रदर्शन मंच पर प्रस्तुत किया जाता था। यह प्रदर्शन जब इतना सहज और जीवन्त हो जाता था कि पारसी के लोग इसमें तल्लीन हो जाते थे तब दर्शकों के लिए नये नाटक का प्रदर्शन किया जाता था। इस प्रदर्शन में निर्देशक, मैनेजर आदि दर्शकों के बैठकर इस बात का निरीक्षण करते थे कि किस दृश्य के कितनी तालियाँ, सीटियाँ, कौन दृश्य में लगता रोते और हँसी और कहाँ के दृश्य मनोरंजक हो गया। ऐसे दृश्यों को लोग अपनी स्मृतियों में रखते थे तथा नाटक तत्पश्चात् अन्य नाटकों में उनका प्रभावपूर्ण बनाने का प्रयत्न करते थे कि जिनका आज अनुसरण रंगमंच करता है।

इस रंगमंच के अन्तर्गत पारसी में अभिनय, संगीत और नृत्य इतने महत्त्व पूर्ण अंग हैं कि हमने इन तीनों विधाओं की चर्चा दो स्वतन्त्र अध्यायों में आगे की है।

पारसी रंगमंच के [illegible]
स्वीकार की गई है। [illegible]
नेता और अभिनेत्रियाँ [illegible]
की प्रबल [illegible] हुई थी, [illegible]
[illegible] जाती थी। पारसी [illegible]
होती है कि [illegible]
[illegible] एक महत्त्व होते [illegible]
प्रबल भावनाओं के साथ [illegible]
उसकी अभिव्यक्ति [illegible]

7

अभिनय

पारसी रंगमंच के नाटकों की रचना सदैव अभिनेताओं को ही ध्यान में रखकर की गई है। होता यह था कि विभिन्न कंपनियों में जो प्रमुख अभिनेता और अभिनेत्रियां उपलब्ध होतीं थीं तथा उन अभिनेताओं में अभिनय के जो प्रबल तत्व होते थे, उन्हीं को ध्यान में रखकर नाटकों में चरित्रों की रचना की जाती थी। पारसी थियेटर के नाटकों को पढ़कर यह बात सदैव अनुभूत होती है कि इन रचनाओं का आधार अभिनेता होता था, निर्देशक नहीं। दूसरी बात जो महसूस होती है कि इन नाटकों में सदैव चरित्रों की कल्पना मनुष्य की प्रबल भावनाओं के साथ की गई है। उन प्रबल भावनाओं व भावावेग और उनकी अभिव्यक्ति को लक्ष्य बनाया जाता है।

भावनाओं में बुनियादी भावनाओं को अधिक आदिम भावनाओं को ही महत्त्व देते थे तथा विविध भावनाओं को बराबर एक-दूसरे से मेलते न थे पूरे नाटक के स्वातंत्र्य में भावनाओं का अभिनयपूर्ण उपस्थित करते थे इस संदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि नाटककार कभी भी मौलिक भावनाओं की दुनिया में नहीं जाते थे, क्योंकि जिन भावना की अभिव्यक्ति उन्हें नाटकों में करनी होती थी, उनके अतिरिक्त मौलिक भावनाओं के जाने का न तो उन्हें स्थिति मिलती थी और न ही यह दर्शकों के लिए तृप्तिदायक था। दर्शक इस रंगमंच में भावुक होने के लिए आता था तथा उनकी भावुकता को जगाने का लक्ष्य अभिनेतागण अपने परिश्रम-अभिनय से करते थे। यह भी उल्लेखनीय है कि अधिक भावनाओं को नाटककार प्रायः चूंकि मुख्य पात्रों में ही रखते थे, इसीलिए नाटक के पात्रों में शौर्य की एकरूपता, स्नेहता का, भावुकता का, तदनुसार अन्यत्र की अभिव्यक्ति का सदैव ध्यान रखते थे।

अभिनय के सम्पूर्ण स्वरूप को समझने के लिए हम निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत अध्ययन कर सकते हैं :

1. अभिनेता : मूलतत्त्व
2. भाव-विशिष्टता
3. वाचिक-अभिनय
4. आंगिक-अभिनय
5. गति और रंगचर्या।

1. अभिनेता : मूलतत्त्व

पारसी थियेटर में जिस तरह से नाटक लिखे-लिखाए जाते थे उसके पीछे मुख्य तीन भाव थे :

1. ऐसे नाटक दर्शकों को दिखाए जाएं, जिससे जनता का मनोरंजन हो सके और साथ ही साथ उन्हें उपदेश, आदर्श और शिक्षा भी प्राप्त हो सके।

2. ऐसे नाटक खेले जाएं, जो गीत, नृत्य, सीन-सीनरी तथा अभिनय की दृष्टि से बड़ी सिद्धि या पैदा कर सके।

3. अधिक से अधिक दर्शक समाज को नाटक के द्वारा उस व्यावसायिक रंगमंच से जोड़ा जाए।

इन सभी बातों का मूल आधार बनाया गया था—अभिनेता। उसीको प्रधान मानकर नाटककार नृत्य, इतिहास तथा समाज के पात्रानुकूल दृश्य या और अन्य भी जो भी बातें इस नाटक के माध्यम से दर्शकों तक पहुंचाना चाहता था, उसका भाव वाहन था—अभिनेता। इस सच्चाई को स्थापित करने के लिए प्रायः नाटककार अपने अभिनेताओं के गुणों, विशेषताओं तथा क्षमताओं के आधार पर नाटक की कथा को भी संभव अवसर दिया में ले जाता था। अभिनेता के आदर्श से नाटक का पूरा महल खड़ा न अन्त तक खड़ा रहे, इसके लिए

लेखकगण को इस बात की चिन्ता नहीं थी कि नाटक के पात्र स्वाभाविकता से अस्वाभाविकता की ओर बढ़ रहे हैं। इसका कारण यह भी था कि दर्शक का सम्बन्ध इस रंगमंच से अपेक्षाकृत अभिनेताओं द्वारा जुड़ा था। अभिनेता ही दर्शकों की भावनाओं, कल्पनाओं तथा अभिलाषाओं का मंच पर प्रतिनिधित्व करता था। जैसे दर्शक ही अभिनेता के द्वारा मंच पर जी रहे हों। इसीलिए पारसी थियेटर के सभी महत्वपूर्ण नाटकों के चरित्रों को देखकर यह महसूस होता है कि उन चरित्रों को मंच पर प्रकट करने वाले अभिनेता ही मंच पर सब कुछ थे। दर्शकों को रुलाना, हँसाना, दर्शकों के सामने नाचकर, गाकर अर्थात् उन्हें सब तरह से परितुष्टि देने का दायित्व केवल अभिनेता पर ही था। इसलिए इस काल का अभिनेता नहीं बल्कि माना जाता था जो अभिनय के साथ ही साथ बहुत अच्छा गा सके, नाच सके और सब तरह से दर्शकों को प्रभावित कर सके। इसीलिए बहुत काल तक पारसी रंगमंच में मास्टर विनायक, मोहनलाल इस रंगमंच पर पूजे जाते थे। जैसा कि पहले कहा गया है, चूंकि अभिनेताओं के ही आधार पर और उन्हीं को ध्यान में रखकर नाटक की रचना की जाती थी तथा उसमें चरित्रों की कल्पना की जाती थी, इसलिए इस रंगमंच का अभिनेता ही सर्वोपरि था। उसकी भावनाओं, आदर्शों तथा अभिलाषाओं पर नाटक की दृश्य योजना रहती थी तथा उन्हीं का दृष्टिकोण एक ओर अपनी रचना में करता था, दूसरी ओर निर्देशक मंच पर करता था। यह बात ठीक उसी तरह है, जैसे शेक्सपीयरियन थियेटर में शेक्सपीयर के बाद में परिवर्तन हुआ था। यह भी प्रकट है कि जिन कलाकारों में अभिनेता में अधिक प्रबल अभिनेता हो तो स्वभावतः वैसे नाटक का प्रभाव बढ़ा दिया जाता है, जहां स्त्री चरित्र महत्वपूर्ण हो और वह पुरुष अभिनेता प्रबल हो वहां ऐसे नाटकों को किया जाता था। जहां नायिका की भूमिका पुरुष पात्र प्रबल है। इस तथ्य के उदाहरण हैं अल्फ्रेड थियेटर कम्पनी आफ बम्बई के राधेश्याम-रचित 'वीर अभिमन्यु', 'ईश्वर-भक्ति' तथा आगा हश्र काश्मीरी के प्रसिद्ध नाटक 'वीर अभिमन्यु' और 'सैलम व सोहराब' तथा नारायणप्रसाद 'बेताब' के 'महाभारत' हैं।

2. भाव-विविधता

इस थियेटर में कुछ मंजिल भाषा की अभिव्यक्ति को प्रधानता नहीं थी, और दूसरी ओर मूल भावनाओं की ही अभिव्यक्ति के आधार पर इस स्टाइल की तुलना चल रही थी, इसलिए दर्शकों और अभिनेताओं की परितुष्टि के लिए यह आवश्यक था कि नाटक के अभिनेता के द्वारा पात्रों की विविधता आदि से अधिक काम लिया जाए।

अभिनेता के रूप में नायकों की अभिव्यक्ति दो प्रकार की थी। प्रथम—अभिनेता समूचे नाटक में विविध प्रकार की भावनाओं को, विविध रसों को

अभिव्यक्ति करता था। ऐसे नाटक लिखे और खेले ही जाते थे जिनमें मूल चरित्र अभिनेता को नाटक में विविध भावनाओं से गुजरना पड़े और वह उन भावनाओं की पूरी अभिव्यक्ति दर्शकों को दे। इसीलिए इस काल का अभिनेता वही श्रेष्ठ समझा जाता था जो विविध दृश्यों में इसको या उसको रंजन कर सके और विरोधी से विरोधी भावनाओं की अभिव्यक्ति कर सके। दूसरे—भाव-विविधता की यह भी स्थिति सर्वत्र दिखाई पड़ती है कि अभिनेता अपने एक ही दृश्य अथवा एक ही संवाद में विविध भावनाओं और स्थितियों का अभिनय, उदाहरण प्रस्तुत कर सके। इस पुस्तक में पीछे हमने 'रतन व सोहराब' के अध्ययन में ऐसा एक उदाहरण दिया है।

यहां पर आगा हश्र के प्रसिद्ध हिन्दी नाटक 'भीष्म-प्रतिज्ञा' से दो उदाहरण दे सकते हैं :

1. शांतनु : यहां देखो, जिसको छाती चीर कर दिल देख सकते हो, तो यहां देखो। उस दुःखहीना स्वेच्छाचारिणी ने मेरे प्राण पुत्रों को हवन करके इस हृदय में सब चाव साध लिए हैं। सुनते हो न, एक नहीं सात चाव...

शिवदत्त : और अब वह आठवें पुत्र की माता बनी है...

शांतनु : हूं—और उसी नाम में काल और स्वेच्छा, दिया के कर्तव्य और प्रतिज्ञा में युद्ध हो रहा है। यदि तुमने प्रकृति और प्रलय का संघर्ष देखा होता तब समझ सकते कि हृदय और संतान-स्नेह का युद्ध कैसा भीषण युद्ध है।

शिवदत्त : नरेन्द्र! स्त्री स्वयं अपने को कठोर बना ले, किन्तु उसका स्वाभाविक गुण कठोरता नहीं है। रानी को जननी का कर्तव्य समझाइए। मुझे आशा है कि वह नवजात आठवें बालक पर निश्चय दया करेंगी।

शांतनु : क्या-क्या! जिस स्त्री के पास रूप है, हृदय नहीं है, सेवा है, प्रेम नहीं है, पुत्र की लालसा है किन्तु पुत्र की ममता नहीं है, उससे क्या? जो स्त्री माता बनने पर भी माता शब्द का अर्थ न समझ सकी, उस रमणी के पास क्या?

शिवदत्त : तब नरेन्द्र...

शांतनु : मेरे प्रवचन से व्याकुल होकर तुम्हारी भी इच्छा होती है कि विरक्तों-सरीखे भाव से मेरे साथ तुम भी कुछ कहो। किन्तु सामने होने पर मेरे कठोर कर्तव्य कर्म को रोकती है। सोह! मैंने किसके स्वार्थ किया? स्त्री का धर्म, देवी का मार्ग, पितृपितामहों का स्वप्न... किसका क्या सत्य है, कुछ नहीं है?

शिवदत्त : [illegible] के लिए आशीर्वाद और अपने वंश के

लिए एक सुन्दर आधार ?[1]

2. अम्बा : क्या कहा—मैं वेश्या हूँ ? शालिवाहन, एक कुलकामिनी बिना अन्न, बिना वस्त्र, बिना गृह के अपना भार जीवन निर्दय पति की सेवा में बिता सकती है ; पति की झिड़कियाँ और लातों को गोहाट के फूलों की वर्षा समझ सकती है। पति जिस हाथ से छुरी मारे उसी हाथ को भक्तिपूर्वक प्रेम से चूम सकती है—किन्तु वेश्या शब्द की चोट सहन नहीं कर सकती ; तुम्हारी सेवा भी एक स्त्री थी, यदि तुमने स्त्री के गर्भ से स्त्री जाति का तिरस्कार करने के लिए जन्म नहीं लिया है तो कहो कि मैंने ये शब्द नहीं कहे।

शालिव : निश्चय कहा और अब फिर कहता हूँ कि तू पहले हँसी और अब की लहरों से उमड़ती हुई जवानी की नदी थी, व्याकुल वाम थी, गर्वित थी ; किन्तु अब गोहाट की वेश्या के सिवा और कुछ नहीं है।

अम्बा : बस, नराधम ! विनाश ! अरे, नहीं तो देखता हिमालय के पास, तो तेरी पीठ की खाल उधेड़ डालती। आकाश और धरती चक्रनीच कहकर तेरे मुँह पर थूक देते। कापुरुष ! तेरी भूल थी जो तू मुझे अपने जीवन-मंदिर का देवता बनाना चाहती थी। आज मैं, इसी घड़ी में घृणा करती हूँ—तुझसे, तेरे वंश से, तेरे प्रेम से, तेरे नाम से। मैं समझती थी कि तू एक सच्चा राजा है—अब जाना कि एक स्त्री भी नहीं—हिन्दू भी नहीं, मनुष्य भी नहीं—तू अपने माता-पिता के गर्भ का कुत्सित है और जाति की गली का घृणित कुत्ता है।"[2]

अम्बा के उद्धरणों में से पहले उद्धरण में निम्नलिखित तत्त्व उल्लेखनीय हैं—(अ) प्रबल भावनाओं की अभिव्यक्ति, (ब) आवेश की अभिव्यक्ति, (स) स्थूल भावों की अभिव्यक्ति।

इन तीनों के अतिरिक्त महत्त्वपूर्ण तत्त्व है कि शालिवाहन और चित्रसेन के चरित्रों के माध्यम से इतने ही अंक में नाटककार ने इतनी विविध भावनाओं को प्रकट करना चाहा है ताकि इसके आधार पर इन चरित्रों का अभिनय, दर्शकों के सामने उनकी चरित्रगत और अभिनय की विशिष्ट प्रभावशालियों इन से प्रस्तुत कर सके। उल्लेखनीय है कि शालिव अब यह कहता है कि, "यहाँ देखो, चित्रसेन ! आँखों को बिना देख सकते हो, तो यहाँ देखो ... इस हृदयहीन विश्वासघातिनी ने मेरे साथ एवं की दया करके इस हृदय में साथ देख सकते

1. 'भीष्म प्रतिज्ञा-कथा' अंक, चतुर्थ दृश्य
2. वही, पुस्तक एक, तीसरा दृश्य

[illegible] है। मुहावरे हो न एक नहीं [illegible] घंटे [illegible] इस संवाद के अभिनय में अभिनेता को [illegible] [illegible] [illegible]

कर देते थे, [illegible]।

यह [illegible] बात है कि वह सब जादू इस बात के अभिनेता के वाक्-अभिनय का जादू था। वह अपनी वाणी, अपनी आवाज-रचना, अपने शब्दों को इस तरह फेंकता था कि उसके सामने का दर्शक वर्ग इसके प्रभाव में आकर जैसे उसके अभिनय का सक्रिय अंग बन जाता था।

पारसी थिएटर के अभिनेता की सबसे ज्यादा दृष्टि इसी बात पर होती थी कि उसमें आवाज निकालने का विशेष विन्यास और विशेष विशिष्टता हो जाती है। इसलिए श्रेष्ठ अभिनेता वह माना जाता था जो वाणी के विविध प्रकारों को अपने वाक्-अभिनय में प्रदर्शित कर सके। इसका एक बहुत बड़ा रहस्य था। चूंकि दर्शक मंच से बहुत दूर-दूर तक बैठते थे और स्वभावतः वे अभिनेता के चेहरे के भाव, मुख-मुद्राओं को नहीं देख पाते थे, इसलिए अभिनेता की यह बहुत बड़ी जिम्मेदारी थी कि दर्शक उसकी आवाज से ही चरित्र के बारे में, चरित्र की प्रतिक्रियाओं के बारे में जान सके। अगर दर्शक इस चारित्रिक विकास को नहीं समझ पाता तो स्वभावतः वह पीछे रह जाता था। नाटक के विकास में वाणी के महत्त्व का यही अर्थ था कि उसकी भावनाओं का साधारणीकरण अभिनेता ने और चरित्र ने नहीं हो पाया है। शायद इसीलिए नाटक में, संवाद के अंत में प्रायः संवाद के सार को गेय अथवा छन्द में कह दिया जाता था। इसके दो प्रयोजन थे। अगर संवाद कहीं भूलने से रह गया तो गेय के छन्द से ही संवाद का सारा सार दर्शक को मिल जाता था। दूसरा फायदा यह था कि [illegible] ही बात को गेय और पद्य में कहकर अभिनेता अपने वाक् अभिनय की चतुराई दिखाकर दर्शक पर दुगना और दो प्रकार का प्रभाव डाल देता था। दर्शक को दो चमत्कारों के आनंद मिलता था।

वाक्-अभिनय की महत्ता का एक और बड़ा कारण यह था कि इस मंच पर गति-संचार (मूवमेंट) बहुत कम था। इसके अलावा मंचकर्म भी अत्यंत रूढ़ बहुत कम थे। इसलिए गति-संचार और मंचकर्म किसी भी रंगमंच के लिए और किसी भी अभिनेता के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण साधन है, जिन्हें अभिनय और दृश्य की पूरी तन्मयता दर्शकों के सामने उपस्थित नहीं की जा सकती। पारसी थिएटर के अभिनेता ने इन दोनों तत्त्वों का कार्य अथवा इन दोनों तत्त्वों की पूर्ति आत वाक्-अभिनय से की। इसीलिए यह अभिनय तत्त्व इस रंगमंच का एक परम शक्तिशाली तत्त्व सिद्ध हुआ था।

केवल सुनकर अभिनय के सभी तत्त्वों का आनंद ले लेना, जिस तरह पारसी थिएटर के दर्शक वर्ग की विशेषता थी, उसी तरह वाक् अभिनय की इस तरह पराकाष्ठा थी, कि दर्शकों को केवल सुनकर अभिनय का सम्पूर्ण आनंद मिल जाए, यह इस रंगमंच के अभिनेता की अद्वितीय विशेषता थी।

शायद इसी तत्त्व की प्रेरणा के फलस्वरूप इस नाटक के प्रवेश और प्रस्थान की जो आती विशेषता थी, वह भी [illegible] प्रवेश और प्रस्थान

पात्र अचानक होते थे और अचानक प्रवेश करने वाले चरित्र ऐसे सभी बातों को सुनकर आया हो। पर इसका रहस्य यह था कि दर्शक ने जो कुछ सुना स्वयं ने और इसी दर्शक का प्रतिनिधित्व उस चरित्र ने अथवा अभिनेता ने किया है, जिसने सहसा किसी भी दृश्य में प्रवेश किया है। श्रवण और प्रस्तुत की दुहरी विशेषता प्रभावपूर्ण होने की विशेषता है। क्योंकि इसका बहुत कुछ सम्बन्ध अभिनेता के वाक्-अभिनय से जुड़ता है।

इसलिए प्रायः हम नाटकों में देखते हैं कि संवादों में जान डालने वाली अत्यन्त भाषा, ऐसे गुणगंभीर शब्द, ऐसे महान विचार, ऐसे ऊँचे आदर्श रख दिए जाते थे कि अभिनेताओं को वाक्-अभिनय करने का समुचित क्षेत्र प्राप्त हो सके। ऐसे संवादों को अभिनेता द्वारा प्रस्तुत करने और उन्हें दर्शकों द्वारा सुनने में जो अपरिमित आनन्द मिलता था उसका उदाहरण अन्य नहीं है।

4 अतिअभिनय

पारसी थियेटर के समूचे अभिनय को यदि हम किसी एक शब्द में बाँध सकते हैं तो वह है अतिअभिनय। नाटकों की रचना अपने समस्त पक्षों – दृश्य वस्तु, कथोपकथन, दृश्य-बंध, संवाद, कार्य और प्रभाव के स्तर से अतिनाटकीय होता था। इसलिए स्वाभाविक इस नाट्यशैली की अभिव्यक्ति अभिनेताओं द्वारा अतिअभिनय के माध्यम से ही सम्भव था। साथ सभी नाटक विशेषकर पौराणिक, ऐतिहासिक कल्पित उद्दात्त वीरत्व और शृंगारत्व में ढाल-ढाल रहती थी। इन दोनों रसों में भी उन संघर्षमयी स्थितियों पर अत्यधिक बल दिया जाता था, जिनमें अभिनेताओं द्वारा दर्शकों पर अतिनाटकीय प्रभाव डाला जा सकता था। एक तरह से यही अतिनाटकीयता इस थियेटर की मूल बुनियाद थी। इसीलिए दृश्यों में जो भूमिकाएँ उपस्थित की जाती थीं उनमें अतिअभिनय के निम्नलिखित तीन तत्त्व सर्वत्र उपलब्ध हैं। 1. संवाद की अतिअभिव्यक्ति, 2. कार्य की अतिअभिव्यक्ति, 3. संवाद और उसके की अतिअभिव्यक्ति।

1. पारसी के अंतर्गत हम उदाहरण के लिए 'विलाप' के प्रसंगों को लिया जा सकता है, जहाँ द्रौपदी सीताओं और पात्रों में घिरकर अपने चरित्र के संवादों के द्वारा अतिअभिनय स्थितियों के माध्यम से प्रकट कर रही है :

द्रौपदी : अरे निर्दयो, क्या कर, अरे बेहया, क्या कर, चाण्डाल, मैं रजस्वला हूँ, एक वस्त्र वाली से दूर रह, आखिर मैं कुल ! पिछली पालाली से दूर रह।

दुःशासन : अब सिलनी के अभिमान को मुझ जा। देख तो तेरे सारे सिर लाज की अंगीठी में जलकर पड़े हैं। अरे तू इस राजा-महाराजा दुर्योधन की दासी है जिसके आगे इकबाल, फतह लक्ष्मी सब हाथ बाँधे खड़े हैं।

द्रौपदी : अरे
[illegible]
दुःशासन : हम
[illegible]
द्रौपदी : हाय
[illegible]
भीम : हे
[illegible]
द्रौपदी : आह
[illegible]

यहाँ संवादों की अति
[illegible]
नहीं, बल्कि उनका लक्ष्य
[illegible]
पूरी संवेदनाओं को
थियेटर का रहा है इसमें
2. कार्यों की अतिअभि
निम्नलिखित दृश्य है :
भीम : [illegible]

1. [illegible]

द्रौपदी : अरे दुष्ट ! [illegible] की भी हद होती है। (दुर्योधन से) अरे निर्लज्ज नंगी माँ की न [illegible]. यह किसी धनुष की प्रत्यंचा नहीं है, एक अबला स्त्रीत्व की चीख है।

दुर्योधन : हम चीखी चिल्लाओ या मारो, नंगी करो या [illegible], हमारी दया पर इसका सारा आधार है। तुम ने जीते हुए माल को चाहे जिस [illegible] यह क्यों यह हमें अधिकार है

द्रौपदी : हाय यह गमा अंधी है या बहरी···

मरी है आज क्या तुम सबने भई अपनी शानों में,
अगुर के खौफ से क्या ठीक थी लीलें जबानों में !
लगाकर डाट बैठी है सभा मुँह के दहानों में,
मसामद है कि सब मिट्टी के पुतले हैं दुकानों में।
निकलते धर्मों के लाल हैं या कौन हैं मारे,
सभी की देखते हैं दुर्दशा और मौन हैं सारे।

भीम : हे भगवान् ! यह संताप, यह क्रन्दन !
द्रौपदी पर हाथ जो छोड़े तो जिन्दा छूट जायें।
टूट जायें यह भुजाएँ, कान, आँखें फूट जायें।

द्रौपदी : आज क्या द्रोणाचार्य का धनुष गल गया है क्या अश्वत्थामा के बाणों का तेजस्व निकल गया ? क्या कृपाचार्य की लेखनी पर काई उग आई है ? क्या भीष्म पितामह की जबान बंधी हुई है ?[1]

यहाँ संवादों की अतिअभिनेयता के लिए उल्लेखनीय है कि इनमें ऐसी मनःस्थितियों और जीवन-प्रसंगों की चर्चा है जहाँ अभिनेता अपने चरित्र के अभिमान, जुल्म और अत्याचार, संताप और क्रन्दन तथा छन्दों के द्वारा अपनी संघर्षरत मनःस्थितियों को अत्यंत प्रभावपूर्ण ढंग से व्यक्त कर सकता है। यहाँ उल्लेखनीय है कि संवादों की अभिअभिनेयता के लिए नाटककार और अभिनेता इसकी परवाह नहीं करते कि नाटक की कौन-सी स्थिति पर टिक गई है अथवा नहीं, बल्कि उनका लक्ष्य यह है कि एक ही [illegible] से आदि से अंत तक उतना बोलते हैं और आवेशपूर्ण बनाते हैं कि [illegible] और [illegible] से पूरी संवादशैली [illegible] 'नन्दामोर' [illegible] की [illegible] और [illegible] विशेषता बन रहा है उनमें ऐसे संवादों की अभिअभिनेयता [illegible] प्रचुर [illegible] था।

2. कार्यों की अतिअभिनेयता का उदाहरण 'दिनकर' के 'महाभारत' का निम्नलिखित दृश्य है :

भीम : धिक्कार है तुम्हारे कि तुम्हें हमारे गुरु का पुत्र होकर गोत हुए वीरों के कलेजे में खंजर उतारा है।

1. 'महाभारत', लेखक : स्व० पं० नारायणप्रसाद 'बेताब', पृ० 44

अश्वत्थामा : [illegible] नहीं, मैंने बीच [illegible] का ख्याल भी न करता। मैंने [illegible] मारा है जला-जलाकर मारा है।

युधिष्ठिर : इसका [illegible] तो नहीं था कि तुम्हारा भी [illegible] किया [illegible] परन्तु नहीं, तुम हमारे [illegible] हो इसलिए केवल इतना ही दंड दिया जाता है कि तुम्हारे मस्तक की मणि जो तुम्हारे साथ पैदा हुई है उसे निकाल लिया जाता है।

भीम : यह भी इसलिए कि तुम जब तक जिओगे जख्म को देख-देखकर अपने किए पर पछताओगे।

अश्वत्थामा : अब इस मणि की तो क्या मुझे भी परवाह नहीं।
[illegible] पूरी हो [illegible] मन [illegible] है बेचैन में।
दुःख क्या होगा मुझे अब इस मणि के त्याग से॥
यह लो मैं अभी निकाल देता हूँ।
(निकालकर फेंक देता है और चल देता है।)

भीम : [illegible], गुरु के बालकों जा, तेरा बदला तेरे हितैषियों ने लिया।
(दुर्योधन का आना।)

दुर्योधन : [illegible] गदायुद्ध [illegible] हिमायती का [illegible] मुँह से न निकाल। अगर हिमायतों का बल देखना है तो अपनी गदा संभाल।

भीम : आ जा, आ जा [illegible] अभिमान! आजा [illegible] प्रतिज्ञा-पूर्ति के मरमर, आ जा!
याद आते हैं [illegible], मुश्किल है अब [illegible]
[illegible] नहीं झुका नहीं [illegible]
मुश्किल से [illegible] अब [illegible]
हो चुका [illegible] बाकी है [illegible]
[illegible] की [illegible] तुझसे [illegible]
[illegible] और [illegible] [illegible]
(दोनों में गदायुद्ध होता है। भीम-बलि आकर [illegible] बैठता है और गदा [illegible]—)
ध्यान कर और [illegible] इसकी [illegible] पर [illegible]
द्रौपदी [illegible] गदा [illegible] [illegible]
(गदा फेंककर [illegible] दिखाता है।)
इसकी छाती में [illegible], [illegible] द्रौपदी यह पुतिला तोड़ दे अब पुतिला! [illegible]
(कलेजा तोड़कर [illegible] का [illegible] पीता है। दुःशासन आता है।)

दुःशासन : [illegible] पुतिला पर, [illegible] इस [illegible] पुतिला पर।

भीम : मुझे है परशुरामजी, मुझे है ! (युधिष्ठिर से) महाराज, लड़ाई और ऐसे में मैं द्रौपदी का बदला चुका लूँगा।

(युधिष्ठिर का संकेत)

यह मेरी हमदम थी यह उसका दिली अरमान है।
जो बदला आपसे मांगूं मेहरबां भगवान है॥

दुर्योधन : अर्जुनीयो, मंडलीयो ! जो अन्यायी है वही ऐसी प्रतिज्ञा करते हैं ! वेश्या ! क्या पतिगृह करने वाले नारी के नीचे वस्त्र लगाते हैं ?

भीम : वेश्या ! और हमारे विस्तारों पर भाग छुड़ाने वाले, भोजन में जहर मिलाने वाले, लाख के घर में सुलाकर उनमें आग लगाने वाले, जीते हुओं की दक्षिणा न दिलवाने वाले, ईमानदार कहलाते हैं ? बोल यह कर्म दुर्योधन ने किया या नहीं !

दुर्योधन : परन्तु उनसे युद्ध में...

भीम : ठहर जा, दो-चार पल ठहर जा, भीम सजग है कि द्रौपदी जरा दूर है।

किस तरह कर न जायें को लाल करें खून से।
सोचता है द्रौपदी के बाल कैसे खून से।

(द्रौपदी आती है, भीम दुःशासन को पछाड़कर उसकी अंतड़ियां खींचता है और खून-लिप्त से द्रौपदी के केश तर करता है।)[1]

इस छोटे-से दृश्य में कार्य का अभिनयन दर्शनीय है। इसमें अश्वत्थामा का अंतिम-त्याग, गदायुद्ध, घुसेबाजी, कलेजा नोचकर खून पीना, नारियों का आवेशपूर्ण प्रवेश और प्रस्थान तथा चरण मोपा के रूप में भीम द्वारा दुःशासन को पछाड़कर उसकी अंतड़ियां खींचना, खून-लिप्त से द्रौपदी के केश को तर करना, परम दर्शनीय है। इन अभिनयों द्वारा ही कथानक, क्रमातीव्रता, क्रोध और आवेश दर्शकों के सामने दिखाया जाता था, उसका मूल लक्ष्य था अभिनयीय नाटक की अभिनयोचित साधनों द्वारा प्रकट करना। और आश्चर्य की बात यह है कि ऐसे अभिनयीय कार्यों को देखकर काव्य-विमुख जनता 'वन्समोर' की बोलियां बोलती है।

5. एक ही संवाद और एक ही दृश्य के अंतर्गत अभिनय की ऐसी योजना मिलती है कि अभिनेता किसी चरित्र की भूमिका प्रस्तुत करने में एक मनोस्थिति और भाव की पराकाष्ठा प्राप्त करता था और उसे उत्तरोत्तर विकसित करता हुआ चरम सीमा तक पहुंचाकर ही साम लेता था। एक ही संवाद

1. 'महाभारत,' सर्ग 50 सरस्वतीलाल केलाये, पृ० 106-108

में, एक ही दृश्य में पात्रों के प्रवेश की अभिनव अभिव्यक्ति का उदाहरण बड़ा ही दिलचस्प है।

अम्बरीष — (आश्चर्य के साथ) क्या देखा ? अभी-अभी मैंने स्वप्न में क्या देखा ? मेरे प्रभु मुझसे यह कह रहे हैं कि तुम राज्य ले लो, मेरी आज्ञा है कि तुम राज्य ले लो। उन्होंने आज्ञा दी और मैंने उस आज्ञा के उत्तर में अपना सिर झुका दिया। उस, उस, उसने मेरी आँख खुल गई—क्या मैं राज्य लेलूँ ? मैं जो पिता के सामने, भाई के सामने, राज्य नहीं लेने की बात कह चुका हूँ। अब क्या करूँ ?

उधर आत्मा से और संसार में घोर युद्ध होती है।
उधर भाई न यह कहना तो आज्ञा भंग होती है।

बस्सा कर्तव्य, आत्मा और संसार का ध्यान छोड़कर अपने प्रभु की जो आज्ञा का पालन करना। मैं जानता हूँ कि राज्य सुख की सामग्री नहीं, गुलामी हथकड़ी है। मैं जानता हूँ, राज्य अमृत का प्याला नहीं, एक सुन्दर घड़े में भरा हुआ हलाहल विष है। यहाँ पर पाकर तो मनुष्य तरह-तरह के जुल्म, षड्यन्त्रियाँ, झगड़े और हत्याएँ करता है। यही पद पाकर तो प्राणी आत्मा का विनाश, काम का हनन, मूर्तिमान अहंकार और जीते जी नारकीय बन जाता है। पर, मेरे प्रभु कहते हैं कि यही पद—मेरे पद के बाद—पृथ्वी में सबसे ऊँचा पद है। इस पद का गौरव, इस पद का मान, इस पद की मर्यादा और इस पद की शान रखने के लिए तुझी को राजा बनाना होगा। क्या प्रभु ने मुझे उस पद के योग्य इतना समझा है ? उन्होंने समझा होगा, पर मैं तो अपने को किंचित-मात्र भी नहीं समझता। जा रहा हूँ—किधर ? जिधर कोई लिए जा रहा है। कर रहा हूँ क्या ? वही जो अंतःकरण में बैठकर कोई करा रहा है :

जो मेरे प्रभु की इच्छा है, वही है प्रण रक्षक मेरा।
न तन मेरा, न धन मेरा, धरा मेरी, न धन मेरा।

गाना[1]

भगवान, मेरी नैया, उस पार लगा देना।
अब तक तो निभाया है, आगे भी निभा देना।
[illegible] के साथ माया, [illegible] मुझे आकर।
तो [illegible] न करना, [illegible] आये [illegible]।
मायूस हूँ—अँधेरी में, मैं तुमको भूल जाऊँ।
पर नाथ, कहीं तुम भी मुझको न भुला देना।
तुम दर्द, मैं दुखारी, तुम इल्म, मैं [illegible]।
यह बात सच है, तो फिर मन [illegible] दिखा देना।

1. 'धीरज अवतार,' लेखक : [illegible] कलाकार, [illegible] [illegible] गीत

इस एक ही स्थिति के एक ही संवाद में मनःस्थिति का पूरा चित्र आरम्भ से अन्त तक बल्कि उससे भी आगे तक दिया गया है। इसके बाद अन्धकारीय का मंच के उपयोग की बात है। इस तरह यहाँ अभिनेता को नाटककार ऐसी अनेक स्थितियाँ, दृश्यों के आदि और अन्त का दिया उपयोग था जहाँ वह अपना सम्पूर्ण अभिनय और अपनी कला की पूरी शक्ति दर्शकों के सामने प्रस्तुत कर सके। इसके द्वारा अभिनेता को निश्चय ही वह व्यापक संवाद तथा कार्य-प्रसंग मिलता था जिसके द्वारा वह अपना पूरा प्रभाव उत्पन्न कर छोड़ सकता था।

5 गति और रंगचर्या

अभिनय में गति के नाम पर केवल अभिनेताओं को आना-जाना और घूम-घूमकर बोलना तथा रंगचर्या के नाम पर पृष्ठभूमि तथा संवाद बोलते समय हाथ-पैर-सिर की संवाद और कार्यों के अर्थों के अनुसार घुमाने, मुद्रा-स्थित करने में ही सम्पूर्ण माना जाता था। शेष सारा कार्य अभिनेता वाक्-अभिनय से ही पूरा कर लेता था। हाथ-पैर का चालन अपेक्षाकृत अभिनेता ज्यादा करता था तथा अभिनेत्रियाँ अपेक्षाकृत उंगलियों के इशारे से गति और रंगचर्या का कार्य पूरा करती थीं।

चूंकि अधिकतर संवादों की प्रकृति तुकान्त अथवा तीव्रगामी की श्रेणी में थी इसलिए गति और रंगचर्या की यह पृष्ठभूमि नहीं थी, जो आजकल के रंगमंच में है। चूंकि सारा बल चलना पर रहता था इसलिए खड़े होकर बोलने में उन्हें ज्यादा सुविधा होती थी। लेकिन इस संदर्भ में निम्नलिखित दो बातों का उल्लेखनीय गरमी थियेटर की अपनी निजी विशेषताएँ हैं

1. विराम का इस्तेमाल, 2. हैल्ली (झांकी-चित्र) की रचना।

अत्यधिक संवादों को बोलते-बोलते जब अभिनेता चरम सीमा पर पहुँच जाता था तो वह प्रायः आश्चर्यजनक ढंग से विराम का इस्तेमाल करता था। इसके दो प्रयोजन थे (1) दर्शकों की एक निश्चित मनःस्थिति पर नाटक को ले लेना और दूसरे दर्शकों के लिए तालियाँ बजाने की स्थिति देना। इसी-लिए दूसरा प्रयोजन तो दिखाई पड़ता था वह यह कि विराम के माध्यम से कलाकार की शक्ति और मानसिक अथवा शारीरिक अभिनय की स्थिति की गुंजाइश।

हैल्ली अथवा झांकी-चित्र अभिनय के अन्तर्गत एक ऐसा दृश्य था जिसमें अभिनेता मंच-दृश्यों तथा प्रभावों के साथ एकाकार होकर चुपचाप ऐसी झांकी प्रस्तुत करता था जो दृश्यता का अद्भुत उदाहरण होता था। यह ऐसा चार, अंक के अन्त में अभिनेताओं द्वारा प्रस्तुत किया जाता था और अच्छा नाटक वही समझा जाता था, जिसमें अधिकाधिक हैल्ली नाटककार अपने कथा-विधान में समाविष्ट कर सके तथा अभिनेताओं की दृश्यता उपस्थित करने की

[illegible] सके। [illegible] यह था कि चूँकि पूरे अंक-भर में [illegible] केवल पुतलियों का आनन्द लेना था इसलिए उसमें [illegible] दृश्यों के लिए दृश्यों का [illegible] अद्भुत चमत्कार, वे लोग अंक के अन्त में करते थे। साथ ऐसे झाँकी-चित्रों का उद्देश्य होता था दर्शकों को प्रभावित करना और अगले अंक के लिए उनमें [illegible] जिज्ञासा पैदा करना। मैक्ली के कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं :

(1) 'विलायत' के सिंहाकरण के पहले अंक के अन्त में 'पहुशामा' [illegible] तो [illegible] उठाया है और चीर पड़ता ही जाता है। [illegible] दोनों जगह [illegible] नजर आता है, जहाँ अन्त में [illegible] का अन्त करने की दुशामन [illegible] जोर [illegible] रहा है, जहाँ अन्तों का साथ [illegible] की मार्फत आता दादा दोनों की मदद को पहुँच रहा है।[1]

मैक्ली के एक अन्य उदाहरणों में पारसी रंगमंच की [illegible] भरी पड़ी है : विशेषकर पौराणिक और इतिहासिक।

जिस वक्त से आज आधुनिक रंगमंच ने अभिनेताओं को मंच पर एक [illegible] [illegible] [illegible] जिसे [illegible] सामूहिक अभिनय को महत्त्वपूर्ण बनाया जाता है, उस वक्त के प्रवृत्तिगत और सामूहिक अभिनय-प्रभाव पारसी रंगमंच में नहीं थे। इस अभिनय का बल अभिनेता की वैयक्तिक क्षमता और कला-प्रभाव में था। अभिनेता अपने अभिनय को प्रभावपूर्ण बनाने में जितना अधिक निजी साधन इस्तेमाल कर सकता था, करता था। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि वह अपने साथ के अभिनेता की अवज्ञा करता था या साथ में अभिनेता [illegible] एक-दूसरे को योग नहीं देते थे। इसलिए यह कहना चाहिए कि सभी अभिनेता अपने व्यक्तिगत [illegible] पर अपनी भूमिका को प्रभावपूर्ण बनाने में अधिक सीमित रहते थे।

[illegible] के [illegible] और अनुरूपों से प्रकट है कि कई महत्त्वपूर्ण चरित्रों को मंच पर एक साथ रखकर अथवा पूरे चरित्र के साथ समान रोल पात्रों को [illegible] सामूहिक अभिनय के प्रभाव पर आज की तरह बल नहीं दिया जाता था। ज्यादा से ज्यादा यही होता था कि एक अभिनेता अथवा पात्र की [illegible] की प्रतिक्रिया में दूसरे चरित्र का अभिनेता अपनी एक प्रतिक्रिया देता था और यह प्रतिक्रिया प्रायः [illegible] होती थी। पर प्रायः होता यह था कि जिस अभिनेता का संवाद [illegible] था उसे ही मुख्यता दी जाती थी और शेष अभिनेता [illegible] रहते थे।

मंच पर दृश्य संचार आज के आधुनिक रंगमंच की तरह नहीं होने से वर्णाक्षर इसकी कोई उपयोगिता नहीं थी और न कोई [illegible] ही थी। प्रायः गति-संचार स्थान बदलने और कभी-कभी एक्स्ट्रा या 'कोरोस' को [illegible] के लिए इस्तेमाल कर दिया जाता था। प्रायः बन्द-[illegible] से ही [illegible]

1. 'पहुशामा,' [illegible] 'नाट्य-[illegible] संग्रह,' पृष्ठ, 53

संचार का कार्य किया जाता था।

यह सच है कि जो शक्तिशाली अभिनय पारसी थिएटर ने प्रस्तुत किया था उसके लिए अभिनेता जो भी माध्यम इस्तेमाल करते थे, वे कवि के भावों को, चरित्रों को, कुंतलों को, छवि को, वेशभूषा को चेहरे पर, बनावट से अर्थात् अपनी वाणी द्वारा श्रोताओं तक पहुँचाने के अधिकारी थे। इस सत्य के उदाहरण के 'पंचवटी-चरित्र' के अन्तर्गत उस साल की प्रसिद्ध अभिनेत्री मिस फातिमा का एक दृष्टान्त महत्वपूर्ण है।

"सन् 1916 ई० में हमने फिल्म 'पद्म' का प्रदर्शन किया था। जिसमें नौकर ने उस कुलीन कन्या का पार्ट किया है जिसे कराल काल की लोल ने ग्रस लिया था। अनाथ कुमारी ने जिस तरह अपना दिया था और वो अपने काल में एक कलाकारा-शाला की अभिनेत्री बनकर जीवन व्यतीत करने लगी थी। नाटक में वेश्या की भूमिका इसके हिस्से में आई। वेश्या, तवायफों की तरह थिरकती हुई गाना गाने वाली थी। मैंने गाना लिखा :

पीलो, पीलो, सुरंग लाल पानी।
वो है ये जिन्दगी, अरमां हो जुल्फी,
बूढ़ा हो तो वो नौजवान
बनने लगे वहीं चेहरे पे लाली।
छूते ही जाम छोड़ जाए, गई हुई भी जवानी।।

"जिस समय यह गाना नौकर से गवाया जाने लगा तो वो शर्म से पानी-पानी हो गई कि गा न सकी, हालांकि रंगमंच का राजा राजा नहीं बन जाता; चोर चोर नहीं बन जाता, तो वेश्या का पार्ट करने वाली भी वेश्या नहीं बन सकती। परन्तु नहीं, नौकर के असली हृदय ने इस नकली भावना को स्वीकार नहीं किया। उसको प्रसन्न करने के लिए बार-बार कोशिश भी की, कि गा सके, परन्तु मन के विरुद्ध गाने में प्राण कहां? लाचार गाना बदलना पड़ा।

पीलो, पीलो, यह रस का भर प्याला।

"आज यही फिल्म में प्रदर्शित हो रहा है।

"इन्हीं तीन बातों से नौकर के अन्तर्जीवन का पता पाठकों को आसानी से लग सकेगा।"

पारसी-थिएटर रंगमंच ने अभिनेता को उसके स्थान। अर्थ में लिया जाता था। उसमें अभिनय और अभिनेत्री मिलकर थे था—उन्हें गाना-बजाना, हंसाना-रुलाना और वाणी के जादू से श्रोताओं को विमोहित करना चाहिए। उनमें आकर्षक नौकरी होना चाहिए, मीठी उनकी वाणी, मधुर स्वरोत्तर में प्रभावित अदा की तिरछी आंख हो कि चाहिए। [illegible] जाए, जो [illegible] उनके [illegible] के लिए [illegible] हो जाए।

1. [illegible], [illegible], [illegible], पृ० 144-45

प्रसिद्ध अभिनेता

कावसजी खटाऊ (डरबिन की उपाधि)

अमृत केशव नायक, मोराबजी जोशी, बल्लभ केशव नायक, गोराबजी कानरक, दादाभाई सरकारी, अब्दुल रहमान काबुली, रतनशाह मिस्त्री, मास्टर मोहन, मास्टर निसार, गुलाम हुसैन, मास्टर सूरजराम, मास्टर भगवानदास, [illegible] (अदाजनोंवा), मोराबजी डेरेवाला, मीनाराम दादा, मास्टर गामा, मास्टर अब्बास, मख्बूब हुसैन, दीनाबजी मेवावाला, मास्टर नारायण भाई, मेहराजजी, मरकराम, अब्बूभाई, मोहनलाल, राधेश्याम, भाई लाल (इन्हीं की [illegible] की पुत्र की भूमिका), मास्टर फूलचन्द, नैनचन्द, प्रभुदयाल, [illegible], नानिकलाल नाथी, मास्टर फिदा हुसैन, कन्हैयालाल पंचार, मुहम्मद हुसैन, [illegible], [illegible] हसन मिस्त्री, मास्टर मुलचन्द, मास्टर मुलचन्दभाई, [illegible], मास्टर मुलचन्द, [illegible], मास्टर [illegible] मुहम्मद।

प्रसिद्ध हास्य-अभिनेता

मोराबजी [illegible], अब्बूभाई, मास्टर मोहन, गामा जमुनी, मोहनलाल, [illegible], अब्बूभाई, मास्टर [illegible], [illegible] [illegible], [illegible] मीठालाल, सुरणीदेवी बल्लभलाल।

प्रसिद्ध अभिनेत्रियां

1. वे पुरुष जो पहले स्त्री-भूमिका करते थे और अभिनेत्रियों के अभाव में प्रसिद्ध थे और बाद में पुरुष-भूमिका के अभिनेता के रूप में प्रख्यात हुए। मास्टर निसार, मास्टर मोहन, नैनचन्द, फिदा हुसैन, फूलचन्द, प्रभुदयाल।

2. स्त्री अभिनेत्रियां—गौहरबाई, मुन्नीबाई, मिस मेरी फैटन उर्फ पेरीबाई, मिस खुरशीद, मिस मेहताब, [illegible], माई राजल, [illegible], [illegible], [illegible] (अलबर्ट कैबायाली), [illegible], [illegible], [illegible], सुशीलाबाई, फुलकुमारी, गुलबार, राजकुमारी, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible]।

इन समस्त प्रसिद्ध अभिनेता और अभिनेत्रियों के अतिरिक्त उस काल में अनेक ऐसे कलाकार थे जिन्होंने अपनी अभिनय-कला, गायन और नृत्य से उस युग को गौरवान्वित किया था।

[illegible] नवयुवतियाँ और अन्य लोगों के आधार के एक [illegible] अभिनेत्रियों और अभिनेताओं के बारे में अन्य विवरण, जिन्होंने [illegible] के विभिन्न [illegible] की थी।

1. मास्टर निसार : उनका असली नाम [illegible] था। उन्होंने थियेटर के [illegible] में पार्टियों, [illegible]

नाटक 'बिल्वमंगल' में चिंतामणि, राजेश्वर के नाटक 'अभिमन्यु' में उत्तरा, 'देवता' के नाटक 'महाभारत' में द्रौपदी, आगा हश्र के नाटक 'दिल की प्यास' और 'खुदी हुस्न' में क्रमशः कृष्णा और रशीदा की प्रसिद्ध भूमिकाएँ कीं। इसके बाद पुरुष-भूमिका में उन्होंने समान रूप से जो प्रसिद्ध भूमिकाएँ कीं—उनमें 'शीरीं फरहाद' में फरहाद और 'लैला-मजनू' में मजनूं के लिए अत्यन्त विख्यात थे।

2. **पेशन्ता कूपर** : पारसी एलफिंस्टन से लेकर कोरिंथियन थियेटर तक इनका नाम समान रूप से विख्यात था। 'भारतीय बालक' में हास्य-अभिनेत्री, 'दिल की प्यास' में शरीफाबाई के बाद मुख्य अभिनेत्री और 'वीर अभिमन्यु' में उत्तरा के रूप में ये विख्यात थीं।

3. **अब्दुल रहमान काबुली** : कोरिंथियन, पारसी अल्फ्रेड, पारसी कोरिंथियन, एलफिंस्टन, न्यू अल्फ्रेड व इम्पीरियल मुख्य अभिनेता के रूप में कार्य किया है। 'आदर्श सती' में आदर्शसिंह, 'खूनी बालक' में कैलाशनाथ, 'शीरीं फरहाद' में फरहाद, 'सावित्री' या 'सत्यवान' में सत्यवान तथा आगा हश्र के चारों प्रसिद्ध हिंदी नाटक 'वीर बालक', 'प्रेमी बालक', 'कश्मीर बालक' और 'खूनी बालक'—इन सभी मुख्य पात्र का अभिनय किया।

4. **दादाभाई सरकारी** : इन कोरिंथियन के नाटकों निर्देशन तथा इस कम्पनी के नाटकों के हिंदी के अभिनय के लिए प्रसिद्ध थे। 'सोम-पनेला' में दुर्योधन बनाया, 'खूनी हुस्न' में आगा आ 'खूनी बालक' व नाटक की प्रसिद्ध भूमिकाएँ कीं।

5. **कज्जनबाई** : गायिका अभिनेत्री के रूप में यह सारी कम्पनियों में अत्यन्त महत्वपूर्ण और लोकप्रिय थीं। 'लैला-मजनूं' में लैला, 'शीरीं-फरहाद' में शीरीं के रूप में इन्हें जाना जाता था।

6. **अमृत केशव नायक** : प्रारम्भ के प्रायः सभी नाटकों में यह मुख्य अभिनेता के रूप में जाने जाते थे। इन्हें अभिनय के समस्त पक्षों पर आश्चर्यजनक अधिकार था।

7. **सोराबजी ओझा** : हास्य-अभिनेता के रूप में गोलाबजी के मंच पर आ जाना ही दर्शकों के लिए इतना ज्यादा था कि उन्हें हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाना पड़ता था। 'वीर अभिमन्यु' नाटक में राजा बहादुर के रूप में ये अत्यन्त प्रसन्न थे। राजा बहादुर और मुन्दरी के दृश्य में जब ये मेहनती [illegible] और नाटक में जब इस दृश्य में ये अभिनय करते थे तब [illegible] जाता था कि [illegible] में ही आकर [illegible] बड़ी सुशोभित है [illegible] इतना इनकी [illegible] कहती थी कि आगे का नाटक [illegible] था। [illegible] ये ही 'वीर अभिमन्यु' नाटक के प्रसिद्ध [illegible] थे।

8. **मास्टर फिदा हुसैन** : [illegible] करने में मशहूर थे। [illegible] के [illegible] उन्होंने अपने [illegible] की [illegible]

[illegible] के 'अभिमन्यु' के किरदार में भी वही ख्याति थी। 'परसी' नाटक में उन्होंने परसी की [illegible] भूमिका प्रस्तुत की थी कि उनका नाम ही फिर इसका पर्याय-सा बन गया था।

9. **गौहरबाई** : 'महाभारत' और 'रामायण' इन दो प्रसिद्ध नाटकों में क्रमशः द्रौपदी और सीता की प्रसिद्ध अभिनेत्री यही गौहरबाई थी।

10. **मुन्नीबाई** : अभिनेत्रियों में मुन्नीबाई का स्थान बहुत ही महत्त्वपूर्ण था। कावसजी खटाऊ के अल्फ्रेड थियेटर की मुख्य अभिनेत्री के रूप में इन्हीं की गणना थी। थियेटर में उनका अत्यधिक नाम कमाया था। अभिनेत्री के रूप में यह रंगून, इलाहाबाद तक अभिनय करने गई थीं।

11. **पालेकर सुरबाला** : ये उत्तम गायन और अभिनेता के रूप में जाने जाते थे। दिल्ली के हबीब सेठ-मुहम्मद सेठ की कम्पनी से लेकर सिंध की माई राजल कम्पनी, रंगुनवाले का नाटककार [illegible], बम्बई की [illegible] ईरानी कम्पनी तथा [illegible] और [illegible] कम्पनी तक में अत्यधिक लोकप्रिय रहे हैं, जिन्होंने अनेक महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ निभाई थीं।

12. **सरस्वतीदेवी** : पारसी थियेट्रिकल कम्पनी की प्रसिद्ध हिरोइन यही थीं। इस कम्पनी के मालिक और निर्देशक फरदून ईरानी ने जो कुछ भी यश प्राप्त किया था उसके मूल में इसी अभिनेत्री का नाम है। चरित्र-अभिनय में यह अत्यधिक उल्लेखनीय थीं।

13. **मानिकलाल डांगी** : मानिकलालजी का व्यक्तित्व अत्यधिक बहुरंगी था। उन्होंने विभिन्न कम्पनियों में भूमिकाएँ कीं। आगे चलकर उन्होंने खुद कई नाट्य कम्पनियाँ खोलीं। रंगमंच के विविध पक्षों पर उनका अधिकार था। आगा हश्र के नाटक 'भागीरथी गंगा' में भगीरथ का महत्त्वपूर्ण अभिनय किया था। उनकी विशेषता यह थी कि वे सब प्रकार की भूमिकाएँ समान अधिकार से कर लेते थे। जैसे 'दुर्गादास' नाटक में दिलेरखाँ की भूमिका, 'पूर्वी हूर' में अनवर की भूमिका और फिल्मों की नायकों में हास्य-अभिनेता के भी रूप में समान रूप से वे प्रसिद्ध थे। इनके छोटेभाई गणपतलाल डांगी अभी हमारे बीच में हैं और पारसी थियेटर के जीवित उत्तराधिकारी हैं।

14. **कन्हैयालाल पंवार** : ये पारसी थियेटर के समस्त अंगों में बड़ी गहरी पैठ रखनेवाले कलाकार हैं। गायन-वादन, निर्देशन, सभी क्षेत्रों पर इनका समान अधिकार है। इन्होंने मुख्य रूप से पारसी एलफिंस्टन थियेट्रिकल कम्पनी, जिसे [illegible] थियेटर कहा जाता था, उसके प्रमुख अभिनेता थे। चरित्र-अभिनय, गायन में ये उल्लेखनीय रहे हैं। बाद में इन्होंने कई कम्पनियाँ स्वयं बनाईं और पारसी थियेटर के कई प्रसिद्ध नाटकों को इन्होंने अपनी कम्पनी में प्रस्तुत किया, निर्देशन किया और उनमें मुख्य भूमिकाएँ कीं। आज [illegible] दिल्ली में ही पंवार थियेटर की [illegible] हैं।

15. **मास्टर खेमराज** : [illegible] की भूमिका और अभिनय करने में इनका

अपने समय में जवाब नहीं था। चरित्र के भीतर के रागद्वेष और उसकी मनोवृत्तियों को बड़ी ही सजीवता से अभिव्यक्त करते थे। आंगिक-वाचिक अभिनय में यह अद्वितीय थे। प्रसिद्ध कम्पनियों से संबद्ध।

मास्टर नैनूराम : पारसी थियेटर की प्रायः सभी प्रसिद्ध कम्पनियों में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। पहले स्त्री-नायिकाओं की भूमिका में उल्लेखनीय स्थान। कई प्रसिद्ध ऐतिहासिक-पौराणिक नाटकों के मूल स्त्री-पात्र के अभिनय में प्रधान रहे हैं। अत्यंत गम्भीर और मजबूत 'होरोइन' थे। बाद में पुरुष-भूमिकाओं में नायक के रोल करते रहे हैं। पारसी थियेटर के अभिनेताओं में उनकी बड़ी इज्जत रही है।

8

संगीत और नृत्य-परम्परा और प्रकृति

इस विवेचन में संगीत और नृत्य-तत्त्व पर विचार करने से पहले यह जान लेना बहुत जरूरी है कि इन तत्त्वों का उद्गम-स्रोत क्या था। पारसी रंगमंच के उदाहरण और विकास में, संगीत और नृत्य के विशेष संदर्भ में हम यह भी जानना चाहते हैं कि इन तत्त्वों का विशेषतः उपयोग यहाँ क्योंकर किया गया है। इस उद्गम-सूत्र के अध्ययन में हमारा ध्यान तीन सन्दर्भों की ओर जाता है — 1. संस्कृत और लोकप्रचलित नाटकों में संगीत-तत्त्व, 2. लोकनाट्य और रंगमंच के अवयव, संगीत और नृत्य-तत्त्व और 3. पारसी 'आर्केस्ट्रा' और पारसी रंगमंच के प्रभाव से यहाँ आया हुआ संगीत और नृत्य तत्त्व।

इन तीनों सन्दर्भों पर विचार करना इसलिए भी आवश्यक है कि इसी

पृष्ठभूमि में [illegible] यहाँ किसे [illegible] और [illegible] नृत्य-तत्त्वों का [illegible] होता [illegible] कहा जाता है, यहाँ मैं उन सो[illegible] इस्तेमाल किया।

संस्कृत नाटकों के मूल में [illegible] के 'नाट्यशास्त्र' के अनुसार [illegible] जब भरत ने ब्रह्मा के आदेश [illegible] प्रस्तुत किया तो उन्होंने [illegible] था। उन नाटकों में शिव को [illegible] आदि देखना है और यह [illegible] सलाह दी थी कि वृद्ध अभि[illegible] प्रयोग करना चाहिए और [illegible] नाट्य-प्रदर्शनों के रूप और [illegible] से ही नाटक में संगीत [illegible] गई।

[illegible] एक [illegible] है कि संस्कृत नाटक की [illegible] श्री जगदीशचन्द्र माथुर और [illegible] सिद्ध किया है कि संस्कृत नाट[illegible] महत्त्वपूर्ण था। डा० [illegible] बोली में रचे जाते थे और इ[illegible] के ऐसे संगीतकार करने से [illegible] से काफी परिचय रहता था। [illegible] चौथा अंक इस सन्दर्भ में [illegible] रंगमंच के अनुसार संगीत [illegible] और प्रभाव मध्ययुग [illegible]

श्री जगदीशचन्द्र माथुर [illegible] जहाँ मिथिला, नेपाल [illegible] काल 14वीं शताब्दी से लेकर [illegible] में संगीत-तत्त्व की प्रधानता [illegible] देखा है।

इसके अतिरिक्त संस्कृत [illegible] इस तत्त्व का काफी प्राधान्य [illegible]

1. [illegible]
2. [illegible]

गुप्तकाल में पारसी रंगमंच का जन्म और विकास हुआ है। जब पारसी नाटक यहां लिखे जाने लगे और प्रदर्शित होने लगे और उनमें इस तरह से संगीत और नृत्य-तत्वों का उपयोग होने लगा तो इसकी जांच के स्वभावतः हमारा ध्यान यहां जाता है, जहां से इन लोगों ने इन तत्वों को अपने रंगमंच में इस तरह इस्तेमाल किया।

संस्कृत नाटकों के मूल में संगीत-तत्व आदि से ही विद्यमान था। भरत के 'नाट्यशास्त्र' के पांचवें अध्याय में इस संदर्भ में एक विशेष उल्लेखनीय बात है। जब भरत ने ब्रह्मा के आदेश पर 'अमृत-मंथन' और 'त्रिपुर-दाह' इन दो नाटकों को प्रस्तुत किया तो उन्होंने उनमें किसी प्रकार के संगीत-नृत्य को नहीं रखा था। इन नाटकों को शिव को दिखाया गया, जो स्वयं संगीत और नृत्य के आदि देवता हैं और उन नाट्य-प्रदर्शनों को देखकर स्वयं शिव ने भरत को यह सलाह दी थी कि शुद्ध अभिनय के स्थान पर उन्हें संगीत और नृत्य का भी प्रयोग करना चाहिए और तब अभिनय में इस तरह के तत्वों के उपयोग से नाट्य-प्रदर्शनों के स्तर और रोचकता में गहराई और विस्तार आया। इसके बाद से ही नाटक में संगीत और नृत्य के उपयोग की अनिवार्यता प्रकट हो गई।

ऊपर की कथा एक तरह से प्रतीकात्मक कथा है और इससे यह सिद्ध होता है कि संस्कृत नाटक की बुनियाद में संगीत और नृत्य का तत्व महत्वपूर्ण था। श्री जगदीशचन्द्र माथुर और डा० वी० राघवन ने अपने-अपने अध्ययनों से यह सिद्ध किया है कि संस्कृत नाटकों की बुनियाद में संगीत और नृत्य का तत्व महत्वपूर्ण था। डा० राघवन ने बताया है कि संस्कृत नाटकों में गीत प्राकृत बोली में रखे जाते थे और इस प्रतीकात्मक भाषा में गीत तत्व की संरचना मंच के लिये संगीतकार करते थे, जिन्हें नाटक के भाव, रस और उसकी नाट्य-प्रस्तुति से काफी परिचय रहता था। कालिदास के प्रसिद्ध नाटक 'विक्रमोर्वशीय' का चौथा अंक इस सन्दर्भ में एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। इस सन्दर्भ में संस्कृत रंगमंच की अन्तर्गत 'गीतिका' एक उल्लेखनीय नाट्यतत्व है, जिसका विकास और प्रसार मध्ययुग तक के भारतीय नाटकों में मौजूद है।

श्री जगदीशचन्द्र माथुर ने गुप्त युग के तमाम भारतीय नाटकों में, जिन्हें उन्होंने मिथिला, नेपाल और स्याम के क्षेत्रों से ढूंढा है और जिनका रचना-काल 11वीं शताब्दी से लेकर 17वीं शताब्दी तक सिद्ध किया है, इन सभी नाटकों में संगीत-तत्व की प्रधानता दिखाई है और उन्हें 'संगीतक' के अन्तर्गत ही रखा है।

इसके अतिरिक्त संस्कृत नाटकों के कुछ प्रकार जैसे भाण में भी संगीत के इस तत्व का काफी प्राधान्य मिला है। जगन्नाथ के 'रसगंगाधर' में, जो

1. दास इन ऑल इंडिया, पृ० 109
2. कलकत्ता यूनिवर्सिटी जरनल (विभाग-I, संख्या-29), जुलाई 1957

'चतुर्भाणी' संग्रह का एक नाटक है, जिसे दो गायिकाओं पर उल्लेख है जो अपने संगीत के लिए अपने काल के तमाम प्रेमियों के लिए आकर्षण बिन्दु रही हैं। वास्तव में संस्कृत-काल से लेकर मध्ययुग तक ऐसे तमाम संगीतक हमारे देश में प्रचलित रहे हैं, जिनके भीतर नाट्य-तत्त्व के साथ ही साथ संगीत-तत्त्व का प्रयोग अनिवार्य था। ।।वीं शताब्दी का 'गीतगोविन्द' इसका एक दूसरा उदाहरण है।

लोक रंगमंच में इस संगीत और नृत्य-तत्त्व का और भी अधिक प्राधान्य रहा है। इस तरह से लोकनाटक में संगीत वह साधन है, जिसके सहारे नाटक की संरचना होती है और दर्शकों तक उसकी अभिव्यक्ति सम्पूर्ण की जाती है। कुछ मत तो इन नाटकों की संरचना संगीत और नृत्य-तत्त्व की अनिवार्यता और भी अधिक सिद्ध करती है, क्योंकि बिना इसके विशाल जन-समूह को मंत्र-मुग्ध बनाए रखना असम्भव था। साथ ही दूर-दूर से दर्शकों को खींच लाने के लिए इस संगीत की पुकार भी जरूरी थी। जैसाकि लोकरंगमंच की प्रकृति से स्पष्ट है, चूंकि इसमें न दृश्य-परिवर्तन होता है, न पर्दा उठता है या गिरता है, इसलिए इन तत्त्वों के अभाव को पूरे भी संगीत को ही करनी पड़ती है। उत्तर प्रदेश, पंजाब, महाराष्ट्र, गुजरात और राजस्थान- इन सभी क्षेत्रों में जिस प्रकार के भी लोकरंगमंच प्रचलित रहे हैं, उन सबमें संगीत और नृत्य-तत्त्व का अधिक प्राधान्य रहा है। लोकरंगमंच के सन्दर्भ में चाहे वह राजस्थान का हो, चाहे गुजरात का, महाराष्ट्र का या उत्तर प्रदेश का, इसमें आदि से अन्त तक एक इतिवृत्तात्मक संगीत-तत्त्व की बुनावट हुआ करती है। अतः पूरे नाटकों में ऐसे गायन विद्यमान होते हैं, जो एक ही राग और एक ही ताल की बार-बार पुनरावृत्ति करते रहते हैं। इस इतिवृत्तात्मक गायन-शैली का इस्तेमाल वे लोग विशेष दृश्यों को जोड़ने, नाट्य-व्यापार को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने और साथ ही नाटक को गतिमान पर विशेष प्रभाव डालने के लिए इस्तेमाल करते थे। दूसरी ओर यह भी उल्लेखनीय है कि प्रायः एक ही लोक-नाटक में बीच में केवल तीन राग-रागिनियों का इस्तेमाल भी देखने को मिलता है। यहाँ यह सच है कि त्योहारों और बुनियादी तौर पर एक ही राग में ही विवाह होते हैं। इन गीतों में विशेष तो लोकरंगमंच एक एक ओर देश-काल परिस्थिति की संरचना होती है और दूसरी ओर पात्रों के चरित्रों के भाव-अभिनय में सहायता मिलती है। यह भी देखा जाता है कि गायकगण ही कुछ पात्र हमारे पात्र से अपना संवाद बोलते हैं और नाटक इसीके आधार पर समृद्ध होता चलता है। लोकरंगमंच में इस तत्त्व का प्रत्यक्ष उदाहरण हम आज भी उत्तर प्रदेश की नौटंकी, रामलीला और रासलीला में देख सकते हैं और दूसरी तरफ महाराष्ट्र के तमाशा, गुजरात के भवाई और राजस्थान के गवरी-गायनों में।

पारसी रंगमंच के अवतरण के समय लोकरंगमंच में संगीत का जो स्वरूप

विद्यमान था, वह अ
लोकप्रिय था। इस
उद्भुत इंदर-सभा की
शैली में पारसीय और
संगीत के बोल
राग और ताल पर
था। यह है कि पारसी
कुछ मुमकिन और
बनाया था।

पारसी रंगमंच
नहीं आया, वह बुनियाद
था। अब तक पारसी
रहीं और मध्यकालीन
विशेष संगीत की
रंगमंच में अहम था
और निर्देशक के लिए
इसीलिए उन्हें
मंच है कि दर्शक वर्ग
है कि उनके संगीत
बुन रहा है। किन्तु
पारसी रंगमंच अपनी
इस सफल प्रस्तुतियों
लिए भी पारसी थिये
वह अपने नाटकों में
और बनाया। पारसी
हारमोनियम, सारंगिका
के चाहनेवाले, उन्हीं
पारसीय संगीत मंच

मंच पर संगीत को

जहाँतक मंच
अत्यन्तीय रहते
शैलियों का
यों नहीं कि पारसीय
लिए नाटकों में
प्रकृति में लिए

विद्यमान था, वह अपनी प्रकृति में शास्त्रीय संगीत का आधार लेते हुए भी लोकसंगीत था। दूसरी तरफ, उस समय वाजिद अली शाह के दरबार में उद्भूत इंदर-सभा की संगीत-परम्परा भी जीवित थी। इंदर-सभा की संगीत शैली में शास्त्रीय और लोकसंगीत इन दोनों का सुन्दर समन्वय था। उस संगीत के बोल पर जहां एक ओर लोकधुनों, राग का प्रभाव था, वहीं उसके राग और ताल पर शास्त्रीय संगीत का भी प्रभाव था। लेकिन ध्यान देने की बात यह है कि शास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत ये राग और ताल, जो कि अत्यन्त कुन नुगम और सरल हैं, लखनऊ के इंदर सभा की संगीत-शैली में समाए थे।

पारसी रंगमंच का उदय शहर में हुआ, इसलिए उसमें जो प्रचार संगीत वर्ग आया, वह मुख्यतः शहर का था या गांव से शहर में आया हुआ दर्शक वर्ग था। अब तक अच्छा संगीत सुनने का सौभाग्य केवल शहर के कुछ प्रतिष्ठित घरानों और सम्पन्न व्यक्तियों को ही मिलता रहा और राग और ताल के विशुद्ध संगीत को सुनना अभिजात्य का एक लक्षण भी था। इसलिए जब पारसी रंगमंच ने शहर में यह दर्शक वर्ग आया तो पारसी रंगमंच-कर्मी, नाटककार और निर्देशक के लिए यह आवश्यक हो गया कि शहर के इस दर्शक वर्ग की रुचियों और रुचि के अनुकूल नाटकों में संगीत का तत्त्व विद्यमान करें। यह भी सच है कि इसके वर्ग के मन-रंजन की यह प्रवृत्ति और उसकी रुचि यह थी कि उसके मनोरंजन का आधार कला किसी न किसी प्रकार से संगीत और नृत्य रहा है; बिना इनके उसका मनोरंजन कभी भी सम्पन्न नहीं होता। पारसी रंगमंच अपनी प्रकृति में व्यावसायिक था, लेकिन वह बुनियादी तौर पर उस समय भारतवर्ष की पुनरुत्थानवादी और राष्ट्रीय धारा से जुड़ा था। इसलिए भी पारसी थियेटर और उसके नाट्य-कर्मी के लिए यह आवश्यक था कि वह अपने नाटकों में शास्त्रीय संगीत और लोक संगीत इन दोनों को महत्त्वपूर्ण स्थान दे। पारसी रंगमंच के नाटककारों ने जिस काल के सामाजिक, ऐतिहासिक, सामाजिक और धार्मिक नाटकों की रचना की और उनमें जिस प्रकार के कथानकों, पात्रों की रचना करनी चाहिए, उसके लिए भी परम्परावादी शास्त्रीय संगीत महत्त्व और उपयुक्त था।

मंच पर संगीत की प्रकृति

पारसी रंगमंच में संगीत की कुछ ऐसी शैलियां और प्रकार हैं, जिन्हें उन अशास्त्रीय लगते हुए भी उन्हें पारसी नाट्यकर्मी स्थान देते हैं, वास्तव में ये गायन-शैलियों का परिष्कार प्रकार और अव्यवस्थित रूप से शास्त्रीय ही होता है, यदि हो यह कि पारसी शैली के विभिन्न रूपों के रूपाकार में भूलती हुई हो। जिस तरह से प्रकार गाते हैं और उनका रस और प्रभाव निर्माण हो जाता है प्रकृति में जिसे राग और ताल अस्तित्व मंजूर होते हैं और शास्त्रीय संगीत में

उनकी सत्ता स्वतन्त्र हो जाती है। रंगमंच पर मूलतः ऐसे ही संगीत का एकछत्र उपयोगी होता है क्योंकि नाटक में गीत और संगीत का इस्तेमाल इसलिए होता है कि उनके माध्यम से दर्शकों तक नाटक का विषय, उसकी संवेदना भावनात्मक स्तर पर पहुँचाई जा सके। इस संगीत की प्रकृति से गीत-तत्त्व का होना अनिवार्य है, अर्थात् ऐसे गीत जिनमें काव्य हो, अर्थात् वे गीतात्मक सवाद भी हों। ऐसे गीतों का इस्तेमाल परम्परावादी अर्थात् लोकरंगमंच से आदि से अन्त तक हुआ है और अब भी हो रहा है। नौटंकी तथा इन्दरसभा (वाजिद अली शाह के बाद सम्पूर्ण ऐसी नाटकी तथा इन्दरसभा की विविध नाट्य परम्परा विद्यमान रही है और इन्दर-सभा के बाद से आज और विशेष नाटक-प्रस्तुत होते रहे हैं। इन्दर-सभा की संगीत-शैली का प्रभाव पारसी रंगमंच के प्रथम चरण के संगीत पर पूर्णतः स्पष्ट है। ये सामान्यतः ठुमरी, दुमरी और ख्याल इन तीन गायन-शैलियों का सबसे ज्यादा उपयोग हुआ है।

इन तीनों में ठुमरी और ख्याल, मंच की इस्तेमाल की भाषा के उद्भव (ऑरिजिनल स्ट्रक्चर) संगीत के अंतर्गत आता है। नाटकों, खासकर पारसी और बंबइया फिल्मों के गीत इनमें से जो पारसी रंगमंच का प्रारंभिक काल था, यहाँ यह विश्वास किया जाता था कि यदि नाटक की बंदिश और गतात्मक बनावट है तो उसे ऐसा होना चाहिए कि वह गाया भी जा सके। इसलिए नाटक के संगीत का यह मंच तत्त्व विशेषकर उत्तर भारत, महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान और पंजाब में नाटक का अनिवार्य महत्त्वपूर्ण तत्त्व माना गया। इन रागों और तालों का इस्तेमाल जिस तरह से पारसी रंगमंच और उसके नाटकों ने किया है, उसका आधार नवीन भारतीय संगीत के नियमों के अनुसार ही पाया जाता है। उसमें ठुमरी को गत-संगीत में महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। पारसी रंगमंच के संगीतकारों ने और संगीत-निर्देशकों ने ठुमरी गायन की शैली के रूप को प्रस्तुत करने के लिए प्रमुख आधार माना था। चूंकि प्रायः यह गायन की लड़कियों के संवाद के बीच में होता था इसलिए संगीतकार को यह ध्यान में रखना पड़ता था कि यह ऐसा हो जिसे नाटक के प्रदर्शन में एक अनिवार्य प्रकार के रूप में लिया जाए। चूंकि संगीत एक तरह से ड्रामा की भाषा के रूप में इस्तेमाल किया जाता था, इसलिए उसके शब्दों का (वर्ड्स) का अर्थ और प्रभावकारी होना अनिवार्य था।

जिस तरह किसी भी नाटक का मूलाधार होता था उसीके अनुसार संगीत में राग को भी इस काम में ड्रामा की आत्मा के रूप में स्वीकार किया गया था। गायन, चाहे वह एक व्यक्ति द्वारा हो, चाहे युगल हो, चाहे सामूहिक हो, उसका उद्देश्य था एक विशिष्ट देश काल-परिस्थिति में एक विशिष्ट भावनात्मक अभिव्यक्ति। यह गायन एक प्रकार से नाट्यीय होता था और इसे देश, काल और परिस्थिति की सीमा में ही उजागर करना पड़ता था। दुनिया भर में देश, काल और परिस्थिति की यह सीमा राग और तालों में यह

अबाधता और प्रसार देने के [illegible] थी तथा इसी सीमा के भीतर से गान और नाचों की चरम सीमा तक के जाना होता था, इसीलिए गायन का नाटकीय होना स्वाभाविक हो जाता था। इसका कारण यह भी था कि जो पात्र गाकर अपने चरित्र की प्रभविष्णुता को प्रकट करना चाहता था, उसमें वह अपने चरित्र की विशेषता को स्वभावतः रख देना चाहता था, इसीलिए प्रायः यह देखा जाता है कि उस काल के मंच पर मुख्यतः ऐसे गायन संगीत का व्यवहार होता था, जो एक ओर शास्त्रीय आधार लिए होता था और दूसरी ओर उसमें गीतात्मकता और भावुकता का अंश ज्यादा होता था। इसीलिए ठुमरी और ख्याल के अतिरिक्त जो अन्य गान और नाच पारसी रंगमंच पर अधिक लोकप्रिय थे, उनके नाम हैं—गजल, दादरा, कहरवा, कजरी, टप्पा, ठुमार और खयाल।

निःसंदेह इन रागों और तालों का व्यवहार शास्त्रीय पद्धति के अनुसार होता था, किन्तु दर्शकों को मनोरंजित करने के लिए इन राग और तालों में अन्य राग और तालों का मिश्रण भी प्रायः किया जाने लगा। यही नहीं, इनमें वाहवाही प्राप्त करने के लिए कुछ ऐसे भी प्रयोग किए गए, जो पारसी रंगमंच की अपनी निजी उपलब्धि थी।

रंगमंच के इस संगीत-क्षेत्र में ठुमरी, दादरा, ख्याल का सबसे ज्यादा क्यों ग्रहण किया गया, इसके कई कारण हैं। एक तो ये गायन में अत्यधिक सुगम हैं, दूसरी ओर ये शास्त्रीय संगीत के सुगम पक्ष को उजागर करने वाले हैं। विशेषकर ठुमरी शृंगारपरक की अभिव्यक्ति के लिए सबसे अधिक उपयुक्त थी और चूंकि पारसी थियेटर में नाटक में श्रोता-दर्शकों की भावना का प्राधान्य था, इसलिए ठुमरी और इसके अनुसरण के राग और ताल इनके मंच के लिए अत्यधिक उपयुक्त थे। जिस भाव-प्रवणता, भावुकता, उच्छ्वास-अभिव्यक्ति की अनिवार्यता इस मंच पर थी और जिस तरह से दर्शक वर्ग इसके प्रभाव में पागल बना रहता था, उसके लिए इन चीजों का गायन अनिवार्य था। इसीलिए पारसी रंगमंच पर गाई गई कुछ विशेष प्रकार की ठुमरियां, दादरे इतने लोकप्रिय हुए कि दर्शकों को बार-बार जन्मांतर-जन्मांतर कहकर गाना ही पड़ता था और दर्शकों का काफी अंश वर्ग इसी संगीत को सुनने के लिए बार-बार टिकट खरीदकर नाटक देखने आता था। मंच से बाहर की दुनिया में भी पारसी थियेटर की बहुत सारी ठुमरियां अधिक प्रचलित हुईं और इनके ग्रामोफोन रिकार्ड बाजार में मंचन से पहले और लोकप्रिय हुए।

यहां संगीत के अन्तर्गत तालों, बंदिशों और बोल के तालों का अत्यधिक महत्त्व था। एक तरह से नाटकों की भावुकता और इसका रोमांटिक तत्त्व गायन के ही माध्यम से प्रकट किया जाता था, परन्तु जैसा कि पहले कहा गया है, इस मंच के संगीत को सुनने वाले ज्यादातर ऐसे लोग थे जिनके संस्कार में शास्त्रीय संगीत ज्यादा बलवान था। और चूंकि इन नाटकों में नाट्यीय तुकान्त

स्थान की भावना ज्यादा प्रबल थी, इसलिए रागों और तालों की शुद्धता पर भी काफी बल दिया जाता था। ध्रुपद हिन्दू संस्कार के बहुत करीब था इसलिए ध्रुपद को आधार बनाकर ऐसा काफी गायन पारसी रंगमंच पर मिलता है, जो एक ओर शास्त्रीय है और दूसरी ओर जिसमें नये प्रयोग किए गए हैं। विशेषकर प्रार्थना-संगीत में ध्रुपद का इस्तेमाल अत्यधिक है।

ध्रुपद के अलावा शृंगार और हास्य नाटक की विशेष परिस्थितियों के अनुकूल ठुमरी है और यहाँ-वहाँ नाटक के दृश्यों में, खासकर के, सोमवती और नाजुक स्थलों की प्रकृति कल्पना थी, वहाँ दैस, पिलू, बागेश्वरी, ललित, मालकौंस आदि को भी नये ढंग से इस्तेमाल किया गया है।

इन सब रागों में ख्याल की गायकी का प्रश्न बिलकुल अलग है और उस संगीत-शैली में उसका आधार भी अलग है। चूँकि अन्य रागों और गायन शैलियों की तुलना में ख्याल-गायकी, स्पष्ट और विस्तार-साध्य है, इसलिए पारसी रंगमंच में ख्याल गायकी किए गए, जो ख्याल की ध्रुपदी और उसके साथ के अलग। ऐसा हुआ। इसलिए ख्याल के अत्यधिक आकर्षक और गान इन दोनों तरीकों को एक-दूसरे ढंग से संगीतकारों ने अपनी सुविधा के लिए इस्तेमाल किया है। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक ख्याल-गायकी केवल पारसी रंगमंच में विकसित हुई, उस भाषा में ख्याल-गायकी का केवल वह रूप ले लिया गया, जो गायन में चमत्कार डालने के लिए आवश्यक लगा। लेकिन एक विशेष परिस्थिति में ख्याल की गायकी एक ओर ढंग से पारसी नाटकों में डाली गई है। जैसे राजा का दरबार है और वहाँ ऐसे राजा, राजकुमार या राजकुमारी का चरित्र बताना है, जहाँ वह खुद गायन में प्रवीण हो अथवा उस शास्त्रीय संगीत सुनने में दिलचस्पी हो। तब ऐसे पात्रों की भूमिका करने वाले अभिनेता अथवा अभिनेत्रियों को पारसी कम्पनी वाले वहाँ ख्याल-गायकी के लिए प्रशिक्षण दिया करते थे और गायन हो जाने पर उन्हें मंच पर ले आते थे। चूँकि ख्याल-गायकी संपूर्ण भारतवर्ष, विशेषकर उत्तर तथा पश्चिमी भारत में अत्यधिक लोकप्रिय थी, इसलिए पारसी रंगमंच के पूर्वकाल तक ख्याल-गायकी को किसी न किसी रूप में स्थान का फैसला कर लिया गया था। आगे चलकर जब सुगम संगीत का प्रयोग शास्त्र-संगीत से अलग होने लगा तब भी हम ऐसे उदाहरण पाते हैं कि नायक अभिनेता किसी राग में गीत गाता हुआ बीच में ख्याल अलाप लेकर, गाने चमत्कार लाने के उद्देश्य से इस्तेमाल कर देता था। लेकिन ऐसे अवसर थे कि चूँकि निश्चित सीमा के भीतर ही समाप्त करना होता था और गायक अभिनेता को अपने बुनियादी राग में वापस आना होता था इसलिए वे कभी-कभी ऐसे चमत्कार पैदा करते थे कि लोग वाह-वाह कर उठते थे और अभिनेता-गायक गायकी के आतंरिक अंगों तरीकों में फिर वापस भी आ जाता था।

प्रभाव

पारसी रंगमंच के संगीत पर मुख्यतया उत्तर भारत के संगीत का, जिसमें शास्त्रीय और लोकसंगीत दोनों समान रूप से शामिल हैं, अत्यधिक प्रभाव पड़ा। इन प्रभाव-स्रोतों को हम क्रमशः इस तरह रेखांकित करते हैं :

1. नौटंकी का संगीत
2. रास का संगीत
3. लावनी गायन का संगीत

नौटंकी का संगीत

स्वांग या नौटंकी उत्तर भारत का एक ऐसा गतिमान लोकनाट्य रहा है जो पारसी रंगमंच के अवतरण से भी पूर्व समूचे उत्तर भारत की जनता का अत्यन्त मनोरंजनकारी संगीत रूप था। इसके गायन में सभी प्रकार के श्रोताओं को आकृष्ट करने की विविध क्षमताएँ हैं और काफी लम्बे समय से समस्त श्रोताओं का इसमें मनोरंजन होता रहा है। उल्लेखनीय बात यह है कि नौटंकी, जिसका एक केन्द्र ब्रज रहा है, वहाँ यह विशुद्ध गायकी-प्रधान है। हमारी ओर हाथरस, कानपुर में जो नौटंकी खेलमाला थी, वह अपनी गायकी और दीपराग आलाप के लिए बहुमोल्लेखनीय है। पारसी थियेटर के संगीत में यह दोनों तत्व समान रूप से आए और रंगमंच आवाज की पारसी शैली के गायकों तथा अभिनेताओं ने समान रूप से ग्रहण किया।

नाटकों-गायकी नौटंकी में प्रयुक्त होने वाला प्रमुख वाद्ययंत्र : ढोलक, सारंगी उसके सहयोगी थे। पारसी थियेटर में नगाड़ा का स्थान बड़े हारमोनियम ने ले लिया तथा सारंगी के स्थान पर क्लारनेट का इस्तेमाल हुआ।

नौटंकी में विविध छन्द प्रयुक्त होते हैं। प्रमुख छन्द थे चौबोल, बहरे-तवील, लावनी, दोहा, सोरठा, कजली, ठुमरी, रेमिया, कवित्त। पारसी थियेटर के गायकों में भी लावनी, दोहा, कवित्त, सोरठा, गजल, ठुमरी इन सभी छन्दों और गायकी का इस्तेमाल व्यापक रूप से हुआ।

रास

नौटंकी के अतिरिक्त रास का संगीत परिवारी उत्तर भारत का एक प्रसिद्ध नृत्य रहा है। यह संगीत और नृत्य-प्रधान लोकनाट्य होने से लोकप्रिय हुआ। धार्मिक निष्ठा उपस्थित होने के नाते इसकी व्यापकता और मानवीय गहराई नौटंकी से भी ज्यादा रही है। इस प्रकार लोकनाट्य के अन्तर्गत आता है, लेकिन रास की मजबूती पहलू शास्त्रीय है। यद्यपि ब्रज के आसपास गाँवों तथा अन्यत्र में रास तरह की रासलीलाएँ होती थीं, विशेषकर जिन्हें गुजरियों के नृत्य की संज्ञा मिली है, वह वस्तुतः रास के

शास्त्रीय उत्थान में मूक रहा है। फिर भी राम की वह परम्परा, जो उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी के तीसरे और चौथे दशक तक बड़ी प्रखरता के साथ शहरों और नगरों में मौजूद थी, और जिसके दर्शक नगर के लोग होते थे और जो रामलीलाओं द्वारा प्रस्तुत किए जाते थे, उसकी प्रकृति निश्चय ही शास्त्रीय थी।

पहले राम में जिन वाद्यों का प्रयोग होता था, उनके नाम हैं—सारंगी, पखावज, किन्नरी, झांझ और मजीरे। इन वाद्यों में सारंगी स्वामी लोग स्वयं बजाते थे, जो प्रायः मण्डलियों के स्वामी होते थे। वाद्यवृंद को सजाकर बैठा जाता था और राम के आरम्भ में ही मंगलाचरण होता था, वह दर्शकों के लिए परम आकर्षण बिन्दु होता था। उसके उपरान्त ध्रुपद में कीर्तन होते थे। इसके अनंतर स्तुति और आरती होती थी, तत्पश्चात् लीलाएं शुरू होती थीं। इस परम्परा का प्रभाव पारसी रंगमंच के प्रायः सभी पौराणिक नाटकों और उनके प्रदर्शनों पर स्पष्ट है। जिस तरह सारंगी वाद्यवृंद के स्वामी बजाते थे और उनका बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान होता था, उसी प्रकार पारसी रंगमंच का हारमोनियम-वादक, जिसको तेरीमास्टर या तेरीमास्टर कहते थे, उसका भी महत्त्वपूर्ण स्थान था। राम के आरम्भ में जैसे मंगलाचरण होता था, ठीक उसी प्रकार से पारसी थियेटर के पौराणिक नाटकों में उसी व्यापक ढंग से मंगलाचरण का अंश जुड़ा होता था। ध्रुपद में कीर्तन अनिवार्य होकर पारसी रंगमंच में ध्रुपद में स्तुति बनकर उपस्थित हुआ। आरती की परम्परा राम से तीसरे पारसी थियेटर के नाटकों में चली आई थी और उसका उतना ही अधिक महत्त्व था, जितना महत्त्व रामलीला में था। मंगलाचरण स्तुति, आरती के बाद जिस तरह रामलीला होती थी, करीब-करीब उसी तरह पारसी थियेटर के पौराणिक नाटक भी होते थे। 'केशव' और राधेश्याम कथावाचक के प्रायः सभी पौराणिक नाटकों में उसी तरह के शास्त्रीय संगीत में मंगलाचरण मिलते हैं। ध्रुपद में स्तुति मिलती है, आरती का तत्त्व मिलता है और उसके पश्चात् मूल नाटक शुरू होता है। समूचे उत्तर भारत और पश्चिमी भारत में रामलीलाएं वर्ष में लगभग आठ माह देश के विभिन्न भागों में चली जाती थीं और अनेक रामलीलाएं समूचे हिन्दी-भाषी क्षेत्रों में धूम-धूमकर कीर्तन दिखाती थीं तथा धन और यश अर्जित करती थीं। जाहिर है, इन राम-मण्डलियों का एक व्यापक दर्शक समाज था। उस व्यापक दर्शक समाज को पारसी थियेटर की व्यावसायिक मण्डलियों ने अपने में खींचने और आकृष्ट करने के लिए रामभक्त राम के उस संगीत और धर्म-तत्त्व को अपने में समाहित किया।

लावनी गायन

उत्तर भारत के पश्चिमी क्षेत्र में लावनी गायन भी एक अत्यन्त आकर्षक

संगीत परम्परा थी। इसमें
आंगन में मंच को उ
सलाह गायन की
पैदा होता था, वह जब
गायकों में प्रतियोगिता
इस गायन में स्वर, ताल,
होता। प्रत्येक गायक प
तक बजाकर वह लोगों
किया जाता पारसी थि
का प्रभाव आया है
जिस तरह से लावनी
में गायन से एवं हारमो
धुन बजाता था। प्रदर्शन
होती थी या ऐसे मुद्दे
गायन, कविता और
दर्शक वर्ग उसी तरह आ

लावनी बाईस मात्रा
छोटी-बड़ी लंबी-छोटी
उसी प्रकार पारसी
अतिरिक्त रस और चमत्
बहरों का इस्तेमाल
छन्द होते थे उसी तरह
ख्याल-टप्पा में अधिक

पश्चिमी भारत की
के लिए अति विस्तृत
पत्रियों और मंडली-मण्ड

पारसी थि

पारसी थियेटर में

और इसी तीनों
संगीत था। इस पारसी
परम्परा और इन तीनों
में मिलते हैं। यही

संगीत-परम्परा थी। इसके रचयिता जनता के कवि होते थे और जनता के खुले आँगन में चंग की उन्मुक्त लय के साथ जब लावनी गायन-वादन (जिसे कलाल गायन भी कहा जाता है) गाया या तो दर्शकों के लिए जो परमानंद पैदा होता था, वह अवर्णनीय है। विशेषकर जब कहीं दोनों पक्षों में लावनी-दंगलों में कड़केबाजी होती या ठेके लड़ते, तब लोग आनन्द-विभोर हो जाते। इस गायन में स्वर, ताल, छंद आदि के स्वरूप में कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता : प्रत्येक गायक पर अपने-अपने वश होते, जिसे गायन से पूर्व पूरा समय तक बजाकर वह लोगों का ध्यान आकृष्ट करता। तत्पश्चात् गायन प्रस्तुत किया जाता। पारसी थियेटर के संगीत गायक ने इस लावनी (कलाल) गायन का प्रयोग स्वतः है। यहाँ चंग के स्थान को हारमोनियम ने ले लिया था और जिस तरह से लावनी गायन से पूर्व चंग बजता था, उसी प्रकार पारसी थियेटर में गायन से पूर्व हारमोनियम-वादक हारमोनियम पर कोई लोक या शास्त्रीय धुन बजाता था। प्रदर्शन के पक्ष में जिस तरह लावनी गायकों में प्रतियोगिता होती थी या ठेके लड़ते थे, उसी तरह पारसी थियेटर के संगीतकार भी गजल गायन, कवित्त और पद गायन में भी कड़केबाजी और ठेके लड़ते थे और दर्शक इसी तरह आनन्द विभोर हो जाता था।

लावनी वाद्य मात्रिक छन्द है पर लावनी में आंतरिक रस लाने के लिए छोटी-बड़ी लंबाई, त्रिकली-चहर आदि की लावनी-गायन प्रस्तुत करते थे। उसी प्रकार पारसी रंगमंच का संगीतकार भी ग्राम गायन के छन्दों में अतिरिक्त रंग और चमत्कार पैदा करने के लिए छोटी-बड़ी लंबाई, त्रिकली-चहरों का खुलकर इस्तेमाल करते थे। जिस प्रकार लावनी में मात्रान्यूनाधिक छन्द होते थे उसी तरह पारसी थियेटर के संगीतकारों और गायकों ने अपने लाल-गायकी में अधिक प्रकार के चौकों का इस्तेमाल किया।

पश्चिमी भारत और दक्षिणी भारत अपनी लावनी, रंगियों, भजनों, मल्हारों के लिए अति विख्यात था। पारसी थियेटर के संगीत ने खुलकर इन लावनी, रंगियों और भजनों मल्हारों के इस्तेमाल दिए।

पारसी थियेटर के संगीत में विविध प्रयोग

पारसी थियेटर में संगीत के तीनों रूपों का यह अभिप्राय था :

मं अर्थात् मन
गी अर्थात् गीत
त अर्थात् ताल

और इन्हीं तीनों की संगीत और शुद्ध शास्त्रीय ही पारसी थियेटर का संगीत था। शुद्ध शास्त्रीय और लोकसंगीत के अतिरिक्त उत्तर-भारत की संगीत-परम्परा और इन तीनों के संयोग से भी अनेक प्रयोग पारसी थियेटर के संगीत में मिलते हैं। यही नहीं, कभी-कभी विदेशी संगीत के तत्वों का भी इन लोगों

ने प्रयोग किया था : पारसी, गुजराती, अरबी धुनें भी इन लोगों ने बहुत ग्रहण की थीं। पश्चिमी (अंग्रेजी) गानों की धुनें भी सामाजिक नाटकों में मिल जाती थीं।

शुद्ध शास्त्रीय

पहले कहा जा चुका है कि उर्दू-भाषा के अनेक प्रसिद्ध शुद्ध शास्त्रीय संगीत थे और यह परम्परा। पारसी थिएटर के सामाजिक नाटकों में भी शुद्धता को लेकर आई थी लेकिन उस शुद्ध शास्त्रीयता में अन्तरा के अन्तर्गत ये लोग बार-बार प्रयोग करते थे और शुद्ध शास्त्रीय के अन्तर्गत चमत्कार उपस्थित करते थे। उदाहरण के लिए :

> सुन रिझाना लोग के ना के
> पहन में मेरे बैठ तू अपने,
> लुग हुई तुलस मशकिल सारी
> अब है तो दया परों की जारी।

यह गीत शुद्ध उत्तर तथा की परम्परा का है। इस गीत का राग शहाना कानड़ा है और पाँच मात्राओं के ताल का। आज पारसी थिएटर के संगीतकारों ने मनमानापन दिया था। इन गानों में शेरों की तरतीब के हिसाब से टेक जोड़े जाते थे अर्थात् टेक अन्तरा में इस तरह गाए जाते थे कि उनके गानों में अन्तर उपस्थित किया जाता था, लेकिन सम पर आकर फिर वही शहाना कानड़ा राग उपस्थित हो जाता था। कभी-कभी यह गीत छह आठ मात्राओं का बनाकर गाया जाता था और एक संगीत-निर्देशक ने इसे बनाकर दस मात्राओं में गवाया था। ध्यान रहे, ये लोग मात्राओं के आकार को बढ़ाकर ही गाते थे और इस तरह मात्राएँ बढ़ जाती थीं।

लेकिन इन संगीतकारों को इतने ही प्रयोग से सन्तोष नहीं मिलता। ये लोग अक्सर एक राग को दूसरे राग में मिश्र करके भी संगीत रचना करते थे। उदाहरण के लिए :

> अरी जोगिया दर्द की मुंडमाला
> सुना अपना गाना मुझे भी जरा
> सुना भैरवी या सना जोगिया

प्रकट है, यह तराना राग जोगिया का है, पर गाने के बीच में चूंकि भैरवी शब्द आ गया है तो चमत्कार ये लोग, राग जोगिया में भी भैरवी राग को मिला देते थे और इस तरह ये लोग जोगिया से अचानक भैरवी पर उतर जाते थे और भैरवी से फिर जोगिया में चले जाते थे और इसके गायन में एक विचित्र रंग भी आता था, जहाँ ये जोगिया और भैरवी को मिश्र देना चाहते थे। संगीत के क्षेत्र में यही एक विचित्र था, जहाँ दर्शक वर्ग चमत्कृत होकर चमत्कार-चमत्कारों की आवाजें बुलन्द करने लगते थे।

शुद्ध लोकसंगीत में प्रयोग

इसी तरह से लोग शुद्ध लोकसंगीत में भी अन्य तत्वों को मिलाकर उसे मिश्र बनाने के पक्ष में ज्यादा रहते थे।

उदाहरण के लिए :

> छल्ला हमारा याद रखना
> [illegible] याद रखना
> याद रखना जानी पास रखना

यह चार मात्राओं का कहरवा ताल है और जब यह मंच पर गाया जाता था तो इसकी अन्तरा में विविध तेज या जाबरी भी डाल दी जाती थी और इस मिलावट में छः मात्राओं का दादरा ताल उभर जाता था। ऐसे एक अन्तरा का उदाहरण है :

> तुझको छल्ला मैं निशानी में दिए जाती हूं
> दिल से आते मैं तेरा दाग लिए जाती हूं।

मूल राग और मूल ताल के साथ अन्तरा के इस ताल का मिश्रण वस्तुतः पारसी थियेटर की एक बहुत बड़ी पहचान थी और उसमें उस काल की दर्शक वर्ग कुर्बान हो जाता था।

विदेशी प्रभाव

विदेशी प्रभाव के अन्तर्गत यूनानी और अरबी धुनें अक्सर ली जाती थीं। उदाहरण :

> ईश्वर से [illegible] जोड़ाओ [illegible]
> ये [illegible] से [illegible] [illegible]

इस गाने की धुन विशुद्ध यूनानी धुन है और ऐसी धुनें प्रायः तुरंत के साथ गाई जाती थीं तथा उसके गायन में जो आवश्यकतानुसार प्रयोग किया जाता था, वह ऐसा प्रयोग था जो यूनानी और भारतीय संगीत के दो विभिन्न और विरोधी धुनियों का संगम था। उदाहरण के लिए यूनानी संगीत में सीधीन धुनियां हैं और भारतीय संगीत में वादन धुनियां। यद्यपि ऐसी संगीतों में ऐसा नहीं होता है, लेकिन धुनियों में इस विभिन्नता को ये लोग परस्पर मिलाने के और गायन में धुनियों को [illegible] पैदा करते थे।

अंग्रेजी गानों और धुनों को भी कहीं-कहीं सामाजिक नाटकों में सम्मिलित [illegible] किया था। अंग्रेजी धुनों के भीतर अंग्रेजी तथा और हिन्दी गाने के बोलों को मिलाकर ये लोग ऐसा [illegible] पैदा करते थे, जो उस काल के श्रोता और दर्शक समाज के लिए बिल्कुल नया था।

उदाहरण के लिए :

> [illegible]

[illegible] !
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

स्पष्ट है इस गाने और इसकी धुन में एक मजेदार की दौड़, गति और रवानी है। इस तीव्र गति का संगीत भारतीय संगीत के तुलनात्मक से भी बिल्कुल अलग है। यह पारसी थियेटर के प्रसिद्ध नाटक 'शीरीं फरहाद' का गाना है और इसके संगीत पर अंग्रेजी धुन की गति का अद्भुत प्रभाव है।

अरबी संगीत

अरबी संगीत का नीचे का उदाहरण एक विशेष उदाहरण है, जो अरबी बंदिश में ही नया रखी है, बल्कि जिसके अन्तर्गत गुप्त की तबियत भी ज्यादा मुखरित हुई है।

उदाहरण :

है [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
है [illegible]

इन बाहरी प्रभावों और तत्वों के मध्य एक दूसरा तत्व, जो सबसे अधिक उल्लेखनीय है, वह यह है कि पारसी थियेटर ने अपने संगीत में शास्त्रीय और लोक संगीत-दोनों में तथा भारत के विभिन्न अंचलों से चुनकर लोगों और गीत स्वीकार किए थे। उदाहरण के लिए राजस्थानी, गुजराती, पंजाबी, बंगाली, उत्तर प्रदेशीय, बिहारी और बुन्देलखण्डी लोगों और गीतों को तथा धुनों को सहकर यहाँ लिया था।

राजस्थानी

1. [illegible] बीकानेर में
[illegible]

[illegible]

2. [illegible]

पंजाबी

1. [illegible]
2. [illegible]

बंगाली

[illegible]

यू० पी०

1. [illegible]
2. [illegible]

[illegible] इस गाने को पारसी थियेटर में [illegible] लड़कियां नाच-नाचकर गाती थीं। [illegible] उच्चारण में जो नवीनता पैदा होती थी, उसे सुनकर [illegible] नायिकाएं बजाने के लिए मजबूर होते थे।

जैसे [illegible] इस प्रकार कहती थी

छोटी से बोली होटले, [illegible]।

पारसी थियेटर में गीत-गानों तथा नृत्य के प्रकार

पारसी थियेटर के नाटकों में विभिन्न प्रकार के गीत और गाने [illegible] के इस्तेमाल किए हैं और जिस प्रकार से वे प्रदर्शन में [illegible] थे तथा उन गानों और नृत्यों की [illegible] उनके नाटक-प्रदर्शन में सिद्ध होती थी, उन्हें हम निम्नलिखित प्रकारों में बांटकर देख सकते हैं :

1. वंदना, मंगलाचरण या सलाम और नान्दी के गाने और नृत्य
2. चरित्र-गान और नृत्य

3. गम्भीर 'नस्ल नोट' के गाने और नृत्य
4. 'नस्ल नोट' के कौमिक गाने और नृत्य
5. गोदी डान्स के गाने और नृत्य
6. समूह नृत्य के गाने
7. फड़केवाली या ऐसे लड़ने के गाने और नृत्य
8. उपदेश और संदेश के गीत।

गानों तथा नृत्यों के और भी प्रकार पारसी थियेटर के नाटकों में ढूंढे जा सकते हैं लेकिन उन प्रकारों का कोई विशेष प्रतिनिधित्व इसके साहित्य में नहीं मिलता। जितने प्रकार के गीत प्रतिनिधि रूप में इस नाट्य-साहित्य में उपलब्ध थे और जितने की रंगमंचीय उपयोगिता पारसी रंगमंच पर सिद्ध हो चुकी थी, वे इतने ही प्रकार के हैं। इन गीत-प्रकारों में वन्दना से लेकर उपदेश तक जितने भी प्रकार के गीत-गानों और नृत्यों की रचना उस काल के नाटककार अपने नाटकों में करते थे, उनकी उपयोगिता इतनी अधिक थी कि इनके आधार पर अथवा इन्हींके क्रमानुसार नाटक की संरचना की जाती थी। नाटक के आरंभ में प्रथम अंक में मंगलाचरण, वंदना, सलाम और नादी के गीत और नृत्य जितने महत्त्वपूर्ण थे, उतने ही महत्त्वपूर्ण अन्य सभी नृत्य और गीत हुआ करते थे। बहुत सारे नाटक तो उन्हीं गीतों-नृत्यों के आधार पर, महीनों चलते थे और दर्शक उन्हीं गीतों को सुनने तथा नृत्य देखने के लिए बार-बार रंगशाला में आते थे। जब कोई कम्पनी किसी शहर में आती थी और उसके गीत जिस तरह से दर्शकों को प्रभावित करते थे, उसका उदाहरण यह है कि वहां लोग महीनों मोहल्लों में उन्हीं गानों को गुनगुनाते रहते थे तथा उन गानों से उनका ऐसा मानसिक संबंध जुड़ता था कि वे अपने दैनिक जीवन में भी उन गीत-गानों का व्यवहार करने लगते। ऐसा भी सुना जाता है कि जिन कम्पनियों के प्रदर्शनों में अच्छे गाने अर्थात् दर्शकों के दिल छोड़ने वाले गाने नहीं होते थे, उनके सभी गाने बदनाम हो जाते थे और बहुत कम दर्शक उनके नाटकों को देखने जाते थे।

पुस्तक के आरम्भ में ही जैसा कहा गया है, बहुत पारसी थियेटर में इस बात के प्रयत्न समाज की मानसिक अवस्था को बदलने का सम्बन्ध था और उस मानसिकता को प्रकट करने अथवा इसके नाटकों की जोड़ने के बीच में जिस तरह से अदृश्य धागे, मानसिक तार थे, और नाटकीय तुकों की आवश्यकता थी ठीक उसी तरह इन गीतों तथा नृत्यों के माध्यम से इस काल के दर्शक को मनोरंजन करने की चेष्टा जाती थी। इस गीतों की प्रक्रिया में नाटककार, प्रयोग का रूप अत्यधिक उज्ज्वल था। इन गानों और नृत्यों का वे लोग संगीत के माध्यम से मंच पर करते थे। जिसमें वन्दना और मंगलाचरण के गीतों में संगीतकार अतरिक्त, भी प्रयोग और उपयोग अलग थे कि नाटक शुरू से ही नाटक के प्रदर्शन में आकर्षण की तरह और [illegible] नाटक

के प्रदर्शन में अपना

वंदना, मंगलाचर

जिस प्रकार से
में ली जाती थी,
हाथ-पैर के नृत्य-अ
लिए यदि पौराणि
किया जाता था,
के गीत अवश्य
से सम्बन्धित है
था। सामाजिक ना
विशेषकर राधेश्याम
जिन नाटकों के, ब
की भावना को प्रक

ऐसे ही मंगला
मुस्लिम दोनों एक
भी की जाती थी
देखने आने के
होता था ताकि
लगे और उनके
मानसिकता
गये थे।

उदाहरण के लि
प्रसिद्ध प्रार्थना के

[illegible]

[illegible]

[illegible]

के प्रदर्शन से अपना भावात्मक सम्बन्ध जोड़ते थे।

वंदना, मंगलाचरण, सलाम और नांदी

जिस प्रकार के नाटक होते थे अर्थात् जिस प्रकार की विषयवस्तु नाटक में ली जाती थी, उसीके अनुसार नाटक में प्रारम्भ का गाना होता था तथा हाथ-पैर के नृत्य-अभिनय से उस भाव की अवतारणा होती थी। उदाहरण के लिए यदि पौराणिक नाटक है तो उसमें नांदी का प्रयोग गायन के रूप में किया जाता था, और ऐतिहासिक नाटक है, तो उसमें वंदना और मंगलाचरण के गीत अवश्य इस्तेमाल किए जाते थे और यदि नाटक मुसलमानी संस्कृति से सम्बन्धित है तो उसमें प्रारम्भ का गीत सलाम के नाम से गाया जाता था। सामाजिक नाटकों में भी वंदना और मंगलाचरण अवश्य होता था। विशेषकर राधेश्याम, पंडित नारायणप्रसाद 'बेताब' तथा आगा हश्र के सामाजिक नाटकों में, जहां-जहां उन्हें अपने नाटक में कोई आदर्श या हिन्दू-मुसलमान की भावना को प्रकट करना होता था।

ऐसे भी मंगलाचरण और वंदनाएं मिलती हैं, जहां एक ही साथ हिन्दू, मुस्लिम दोनों प्रकार की प्रवृत्तियों की वंदना की जाती थी। यह इसलिए की जाती थी, क्योंकि हिन्दू-मुस्लिम दोनों प्रकार के दर्शक नाटक देखने आते थे और दोनों में एक धार्मिक भावना पैदा करना आवश्यक होता था ताकि हिन्दू मुस्लिम दर्शक वर्ग की मानसिकता को कहीं भी चोट न लगे और उनकी मानसिकता में बराबर एकरूपता बनी रहे। वस्तुतः दर्शक की मानसिकता में नांदी का संयुक्त होना पारसी थिएटर के दर्शकों की बुनियादी बात थी।

उदाहरण के लिए नीचे एक वन्दना उद्धृत है, जो पारसी नाटक की एक प्रसिद्ध प्रार्थना के रूप में अपने काल में विख्यात थी।

> [illegible] मल्हार [illegible] —[illegible]
> [illegible] हम बार [illegible] मुसलमानों।

इससे है कि इसमें हिन्दू-मुसलमान दर्शक वर्ग की मनोवृत्ति को ध्यान में रखा गया है। इसमें भी मध्यकालीन प्रार्थना के मानसिक स्तर पर प्रयोग। यह प्रार्थना गान केवल एक है और यह लोकप्रिय नाटकों के विषय में नहीं है। लेकिन अक्सर यह प्रार्थना पारसी नाटकों के शुरू में भी गाई जाती थी। ध्यान रहे, यह कि शिल्पगत शुद्धता नहीं रक्खी जा सकती, इसलिए भी [illegible] कि [illegible] के [illegible] [illegible] में [illegible] है। मंचीय नाटकों और पारसी नाटकों में बहुत अन्तर है, लेकिन उस काल [illegible] [illegible] भी [illegible] [illegible] था और यह [illegible] [illegible] था और यह [illegible] [illegible] था कि [illegible]

मात्राओं में भी ला लेता है और सोलह मात्राओं में भी ला लेता है, फिर भी दोनों के लय तन्मन रूप में मिलते हैं।

ऐसे नाटकों में, जिनकी विषयवस्तु हिन्दू-संस्कृति से सम्बन्धित होती थी, उनकी प्रार्थनाएं हिन्दू-संस्कृति को ध्यान में रखकर गाई जाती थीं। जैसे निम्नलिखित उदाहरण :

सरस सुन्दर श्याम रूप सिंधु ललाम।
बिजुरिया चमकन गाजन शुभ नाम।

यह प्रार्थना राग जलधर केदारा में, इस मात्राओं के ठेके, अपताल में बंधा हुआ है। इस रुबाई गद को समान लय में ये लोग गाते थे, लेकिन जब उनकी अन्तराओं पर आते थे तो इसकी लय में वे लोग चमत्कार पैदा करने के लिए बढ़ौती करते लगते थे। कहीं लय को दुगुनी करते थे और कहीं समान लय के आधे पर आकर फिर समान स्थाई पर पहुंच जाते थे। कहीं-कहीं बराबर लय में अंतरे को गा देते थे और कहीं-कहीं समान लय में अन्तरा और स्थाई दोनों को गा देते थे।

कुछ प्रार्थनाएं ऐसी राग में बंधी होती थीं, जिनके ठेके को बहुत मुश्किल होते थे। उदाहरण के लिए राग अठिहार और ठुमरी। इसे मात्रा की सवारी पर चलकर ले जाना और मुश्किल था :

बिनती मुझ लीजे प्रभु हमारी
तुम बिन कोई नहीं अपना
मैं कारो कहूँ मन की बिथा री ...

कुछ प्रार्थनाएं तो ऐसी थीं, जिनकी अन्तराएं ठेठ लय से मुक्त होकर तीसरे अंतरे तक पहुंचते पहुंचते चौगुनी लय में बांध दी जाती थीं, जैसे :

बिनती सुन लीजे प्रभु हमारी...

इस स्थाई का पहला अन्तरा ठेठ लय में, अर्थात् यह इस तरह गाया जाता था कि सोलह मात्राओं में चौदह मात्राओं को समाया जा सके।
उदाहरण के लिए :

श्री ब्रह्म त्वं शैव त्वं अहं कमलादि पवित्रपावन त्वं
नमः सत्यगुणत्रयु-सुन्दरम्।

और दूसरे अंतरे में तिगुनी लय में इस अंतरे को इस तरह गाया जाता, कि सोलह मात्राओं में अट्ठाईस मात्राओं की बंदिश आ जाए। उदाहरण :

श्रद्धा भक्ति विज्ञान वाणी ज्ञानी चारों फिर दास।

इन मंगलाचरण और सलामी के गीतों को अभिनेता और अभिनेत्रियां अक्सर नृत्य करते करते प्रस्तुत करते थे। इन नृत्यों में बराबर बल गायन-वर्ग पर था, फिर भी गीतों को भावपूर्ण बनाने के लिए कलाकार प्रायः नृत्य के अभिनय-वर्ग का सहारा लेते थे।

मालाचरण और स्तुति के गाने विशेषकर पौराणिक नाटकों में उन्हीं

रागों में बांधे जाते थे जो शिव रथ के अन्तर्गत आते हैं, जैसे ध्रुपद और भैरव। 'लालित्य' द्वारा लिखित प्रसिद्ध नाटक 'मन्त्र हरिश्चन्द्र' की स्तुति उदाहरण के रूप में स्मरण की जाती है :

जय जय इन्द्रामनन्दिनी जानी, जय सुरपति रानी इन्द्रानी।
रम्भा रम्भानी आमरजानी रानी गालव मनिमानी ॥ जय०
सुरजन पद सेवी, सुखदानी, दुरजन मदभंजी, दुखहानी।
भगवती भवानी, ध्यानि, गाती तुमहर गुनखानी।
तोरी बुलवानी, कासी धानी, रंभा, मेनका पटरानी। जय०

और नारायणप्रसाद 'बेताब' के प्रसिद्ध नाटक 'महाभारत' का सूत्रधार और नटी-नटी की सामूहिक ईश्वरोपासना :

प्रथम 'ओ३म्' करो उच्चार
जो है आनन्द रूप, मन, चित, नित, निर्विकार। प्रथम०
विश्व सकल नाटक सम, जीव हैं सब नाट्यकार।
रूप कोऊ कैसे ताहि अलग रहत सूत्रधार। प्रथम०
परदे में परख केर सब क्रिया सब हेतु सब को।
गिन गिन कर निग दिन कारबार देखभाल गर। प्रथम०
ओ३म् शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

यह प्रवृत्ति ऐतिहासिक और पौराणिक नाटकों के मंगलाचरण तक ही सीमित नहीं थी, बल्कि आगा हश्र काश्मीरी के प्रसिद्ध नाटक 'आँख का नशा' में भी सहेलियों का पहला गाना इसी सुर-राग में बंधा हुआ है :

मोहे गिरधर भवसागर से करो उधार है जग के दुख हर्ता,
सुखराशी दुखनाशी, तुमरी दया के मध्य नर अभिलाषी।
धारम्वार संसार बरनशीम हैं करता जो सुख नित प्रकाश,
प्रभुताप का आधार मनी न लखे जड़ही मैंने लिखी वेदन शुभ अपार ॥

राधेश्याम ने अपने प्रसिद्ध नाटक 'वीर अभिमन्यु' में मंगलाचरण को नई बंदिशों में बांधा है। 'वीर अभिमन्यु' के प्रारम्भ में जो नट-नटी मिलकर मंगलाचरण करते हैं, वह राग केदारा में बंधा है। साथ ही इसमें जो अंतरे के लिए बीच-बीच में दो पंक्तियां आती हैं, उन्हें तान के रूप में इस्तेमाल किया है। इस तान को एक कंठ से गाया जाता था और सम पर आकर फिर उसी केदारा राग में इसका विलय कर दिया जाता था। आगे दूसरे अंतरे में छन्द को बदल दिया गया है और नटी के मुख से सीधे दोहा गवाया गया है और इस दोहा-गायन के बाद अलाप लेकर फिर उसी केदारा राग में स्वर मिला देते हैं। इस विशेष मंगलाचरण का उदाहरण नीचे है :

जय गणनायक, गणपते, जय गजवदन गणेश।
जय गौरीपति, जगपति, मंगलकरन महेश।

जय जगदीश दयानिधे, विश्वम्भर अखिलेश ।
जय गुरुदेव कृपानन्द, इष्टदेव हृदयेश ॥

उक्त मंगलाचरण का जहाँ अन्त हुआ है, वहाँ मिश्र काफी में निम्नलिखित गीत मंगलाचरण के आगे तथा उपदेश के रूप में प्रस्तुत किया गया है :

भारत-वीरों की याद में यह गाना भी रोना है ।
पानी ही नहीं है गात्र व आँखों से मुँह धोना है ॥
हुए धर्मवान् धनवान, इसी भारत में,
और बड़े-बड़े विद्वान्, इसी भारत में,
थी बलवानों की खान, इसी भारत में,
था सबसे ऊँचा ज्ञान, इसी भारत में,
अब उन्हीं की हम सन्तान, हुए अज्ञान,
मिटा सब मान, गई सब शान,
हाय ! आलस्य और उन्माद में सब खोया और खोना है ॥
यह गाना भी रोना है ।

मंगलाचरण का यह क्रम आगे के दृश्यों में भी दिखाई पड़ता है । वीर अभिमन्यु के पहले अंक के पहले दृश्य में रथ पर अर्जुन बैठे हुए हैं । भगवान श्रीकृष्ण रथ हाँक रहे हैं और श्रीकृष्ण राग यमनेश्वरी में निम्नलिखित गीत गाते हैं :

हम भक्तन के, भक्त हमारे ।
अर्जुन, सुनो प्रतिज्ञा हमरी, यह प्रण टरै न टारे ।
जब-जब भीर परे भक्तन पर तब-तब धरत सहायी ।
भक्त के काज पीत-पाहन तज, नंगे पाँवन धायो ॥
जब-जब भीर पड़ी भक्तन पर, तब-तब निकटो चेरो ।
देख विचार, भक्त के कारण— रथ हाँकत हूँ तेरो ॥

इस प्रकार मंगलाचरण, स्तुति और नसीहत के गायन से नाटककार जहाँ एक ओर शुद्ध शास्त्रीय रागों, मिश्र रागों में बँधे हुए गीतों के प्रयोग करते थे, वहाँ इन गीतों के माध्यम से वे लोग नाटक के मूल उद्देश्य और उसकी प्रगति का भी संकेत करते थे ।

चरित्र-गान और नृत्य

चरित्र-गान वहाँ से शुरू होता है, जहाँ नाटक उस बिन्दु पर पहुँच जाता है, जब चरित्र के भीतर अन्तर्द्वन्द्व और संघर्षों के घात-प्रतिघात प्रबल होते हैं । चरित्र अपनी मानसिक अवस्था और अन्तर्द्वन्द्व को प्रकट करने के लिए ऐसे हृदयोद्गार-भरे गीत नाटक में गाता है, जिससे हम उसके भीतर चलते हुए संघर्षों और कशमकशों से परिचय स्थापित कर सकें । ये चरित्र-गान मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं : । नाटककार के रूप में और 2. किसी अन्य चरित्र के

साक्षात्कार होने पर चरित्र का आत्मोद्गार।

ऐसे चरित्र-गायनों में पारसी थियेटर के पूर्वार्द्ध युग में (1870 से 1940) धनाधरी, मर्सिया, कुंडलिया, कवित्त आदि ख़ासा पाए जाते हैं, लेकिन आगे उत्तरार्द्ध में, 'बेताब' और राधेश्याम ने ऐसे हृदयोद्गार मुक्त गानों में बंधे हुए लीकों में अभिव्यक्त किए। आगा हश्र और 'बेताब' के नाटकों में यह चरित्र-गान ठुमरी के रूप में ख़ासा पाए जाते हैं। लेकिन इससे पूर्व के नाटकों में आगा हश्र ने भी चरित्र-गानों के रूप में प्रायः गीतों को ही उपयोग किया है। 'पालिव' के नाटक 'मन्य हरिश्चन्द्र' का यह चरित्र-गान उल्लेखनीय है :

मेरे गुलशन का अगर कोई मसर काम आये।
इससे बढ़ कर है, वह आपके गर काम आये॥ मे० —
आज है कल नहीं, यह दौलते-दुनिया क्या है।
यही बेहतर है कि, हक के मेरा सर काम आये॥ मे०—
खाक और मांस भी काम आते हैं हैवानों के।
हैफ, इन्सान न इन्सान के गर काम आये॥ मे०—
रूप दिखलाए मैं कभी आपके हटने के नहीं।
काश की शोक में मेरा जो एक सर काम आये॥ मे०—

लेकिन नारायणप्रसाद 'बेताब' के महाभारत में द्रौपदी अपने चरित्र को प्रकट करने के लिए यह छन्द इस्तेमाल करती है :

चिकन कमल चाल भाल नाहीं, हो हो हो हो हो हो इन्के
मदन रहे जगदीश नागे हो हो हो हो हो हो गत है,
गोवर्धन धार नखी अब कहकर खून भरी
देखो मर्दी लिख कपत मोहन की दौलती,
बन-बन कुर्बान चले नंदलाल हो हो हो हो हो हो गत है।

पर यह भी ध्यान रहे कि सर्मेया, धनाधरी और कवित्त के अलावा 'बेताब' और राधेश्याम जैसे नाटककार चरित्रों की मानसिक अवस्था को चित्रित करने के लिए गानों का भी इस्तेमाल करते थे।

'बेताब' और राधेश्याम ने चरित्रों के अधिक चमत्कार पैदा करने के लिए एक प्रयोग यह भी किया है कि दो चरित्रों में परस्पर सवाल-जवाब होते हैं और उनसे एक संघर्ष पैदा होता है, और नृत्य का पुट होने से इसमें एक जीवंतता पैदा की जाती है।

कृ० — गोरी इतनी चुनरिया ने मन बस कीन्हीं।
मोरी बीच के ईंगुरिया मोरे बाँध लीन्हीं, गोरी०॥
द्रौ० — गिनती के है यह जो दस तागे।
आज बढ़ जो सत्य है लागे॥
कृ० — आज और लागे धर्म महत्व बनन।
बलमलजालन कुछ भी नहीं इनके आगे॥ गोरी०॥

आगा हश्र ने चरित्र-गान के अंतर्गत स्वगत गाने सबसे ज्यादा इस्तेमाल किए हैं और यह भी उल्लेखनीय है कि इन स्वगत गाने में स्वगत कथन की शैली ज्यादा उजागर है। 'खुबसूरत बला' में ताहिरा, दूसरे अंक के तीसरे सीन में स्वगत कथन के रूप में बार-बार खुद से कहती हुई :

रातें गईं निगाहे-बद की इशरत के दिन गए।
दो काले-शब-फिराक ये तो वह भी छिन गए।।

पारसी थिएटर के पूर्वार्द्ध में स्वगत गानों की परम्परा ज्यादा थी, लेकिन उत्तरार्द्ध में जब आगा हश्र जैसे नाटककार अवतरित हुए तो कहीं स्वगत गान या चरित्र-गान के स्थान पर सीधे संवादों में ही प्रयोग अधिक किए। किन्तु जहाँ भावनाओं का उतार अधिक था, वहाँ उन्होंने चुभते हुए शेरों का इस्तेमाल अधिक किया है। 'रुस्तम व सोहराब' में तेते नारसीय शेरों में सोहराब और रुस्तम के चरित्र पर उचित प्रकाश पड़ता है और उनके चरित्रों में जो साधारणीकरण और प्रतीति दर्शकों को होती है, वह अत्यधिक उल्लेखनीय है।

चरित्र-गान के कई प्रसिद्ध गीत राधेश्याम के 'वीर अभिमन्यु' में भी मिलते हैं। दूसरे अंक के तीसरे सीन में जैसे उत्तरा का मिश्र कल्याण में निम्नलिखित गाना :

हरी हरिए अब तो सन्ताप।
पापी, दीन, पतीन, दुखी मन, जाने न पुण्य-जाप।
सुख में तुम्हें बिसार देत है, दुख में करे विलाप।
गिरे आपके गुण-गायन से, जन्म-जन्म के पाप।
'राधेश्याम' दशा दीनों की, जान रहे सब आप।।

चरित्र-गायन में कहीं-कहीं हम यह भी प्रवृत्ति देखते हैं कि प्रमुख पात्रों के मुख से ऐसे भी गीत गवाए जाते हैं, जो उस पात्र के चरित्र के ऊपर कोई प्रकाश नहीं डालते, बल्कि उन गीतों का उद्देश्य दर्शकों को संगीत का आनन्द देना होता था—जैसे 'वीर अभिमन्यु' नाटक में राजा बहादुर और सुन्दरी के निम्नलिखित गाने, जो कहरवा ताल में उन दिनों गाए जाते थे और जिनकी बड़ी ही प्रसिद्धि थी :

गारी दूंगी लाखन में बांके सैंया।
अब तो मैं मानूं नहीं रार करूंगी,
बली सी मारी मोरे, बालम मैं।

लेकिन कहीं-कहीं ऐसे गीत का भी प्रचलन था जिसके गायन से चरित्र की अपेक्षा संगीत का आनन्द देना प्रमुख उद्देश्य होता था, जैसे 'वीर अभिमन्यु' में उत्तरा का वचन कल्याण राग में यह गायन :

मोहि पिया की दुलरिया दिखादो सखी
आए तरसत मैं तो हार गई।।

गम्भीर 'बन्नामोर' के गाने और नृत्य

नमूने पारसी थिएटरकाल में दर्शक बार-बार एक ही नाटक को देखने

जाए अर्थात् उसके मन
महत्त्वपूर्ण शर्त थी।
विशेषकर गायन औ
लोकप्रिय थी। पूरे नाट
जाते थे जिन्हें दर्शक बार
उन गम्भीर गानों को जि
तरजों में यह उत्तरोत्तर
'बन्नामोर' कहलाने के लि
जा रहे हैं :
'बिलाव' के 'महाभार
अभिनय के साथ प्रस्तुत
गान० --कोई
करके
छल
चित
मन
नृप
नज
Sam० --कहे
रमे
जित
गो
म
यह गाना मिश्र क
इराकी चंदिश लोकल
और 'खूबसूरत' क
का नाचते हुए इस गाने
ये
करती
हर एक
कुछ
कुछ
तुम प
हरदम
गुलाम
राधेश्याम के 'वी

जाए अर्थात् उनके मन में 'चन्समोर' की कामना जागी रहे, यह एक बड़ी महत्त्वपूर्ण शर्त थी।

विशेषकर गायन और नृत्य के प्रसंगों पर यह 'चन्समोर' बहुत ज्यादा लोकप्रिय थी। पूरे नाटक में दो-तीन स्थलों पर ऐसे गानों को अवश्य रखे जाते थे जिन्हें दर्शक बार-बार सुनना चाहता था। उल्लेखनीय बात यह है कि उन लम्बोर गानों को जिस तरह से गायक गाता था और जिस तरह से उनकी तरजों में वह उत्तरोत्तर नवीनता और प्राण भरता रहता था, वह दर्शक को 'चन्समोर' कहलाने के लिए जैसे विवश करता था। कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं :

'बेताब' के 'महाभारत' में नलदमयन्ती और रुक्मिणी का यह गाना, जो नृत्य-अभिनय के साथ प्रस्तुत किया जाता था :

रुक्मि०—कोई प्रीत की रीत बता दो नई।
करके जतन मैं तो हार गई॥ कोई०
छलछन्द हैं छैल की नस नस में,
जित खाए हैं झूठी मेरी कसमें।
मन डाल के मोहन के बस में,
मुझ श्याम ने मोरी बिसार दई।
तज मान गुमान वह जन मिले।. कोई०
रुक्मि०—नैनन में यह उनकी बतियाँ,
रसरंग में काटत हैं रतियाँ।
जित श्याम लगावत हैं छतियाँ,
यों ही रात गुजारत कई कई।
मन भाए है जो यह बिधना ने कहीं॥ कोई०

यह गाना मिश्र कल्याण में गाया जाता था लेकिन 'चन्समोर' पाने के लिए इसकी बन्दिश लोकसंगीत के अनुसार की जाती थी।

और 'सूरदास' वाला न पहले अंक के छठे सीन में तन्मीम और सहेलियों का नाचते हुए इस गाने की अदायगी :

ये बादे-बहार आई होने निसार आई।
कलियों ने बुलबुलें छोड़, प्यारी बिसार आई छाई।
हर गुल पै है लाली बुलबुल मतवाली झूमे है डाली॥
फूलों की महक से जिया शाद करो दिलमिल मेरे।
फूलों की कलम चलत पवन हर फूल पै है॥
तुम पर बलिहारी मोतियों वारी वारें जियरवा।
हरवा गले में डारें दोहरा सुन्दरवा पियरवा॥
गुलबन्द तुम पर वारे। हर गुल पै है०

राधेश्याम के 'वीर अभिमन्यु' नाटक में ऐसे ही 'चन्समोर' के लिए प्रसिद्ध

गाने थे, उदाहरण के लिए चौथे दृश्य का रागेश्वरी (रागेश्वरी का एक नया रूप) का यह गीत :

देखो, प्रेम का पंथ निराला।
नैना भरके प्रेम-रस पीवत, भरत न प्याला-पियाला।
[illegible] उठत है महावेग से, जब लागत है ज्वाला।
बैठ जात है बाही छिन, जब अंग का छींटा डाला॥

तथा प्रथम अंक के पांचवें गीत में प्रथम अन्तरा में यह गाना :

मोहि पिया की दृगन्दिया दिखा दो सखी!
बार लगन में [illegible] हार गई॥
[illegible] और [illegible] बरसी रस में,
दो राह भए मोहि दर्शन में॥
नहीं नैन में नीद, न कल घर में,
भई बैरी बिछोह विरहिन में।
[illegible] लगा के उड़ा दो सखी!
मोहि पिया की दृगन्दिया दिखा दो सखी!
[illegible] गाने के बीच 'अंगेजी नहीं
बिन प्यारे के प्यारी रहूंगी नहीं।
जब लों मुख-चन्द्र लखेगी नहीं।
तब लों यह चकोरी छकेगी नहीं।
मेरे चांद को कोई उगा दो सखी।
मोहि पिया की दृगन्दिया दिखा दो सखी॥

'अन्समोर' के कामिक गाने और नृत्य

गंभीर गानों के लिए ही 'अन्समोर' नहीं होती थी, बल्कि उसी क्रम में 'कामिक' गानों की भी 'अन्समोर' होती थी। पारसी थियेटर के नाटकों की संरचना में यह स्पष्ट है कि उसमें मूल कथा के साथ ही साथ एक उपकथा और चलती थी —'कामिक रिलीफ' अथवा मोटे मनोरंजन के लिए। यह मनोरंजन हंसी-मजाक से ज्यादा कुछ नहीं होता था। उसमें ऐसे हास्य-प्रधान गीत भी रखे जाते थे और उनकी गायकी भी इस ढंग से की जाती थी कि उसमें भी 'अन्समोर' का तत्व प्रधान हो जाता था। दर्शक इन गानों को सुनने के लिए बार-बार 'अन्समोर अन्समोर' की आवाज बुलंद करते थे। शुरू-शुरू के नाटकों में ऐसे 'कामिक' गाने परस्पर संवाद के रूप में अवश्य मिलते हैं, जैसे 'पारसिक' के सत्य हरिश्चन्द्र में :

गव—खेलो-कूदो, बेलो-कूदो, आओ भाई, खेलो-कूदो।
गाओ-नाचो मस्ती करो, [illegible] बेलो-कूदो। नेपथ्य
पहिला लड़का—पहले-पहले आँखें फूटीं।

[illegible]

दू० लड़का—[illegible] टूटी।
तीं० लड़का [illegible]-[illegible] माया-कूटी।
सब [illegible] भाई [illegible]-कूटी। [illegible]
चौ० लड़का—आये नहीं [illegible]।
पां० लड़का—आये नहीं [illegible]।

लेकिन बाद के नाटकों में ऐसे गानों की सारी प्रकृति ही बदली मिलती है। प्रायः ऐसे [illegible] गानों के नये-नये रूपों की कल्पना की जाती थी। जैसे आगा हश्र के प्रसिद्ध नाटक 'आँखों का नशा' में एक नाईखाने का दृश्य प्रस्तुत किया गया है—जिसमें नशेबाज नाई पीकर यह गीत गाता है :

नशेबाजों का कोई मन करिये से [illegible]
नाना-भैया नाना भैया [illegible] टाल [illegible]
नशेबाज भी है, नाई भी है, चरस भी, भंग भी
नाचना है मन भी, उड़ना है तरंग भी
[illegible] भी [illegible] भी है [illegible] भी
गोली-गो [illegible] भी है [illegible] का है [illegible]

दूसरी ओर अंग्रेजी भाषा का इस्तेमाल करके हास्य का वातावरण पैदा किया जाता था। उस जमाने में अंग्रेजी भाषा में कोई गाना गाया जाना ही काफी हास्य की उत्पत्ति करने में सहायक होता था और यह अंग्रेजी गाना पारसी थियेटर के अभिनेता जिस तरह गाते थे उससे अतिरिक्त हास्य पैदा होता था। उदाहरण के लिए आगा हश्र के प्रसिद्ध नाटक 'खुबसूरत बला' में नौरतनलाल अपनी मेम शाहद से, जो अंग्रेजीदां है, विदा लेते हुए निम्नलिखित गाना गाता है :

नाउ लेट मी अलोन, दो आई नो यू [illegible]।
आई नो यू [illegible], आई नो यू [illegible]।
नाउ लेट मी अलोन, दो आई नो यू [illegible]।
इमप्रूवेंट [illegible] ओही।
इट [illegible] मी [illegible], [illegible] यू [illegible] मी [illegible]।
यू [illegible] [illegible] यू [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
आई [illegible] [illegible]।
गो यू [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] ओही [illegible]।
[illegible] [illegible], [illegible] [illegible] ओही।।

[illegible] 'लिखित वीर अभिमन्यु' का निम्नलिखित गाना भी उस प्रदर्शन में एक प्रसिद्ध [illegible] का गाना है, जिसमें राजा बहादुर आते धरमसिंह सिपाही के सामने गाता है :

खुशामद हो से आमद है, बड़ी इसलिए खुशामद है।
महाराज ने कहा एक दिन, 'बैंगन' बड़ा बुरा है।
हमने कहा नहीं तो इसका 'बैंगन' नाम पड़ा है।
खुशामद से सब कुछ बना है, बड़ी इसलिए खुशामद है
महाराज कुछ देर में बोले, 'बैंगन' तो अच्छा है,
हमने शाह पाक दिया तभी तो मिर्च पर पुकुर धरा है
खुशामद से हलवा बना है बड़ी इसलिए खुशामद है।
स्वामी दिन को रात कहे, तो हम तारे चमका दें,
स्वामी कहें रात को दिन तो हम सूरज दिखला दें।

एकल नृत्य (सोलो डांस) और समूह-नृत्य तथा गाने

एकल नृत्य और समूह नृत्य के पाठों से पारसी रंगमंच के नाटक भरे पड़े हैं। ये गीत नाटकों में प्रायः ऐसे अवसरों पर गाए गए हैं, जहाँ कोई चरित्र अपनी या किसी प्रभावपूर्ण बनाने के लिए दूसरे चरित्र के सामने नाच-नाचकर विभिन्न प्रकार के भावों को अभिनय करके गीत को गाता है। इस प्रसंग में मुख्यतः स्त्री पात्रों के ही उदाहरण ज्यादा मिलते हैं। 'वीर अभिमन्यु' में स्थान-स्थान पर उत्तरा का अभिमन्यु के सामने नाचकर गीतों के द्वारा मन के भावों को प्रकट करना और दूसरी ओर कार्मिक दृश्य में राजा के सामने सुन्दरी का गीत गा-गाकर नाचना। इन गीतों में जिन राग-तालों को बार-बार उल्लेख किया गया है, उनके नाम हैं—खेमटा, कहरवा और गीत। प्रायः यह भी देखा जाता है कि नृत्य करके जो गाना गाया जाता है, उसमें गीत की पंक्तियों और शब्दों में जो भाव छिपे रहते हैं, नृत्य की मुद्राओं द्वारा उनका अभिनय किया जाता था। जैसे 'वीर अभिमन्यु' में उत्तरा कजरी छन्द में निम्नलिखित गीत गाकर नृत्य करती है तो गीत के भीतर जो विरह-भाव छिपा हुआ है, उसका नृत्य-अभिनय भी करती है :

(सखी) रिमझिम बरसत मेह, सखी री मोहि डर लागे।
नहीं आयो प्रीतम मोरे गेह, सखी री मोहि डर लागे॥
बादल बरसे, बिजुरी चमके, नाचत है वन मोर रे।
बिना पिया जिया अकुलाय पिया को गरजन जब सुनपोर
पिया-पिया मैं रट रही, बालकिनी की भाँति।
धन, धन जाओ चंद्रमा, एक बूँद दो स्वाति॥

इसी तरह प्रेमल कल्याण ने अपने अनेक जो गीत गाकर नृत्य करती है, अपनी सखियों को यह बताती है कि वह किस प्रकार अभिमन्यु के प्रेम में बावली हो गई है और उसे कोई मार्ग नहीं सूझ रहा है तो इस गीत में छिपे हुए भावों के अभिनय को वह नृत्य द्वारा प्रदर्शित करती है :

मोहि पिया की इगारिया दिया दो सखी।

बाय तकत मैं तो हार गई ।
लड़े मोरे गए परदेसी रंग के,
दो चोज भए मोहि दर्शन दो ।
नहीं नैन न मोंहे, न कल मन में,
भई बैठे बिछाये विरहिन में ।
पर मोरे लगा के उड़ाओ सखी !
मोहि पिया की डगरिया दिखा दो सखी ॥
बिन पानी के मीन जियेगी नहीं,
बिन प्यारे के प्यारी रहेगी नहीं
जब लौं सूख-चाह लगेगी नहीं ।
तब लौं यह चकोरी थकेगी नहीं ।
ऐसे चाह को कोई उपाय दो सखी ।
मोहि पिया की डगरिया दिखा दो सखी ।

समूह-नृत्य के गाने प्रायः कोमल धुनों और तालों के लिये गाने हुआ करते थे, जिनमें झूलकर नृत्य-अभिनय करने की अधिक गुंजाइश हुआ करती थी। समूह-नृत्य के गाने प्रायः दो परिस्थितियों में गाए जाते थे। 1. जब किसी दृश्य के प्रारम्भ में अंक के देश-काल परिस्थिति को स्पष्ट करना होता, या दृश्य गीत के बाद नये दृश्य का वातावरण भरना होता था। 2. राजा के दरबार में समूह-नृत्य करके जब गाना होता था।

पहले के अंतर्गत 'वीर अभिमन्यु' का योगिनियों का निम्नलिखित समूह-नृत्य का गाना एक दिग्दर्शन उदाहरण है :

हर हर हर, हम गाती हैं ।
खून जगत् का पीती हैं हम काल नदी का पानी है ।
चामुण्डा, योगिनी, भैरवी, कपालिनी कहलाती हैं ।
हैं हम महाप्रलय की देवी, सबको ही खा जाती हैं ।
नोच-नोच गीदड़ को लोथें, खप्पर भर-भर खाती हैं ।
नाथ हमारे भूतनाथ हैं, उनको भोग लगाती हैं
मुण्डों की मालाएं बनाये, खोपड़ियों की खटवांगें
तब नाच-नाच कर गायें 'जय बम्भोला की'
कहो तब 'जय बम्भोला की' कहो तब 'जय बम्भोला की'
हर हर हर, हम गाती हैं ।

दूसरे प्रसंग के उदाहरण में 'वीर अभिमन्यु' नाटक के उत्तरा और सखियों का यह समूह-नृत्य-गान उल्लेखनीय है।

फूल सुगन्धित फूल-फूल के, हरे विकसित फुलवारी की ।
कलियन-कांकरन भौंर गुंजन, चूमत डारी-डारी को ॥

चटक-चटक कर बिजली चमकी, चौंरत है चित प्यारी को ॥
उतरी है यह तारामण्डल आली री! देखो मोहिनी बयारी को ॥

'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक में पहले अंक के तीसरे दृश्य में अयोध्यानगर में हरिश्चन्द्र का दरबार लगा है। हरिश्चन्द्र सिंहासन पर और उनके प्रधान पुरुष और दरबारी लोग मंच पर बैठे हैं। तवायफें नाचती हुई यह गीत गाती हैं :

दान, ज्ञान, ध्यान, निस दिन तेरी पलछिन चाकर सब पर।
जान जाग, जान रखती तोहे दुनिया सारी।
जी से प्यारी, अवधेश्वरी, कर पर मरबर ॥
मात, पितरान, लोगन जैसे मोह अनवर।
मिहरे बरबर, नीत सचाई, लाई पर पर। दान०
प्रजा प्यारी, नर या नारी, लोगन बारी औ हितकारी।
तानि तन, ध्यानो मन, भालो घन, गरदन सर। दान०
शास्त्रन, दाहरन, जी बकर, जी हुनर।
हुर नाना, नीरनर हुर गहर खूब खबर। दान०

इस नृत्य-गायन में गणिकाएं राजा के प्रति आदाब बजा-बजाकर नृत्य तो करती ही हैं, साथ ही गीत में छिपे एक-एक भाव का अभिनय भी करती रहती हैं।

फड़केबाजी या ठेके लड़ने के गाने और नृत्य

फड़केबाजी या ठेके लड़ने के गाने पारसी थिएटर के नाटकों में कहीं ज्यादा दिखाई पड़ते हैं। यहां दो नायक परस्पर विवाद करते हुए अपनी पक्षों को स्पष्ट-सिद्ध करने के लिए फड़केबाजी पर उतर आते हैं। पीछे कहा गया है कि लावनी-गायन में फड़केबाजी और ठेके लड़ने की यह परम्परा यहां बहुत पहले से मौजूद थी। यहां के दर्शक इस तरह के फड़केबाजी देखने और उसमें आनन्द लेने के काफी अभ्यस्त थे। नारायणप्रसाद 'बेताब' के प्रसिद्ध नाटक 'महाभारत' में पंचालराज, द्रौपदी और कृष्णजी में निम्नलिखित उदाहरण बहुत प्रसिद्ध हैं—यह फड़केबाजी इन तीन पात्रों के माध्यम से लोकसंगीत के अंग के अन्तर्गत मिश्र कल्याण में दृष्टव्य है :

कोई प्रीत की रीत भला दी नई।
करके जतन मैं तो हार गई। कोई०—
छलछन्द है खेल की हम गम में,
चित चोर हे छूटी मेरी लगन में।
मन हरन के मोहन के बन में,
सुध श्याम ने मोरी बिसार दई।
नज मान गुमान जरा आन मिले॥ कोई०

आगा हश्र के सामाजिक नाटकों में यह फड़केबाजी प्रायः गीतों के माध्यम

से न होकर ऐसे गुलाल गम सवादों द्वारा हुआ करते थे, जहां दर्शक गायों के परस्पर-विवाद और संवादों को सुनकर तालियां बजाने पर मजबूर हो।

उपदेश और संदेश के गाने

पारसी थियेटर के प्रायः सभी नाटक उपदेश और संदेश के गीतों से भरे पड़े हैं। विशेषकर राधेश्याम कथावाचक, नारायणप्रसाद 'बेताब' के नाटकों में ऐसे गीतों की भरमार है। 'महाभारत' में युधिष्ठिर, कृष्ण, द्रौपदी, भीष्म-पितामह इन सभी चरित्रों के मुख से 'बेताब' जी ने पूरा नाटक उपदेश के गानों से भर दिया है। इन उपदेश के गानों का इस्तेमाल उन्होंने एक ओर समाज में हिन्दू-पुनरुत्थान की भावना को भरने के लिए किया था और साथ ही उस काल के दर्शकों की भावना को और भी व्यापक उद्दीप्त करने के लिए किया था। इन उपदेश-भरे गानों में कहीं-कहीं चरित्रों के चित्रण भी मिलते हैं और कहीं-कहीं उन चरित्रों के माध्यम से सीधे नाटककार के इन्हें दर्शन भी मिलते हैं। 'महाभारत' के दूसरे अंक के सातवें दृश्य में निम्नलिखित गीत उस काल के दर्शकों में मूर्ति-पूजा के खिलाफ और आर्यसमाज की भावना को भरने के लिए एक प्रसिद्ध गीत है जो इन दिनों तक आर्यसमाजी मूर्ति-पूजा के खिलाफ इस्तेमाल करते थे :

> अजब हैरान हूँ भगवन, तुम्हें क्योंकर रिझाऊँ मैं,
> कोई वस्तु नहीं ऐसी जिसे सेवा में लाऊँ मैं।
> कहूँ किस तरह आवाहन, कि तुम मौजूद हो हर जा,
> निरन्तर हैं बुलाते को अगर घण्टी बजाऊँ मैं। अजब०
> तुम्हीं हो मूरती में भी नहीं व्यापक हो फूलों में,
> पला अगवान् पर भगवान् को पत्थर चढ़ाऊँ मैं। अजब०
> खजाना भोग कुछ तुमको यह इक अपमान करना है,
> जिलाता है जो सारे संसार को तुमको खिलाऊँ मैं। अजब०
> तुम्हारी ज्योति से रोशन है सूरज चन्द्र और तारे,
> महा अज्ञान है तुमको दीपक दिखाऊँ मैं। अजब०
> भुजाएँ हैं न मीलों हैं न पावन हैं न पैशानी,
> कि है विश्वेश नामाकन करूँ चन्दन लगाऊँ मैं। अजब०

सत्य हरिश्चन्द्र' के हरिश्चन्द्र विश्वामित्र के सामने जब दान देने के लिए बहुत हैं तो वहीं मूल में 'सत्यवादी' हैं नाटककार ने उस काल की भावना को निम्नलिखित संवाद हरिश्चन्द्र के चरित्र के माध्यम से देना चाहा है :

> [illegible] काम आये।
> [illegible] आये ॥ [illegible]
> [illegible] है।
> [illegible] ॥ [illegible]

खाल और मांस भी काम आते हैं इंसान के
तैफ, इन्सान न इन्सान के मर काम आये ॥ मे०
पीके दिलमस्त ने कभी आब के हटने के नहीं।
काम ही शौक से मेरा भी यह सर काम आये ॥ मे०

लाला दुख काश्मीरी ने भी अपने सामाजिक नाटक 'पाप का नशा' में नारी-समाज के प्रति निम्नलिखित उपदेश दिया है :

नारी का लोक और परलोक है स्वामी के पग में
पति-सेवा में पाप मान नारी
जाने भाग सुख-विलास, सुहाग, पति-प्रेम में जग में
नारी की लोक है पति दर्शन पावन जब नैना दिन रात जायत
कारी रैना तुम्हारी कांति रोम रोम रोम नारी ...

इस तरह हम देखते हैं कि रचना और मंगलाचरण के बाद उपदेश और संदेश के बिन्दुओं तक पारसी थियेटर के नाटकों में गीतों और नृत्यों की भरमार थी। इन गीतों के गायन-पक्ष में ध्रुपद-धमार, लोकसंगीत और मिश्र रागों का उपयोग उस काल के संगीतकारों ने सृजकर किया है। गीत-संगीत और नृत्य की इस व्यापकता ने उस काल का दर्शक वर्ग पूरी तरह से आकृष्ट था और पारसी थियेटर की लोकप्रियता इन संगीत के आधार पर निर्विवाद रूप से प्रतिष्ठित थी। कहीं-कहीं यह संगीत-नृत्य-पक्ष नाटकों में स्वाभाविक रूप से और उसके विकास-क्रम और उसकी नाट्य-प्रक्रिया के अंतर्गत आते हैं। और कहीं-कहीं यह संगीत-नृत्य-पक्ष नाटक के बाहर जैसे आरोपित होकर उपयोगित हुआ है। पर नाटककार ने उस संगीत-नृत्य-पक्ष को प्रायः नाट्य प्रक्रिया के भीतर ही देखा है लेकिन सामान्य नाटककार ने इस संगीत-नृत्य-पक्ष को आज के सिनेमा की तरह, केवल व्यवसाय के रूप में स्वीकार किया है।

नृत्य-पक्ष के कुछ विशिष्ट आयाम

पारसी थियेटर के नृत्य-पक्ष में कुछ विशेष बातें ऐसी थीं, जिनका अलग से अध्ययन आवश्यक है। इस रंगमंच के पूर्वार्ध काल में, जबकि इसके नृत्य पक्ष पर वाजिद अली शाह के रहस और नाटक की परंपरा का अत्यधिक प्रभाव था, और इसके नृत्य में घेरकर नाचने की प्रथा लोकप्रिय थी, तब प्रायः प्रदर्शनों में नृत्य पूरे के पूरे दृश्यों के रूप में ग्रहण किए जाते थे। जैसा कि वाजिद अली शाह के रहसों में होता था, नृत्य के विविध स्वरूपों और प्रकारों के दो विशिष्ट अंग थे। अध्ययन के लिए इन्हें दो किस्मों में बांटा जा सकता है। पहली किस्म के तहत प्रकार के नृत्य-रूप मिलते हैं और दूसरी किस्म में पन्द्रह प्रकार के रूप।

पहली किस्म के रूप हैं

1. सखाली, 2. सीधी हथजोड़ी, 3. सीधी गलबहियां, 4. मोरपंखी,

5. मुरली, 6. तिरछा, 7. [illegible] चन्द्रमुखी, 10. सूरजमुखी, [illegible] 14. [illegible] मुबारक, [illegible] सलिया।

और दूसरी किस्म के रूप

1. मुजरा, 2. मुबारक [illegible] राजमुद्रा, 7. प्राणमुखी, 8. [illegible] 11. जनमुखी, 12. [illegible] मयामुखी।

स्पष्ट है, नृत्य के इन [illegible] का स्वरूप भी प्रकट है। वाजिद अली शाह के निर्देशन में गायिकाओं 'ठाकी फिर नक्ष श्री' के बोल [illegible] या थइया या थइया श्री' के साथ गाते [illegible] नाच की मुद्रा [illegible] लिए पहले दोनों हाथ तनते [illegible] बाद में नाभि पर बायें हाथ [illegible] जाती थी। फिर दायें हाथ [illegible] माथे पर चुटकी रखते हुए [illegible] दायें कूल्हे पर रखकर [illegible] पर हाथ रखकर [illegible] ताल, लय और पदचालन [illegible]

पर नृत्य के इन अंगों [illegible] में भी विशुद्ध [illegible] आ [illegible] गया। यहां [illegible] रहस और [illegible] नृत्य के इस रूपों, [illegible] पारसी थियेटर ने नृत्य की [illegible] के आधुनिक [illegible] और अतिरिक्त प्रभाव [illegible] अदाओं को [illegible] के दृश्यों में [illegible] जाते थे।

पहले चरण के [illegible] नाचती हुई मंच पर आती [illegible] थी। प्रायः अठारह-बीस [illegible]

5. मृगशीर्ष, 6. [illegible], 7. [illegible] नवरत्न, 8. [illegible], 9. चन्द्रमुखी, 10. सूरजमुखी, 11. आकाशमुखी, 12. [illegible], 13. [illegible], 14. [illegible] मुबारक, 15. [illegible], 16. [illegible], 17. कुल-[illegible]।

और दूसरी किस्म के रूप हैं

1. मुजरा, 2. कथक, 3. [illegible] लहरी, 4. चुपक, 5. [illegible], 6. राजमुखी, 7. प्राणमुखी, 8. अन्धक, 9. [illegible] मुखी, 10. [illegible] मुबारक, 11. [illegible], 12. [illegible], 13. [illegible], 14. [illegible], 15. [illegible]

स्पष्ट है, नृत्य के इन प्रकारों और अंगों पर उनकी भारत के [illegible] नृत्य का स्वरूप ही प्रकट है। वाजिद अली शाह के 'रहस' और 'इन्दर-सभा' के नाट्य-रूप पर वस्तुतः इसी [illegible] का ही अंग सर्वोपरि था, जहां स्वयं वाजिद अली शाह के निर्देशन में गायिकाएं, नर्तकियां 'जान आलम की जय कहती हुई आती फिर तक था' के बोल पर नृत्य प्रारम्भ करतीं और [illegible] या [illegible] या [illegible] के बोल के अनुसार तान समाप्त करतीं, साथ ही [illegible] साथ गान। नाच की मुद्राएं और [illegible] निर्देशक और [illegible] थे। उदाहरण के लिए पहले दोनों हाथ नर्तन करते हुए दाहिने और बढ़ाए जाते, फिर बाएं और बाद में नाभि पर बायें हाथ का अंगूठा रखकर तर्जनी की [illegible] रखी जाती थी। फिर दायें हाथ की तर्जनी [illegible] बायें हाथ पर रखी जाती थी। बायें पर तर्जनी रखी हो तभी को लचकाना होता था। तब बाया हाथ पहले दायें कन्धे पर रखना होता था, फिर बायें कन्धे पर। फिर दुबारा दायें कन्धे पर हाथ रखकर कमर का लचकाना समाप्त किया जाता था। और नाचते समय नाक, मुख और पदचालन पर विशेष ध्यान दिया जाता था।

पर नृत्य के इन अंगों और प्रकारों को पारसी थियेटर के इस दुर्बोध नाटक में विशुद्ध रंगमंचीय आवश्यकताओं और [illegible] सीमाओं ने स्वीकार किया गया। यहां न 'रहस' और 'इन्दर-सभा' के [illegible] तत्व को स्वीकार किया गया, न नृत्य के उस रूप को, जिसके [illegible] ने ही उसका [illegible] किया था। यहां पारसी थियेटर में नृत्य की वह परम्परा नृत्य के बोल और तालों से निबद्ध होने के बावजूद इतनी [illegible] हो गई कि नाचते वाली अभिनेत्रियां दृश्य में लालित्य और अतिरिक्त प्रभाव पैदा करने के लिए नये-नये [illegible], भंगिमाओं, पत्तों और अदाओं को खुलकर अपनाकर इस्तेमाल करने लगीं। अधिकतर नृत्य राजदरबार के दृश्यों में रखे जाते थे।

पहले चरण के पारसी थियेटर के ऐसे नृत्यों में नर्तकियां मुख्य तालों पर नाचती हुई मंच पर आती थीं; और दो पंक्तियों में खड़ी होकर भुजरा करती थीं। अन्य [illegible]-बीस नर्तकियां होती थीं और छः से दस की संख्या में प्रत्येक

पंक्ति में खड़ी होकर नाचना शुरू करती थीं। सभीके आभूषण और पोशाक एक ही तरह के होते थे। या तो जूड़े खुले होते थे या बंधे हुए, और उनमें गजरा लगा होता था। सभीके गले में हार होता और कभी-कभी उनके हाथों में भी हार होते और मलाबी, गुजरा, ताज मुबारक, घूंघट, नूमक और नयनगुंजी जैसे नृत्य-अंगों की छटा बखेरी जाती।

वस्तुतः जो मूल अन्तर 'रहस', 'इन्दर-सभा' और नाटक में है नृत्य की प्रकृति में भी वही अन्तर पारसी थियेटर में विद्यमान हुआ। वहां नृत्य पर नहीं, गान पर अधिक बल मिला। यहां शृंगार से अधिक लौकिक शृंगार-तत्व पर आग्रह हुआ।

पारसी थियेटर में पहले के उस नृत्य-परम्परा में नर्तकियां केवल नर्तन करती थीं, साजिंदे गाते-बजाते थे, या उनके साथ बैठी हुई गायिकाएं गाती थीं। पर पारसी थियेटर में अभिनेताओं को ही गा-गाकर नाचना होता था और गानों के नृत्य-अभिनय भी करने पड़ते थे। फलतः पारसी रंगमंच के नृत्य-पक्ष पर शास्त्र के स्थान पर भाव की अदायगी पर पूरा बल था।

'गोरा डांस' या एकल नृत्य पर पूरे का पूरा बल नाचने वाली के गायन पर था—उसके सुर-कंठ और अदाओं पर। 'नारिंग' के 'मन्य हरिश्चन्द्र' नाटक में राजा हरिश्चन्द्र का दी जब गीत-संगीत में डूब जाता है (अर्थात् जब दर्शक का जी ऊब जाता था) तब वह नाचकर गानेवाली अप्सरा से कहते हैं :

'गाना-नाच का यह समय नहीं है। परन्तु तू निराश न हो, इस वास्ते अपना हुनर दिखा और एकाध चीज सुना'

(अप्सरा का नाचकर गाना)

हो न दिलशाद तो क्या दिल को आराम
दिल को आराम न हो तो जीने में काम ।
जिसको ये रंक बनाने देखो अहा भायी है
उसपी दूरी में तेरी याद रुला आती है
था के हुए दुख जिगर अब भला पीती है
उस मुहब्बत में हमें दो ही सिला भायी है।

नाच-नाचकर गाना (जैसा कि कोठों पर नर्तकियां करती थीं या करती हैं—या जैसे आज फिल्मों में होता है।) यह उस रंगमंच की अपनी निजी विशेषता थी। उसके बाद में भी कुछ नाटक पर 'नाइका' 'नाइका' करते थे, कुछ नर्तकी के [illegible]। दरअसल यह गायन-नर्तन ऐसा होता था जो गायिकाओं की चंचल नजरों से नायकों में रंग भर देता था।

पारसी थियेटर के दूसरे-तीसरे दशकों में यही कहीं पिता गाने के भी नाच का इतिहास मिलता है। [illegible] अंक [illegible] चौथे

1. [illegible] पृ. 53 [illegible] बम्बई, [illegible] 1912 [illegible]

[illegible]

[illegible] में 'जापिनी [illegible] दाद दे रहे हैं।'[1]

गान के अनुसार [illegible] पद्मिनियों के दर्शन [illegible] अपनी नृत्य-शैलियों [illegible] (अंक [illegible], [illegible] लगा हुआ है और [illegible] रही है वहां [illegible] दिखाना [illegible]

'[illegible] बड़ा [illegible] देख मेरे [illegible]

(स्थाई [illegible]
डांस [illegible]

संगीत-नृत्य का [illegible]

[illegible] पारसी रंगमंच [illegible] था, [illegible] होता था, [illegible] था आनी [illegible]

[illegible] के लिए [illegible] लगता था।

[illegible] में होता था : उसके [illegible] थे [illegible]।

शास्त्रीय बोलों [illegible]

शास्त्रीय बोलों [illegible]

1. [illegible]
2. [illegible], 1938
3. [illegible] 1938

दृश्य में [illegible] का मजा हुआ [illegible] है। [illegible] नाच रही है, [illegible] दाद दे रहे हैं।[1]

गाने के अनुसार नाच और [illegible] नाच के अनुसार गाने [illegible] पढ़ाकियों के [illegible] हुई इस [illegible] में मिलते हैं। इसीलिए प्रायः भारत की सभी नृत्य-शैलियों और विश्व जैलियों के 'अर्गोरे-हिर्गो' नाटक में अनेक दृश्य (एक [illegible], [illegible] दरबार [illegible]) में, संगीत का जहाँ [illegible] का दरबार लगा चुका है और उनके हाथ से जहाँ भाई [illegible] के सिर पर [illegible] हो रही है वहाँ ड्राप गिरने से पहले 'गत बजना', 'भड़ैलियों का [illegible]' नाच दिखाया है।

'लुबनुल बलां' में नाच का उल्लेखनीय त्रिगुण नाटकीय स्वर पर हुआ है—जहाँ नेकी-बदी के झगड़े में बदी नेकी से कहती है : 'इंसान के हक में [illegible], देख मेरे [illegible] का हाल।'

(एक [illegible], [illegible] का शराब पीते नजर आना,
[illegible] होते दिखाई देना, [illegible] बंद हो जाना)[2]

संगीत-नृत्य का रंगमंचीय महत्त्व

[illegible] की [illegible], इसमें [illegible] और [illegible] [illegible] तथा [illegible] वर्ग की [illegible] से आकर्षित और संबद्ध करने [illegible] [illegible] संगीत-नृत्य का [illegible] उसके रंगमंचीय महत्त्व के लिए [illegible] था। [illegible] दृश्य की तैयारी और [illegible] में [illegible] [illegible] लगती थी [illegible] उसीके अनुसार नृत्य और गान की योजना और [illegible] नाटककार की अपनी [illegible] से [illegible] होती थी।

अगर [illegible] नाटकीय विकास के क्रम में [illegible] गया है और दर्शकों के लिए [illegible] देने वाला है तो अकसर दृश्य संगीत और नृत्य से संभाल लिया जाता था।

[illegible] रंगमंच का [illegible] देने के लिए भी प्रायः इसका [illegible] इस रंगमंच में होता था। इसके लिए गायन और नृत्य से [illegible] [illegible] पैदा किए जाते हैं। [illegible]

शास्त्रीय बोलों पर नृत्य

शास्त्रीय बोलों में [illegible] के [illegible] नृत्य की संरचना [illegible] कुछ उदाहरण

1. [illegible], पृष्ठ 80, [illegible]। [illegible], [illegible] कला, [illegible]।
2. [illegible], पृष्ठ 112, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] 1925
3. [illegible], पृष्ठ 6, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] 1935

मिलते हैं।

[illegible] नृत्य :

[illegible]

(अंगूठा भगत' नाटक

अंक तीसरा, सीन तीसरा — दरबार का दृश्य)

कत्थक तथा तराना के बोलों में गानों का मिश्रण और उसपर खोलो नृत्य

[illegible] (खोलो) नृत्य :

[illegible]

(पारसी इम्पायर थियेट्रिकल कंपनी का मशहूर ड्रामा 'खूनी तोरनी' से)

अंग्रेजी बोलों और धुनों पर नृत्य

[illegible]

कुछ प्रसिद्ध गायक-

[illegible]

1. [illegible]

(अ) [illegible]

(आ) [illegible]

(इ) [illegible]

2. न्यू अल्फ्रेड

(अ) [illegible]

(आ) [illegible]

3. कॉन्सेशनल [illegible]

(अ) [illegible]

(आ) [illegible]

पारसर निसार [illegible]

संगीत-निर्देशक

पहले पारसी थि[illegible] कुछ नहीं था। पर अ[illegible] हुआ। [illegible] होते थे [illegible] अगर वे पेटी मास्टर [illegible] संगीत के [illegible] जानते थे, फिर वे गी[illegible] कि उस्ताद लोग [illegible] सन्हीके आधार पर पे[illegible] तरह जब धुनें बन[illegible] बनाते थे। इसके [illegible] गायिकाओं की प्रशि[illegible] का होता था। [illegible] के प्रसिद्ध पेटी मास्टर [illegible] ये पहले स्त्री की भूमि[illegible] हुए और न्यू अल्फ्रेड [illegible] हैं। इन्हें शास्त्रीय [illegible] भी ये ध्रुपद और ध[illegible] राधेश्याम, 'बेताब' [illegible] बंदिशें बनाने में इनक[illegible]

कुछ प्रसिद्ध गायक-गायिकाएं, नर्तक-नर्तकियां

पारसी रंगमंच में प्रायः सभी अभिनेता और अभिनेत्रियां गायन-नर्तन के जानकार होते थे। ये कुछ प्रसिद्ध नाम हैं :

1. अल्फ्रेड कम्पनी
   - (अ) गायिका-नर्तकी—मुन्नीबाई
   - (आ) गायक-नर्तक—फूलचन्द
   - (इ) संगीत-नृत्य-निर्देशक—अंधे नवी उस्ताद
2. न्यू अल्फ्रेड
   - (अ) गायिका—नवाबदाणकर (पुरुष, स्त्री की भूमिका में प्रख्यात)
   - (आ) गायक—गंगा प्रसाद पाठक
3. कोरोनेशन कंपनी
   - (अ) गायिका-नर्तकी—करीमाबाई
   - (आ) गायक-नर्तक—मास्टर निसार

मास्टर निसार डिरेक्टर के रूप में भी प्रख्यात थे।

संगीत-निर्देशक

पहले पारसी थियेटर में म्यूजिक डायरेक्टर अथवा संगीत-निर्देशक जैसा कुछ नहीं था। पर आगे यह सत्व पारसी थियेटर के उत्कर्ष-काल में उपस्थित हुआ। पहले होते थे बाजा मास्टर, जिन्हें पेटी मास्टर भी कहा जाता था। अगर ये पेटी मास्टर गीतों की धुनें नहीं बना पाते थे तो कम्पनियां बाहर से संगीत के उस्ताद बुला लेती थीं। पर ये उस्ताद नाटकों की स्थितियां नहीं जानते थे, फिर वे गीतों की धुनें कैसे बना सकते थे? हमेशा होता यह था कि उस्ताद लोग तराना या ठुमरी खयाल गाते थे और नाटककार और निर्देशक उन्हीं के आधार पर पेटी मास्टर की सहायता से धुनों की खोज करते थे। इस तरह जब धुनें बन जाती थीं तो लेखक लोग नाटक की स्थितियों में बोल बनाते थे। उसके उपरान्त उस धुन और बोल के आधार पर नायक और गायिकाओं को प्रशिक्षित किया जाता था। यह प्रशिक्षण बहुत ही सख्त किस्म का होता था। एक-एक गाने की रिहर्सल छः-छः महीने होती थी। उस जमाने के प्रसिद्ध पेटी मास्टरों में मास्टर नागरदासजी का नाम अत्यन्त उल्लेखनीय है। ये पहले स्त्री की भूमिका किया करते थे, फिर पेटी मास्टर के रूप में प्रसिद्ध हुए और न्यू अल्फ्रेड से लेकर कोरोनेशन कम्पनी तक गीतों की धुनें बनाते रहे हैं। इन्हें शास्त्रीय संगीत का पर्याप्त ज्ञान था, यद्यपि ये गायक नहीं थे, फिर भी ये ध्रुपद और धमार तथा बड़ी तालों के रचयिता के रूप में प्रसिद्ध हैं। राधेश्याम, बेताब और आगा हश्र के नाटकों में जो प्रार्थनाएं हैं उनकी धुनें, बंदिशें बनाने में इनका बड़ा नाम है।

संगीत-निर्देशकों में दूसरा बड़ा नाम **हाजी खां साहब** का है। ये मुख्यतः अल्फ्रेड कम्पनी से सम्बन्धित थे। जयपुर के गंधर्वों में। सांच पकड़ के रसाजी थे, पर दुनिया का कोई भी व्यसन उन्हें छू नहीं गया था। धुन और बंदिशें उन्होंने जितनी बनाई हैं उनका आधार शास्त्रीय होता था। लेकिन मुख्य रूप से भैरवी राग इनका आधार था। ध्रुपद, धमार और बड़े ख्याल के आधार पर उन्होंने लौकिक प्रार्थनाओं की बंदिशें तैयार की हैं। उनकी प्रशंसा लोग आज तक करते हैं। वह मुख्य रूप से बेनाब के नाटकों के संगीत के निर्देशक थे।

मास्टर मोतीलालजी : ये जाति के गुजराती थे और मुख्यतः ये कोरिंथियन थियेटर से सम्बन्धित थे। भैरवी, बीन्दु, भीमपलासी रागों के आधार पर बंदिशें बनाने में यह प्रसिद्ध थे।

मास्टर रेवाशंकरजी : ये राजस्थानी थे और हारमोनियम बजाने में अद्वितीय थे, साथ ही ये बड़े गायक भी थे और अभिनेता भी। स्त्री-पुरुष दोनों की भूमिकाएं ये समान रूप से करने में प्रसिद्ध थे।

मास्टर छैलाराम : कोरिंथियन थियेटर में आना-जाना जीवन प्रारम्भ करके इन्होंने हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी तीनों कम्पनियों में समान रूप से कार्य किया। इनके प्रिय राग थे गुजरी तोड़ी, सिंधु और भैरवी। इन्होंने प्रार्थनाओं की बंदिशें सदैव अप्रचलित रागों में कीं, जैसे—मालवा, गान्धार, काफ़ी, शंकरा, मारंग और गुनकली। इन्होंने छोटे-बड़े तालों में भी प्रयोग किए हैं और आड़ा, चौताला, झपताल आदि में विभिन्न मात्राओं के आधार पर प्रयोग किया था।

इन संगीत-निर्देशकों के अतिरिक्त निम्नलिखित संगीत-निर्देशक भी पारसी थियेटर-काल में प्रसिद्ध थे

1. **गंगाप्रसाद पाठक**
2. **मास्टर बृजलाल**
3. **मास्टर अमृतलाल** (न्यू अल्फ्रेड)
4. **मास्टर इमाम बख्श** (एलेक्जेण्ड्रा कम्पनी, दिल्ली)
5. **मास्टर थोलाल** (कोरिंथियन)।

9

पारसी थियेटर-काल का हिन्दी नाटक और रंगमंच

हिन्दी रंगमंच—जिसका पहला और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उदय भारतेन्दु-काल में हुआ, दूसरा विकास प्रसाद-काल में और अन्त, जिसका पर्यवसान बीसवें दशक के लगभग हो गया, वह पूरा रंगशाला, प्रस्तुति और प्रायस्वरूप इन में पारसी थियेटर के प्रभाव और उसकी प्रतिक्रिया का इतिहास है।

पूरा पारसी रंगमंच और उसका नाट्य-लेखन मूलतः उर्दू विशुद्ध व्यावसायिक उद्देश्यों के साथ विकसित हुआ। यह बम्बई, अलाहाबाद, कलकत्ता, हैदराबाद, लाहौर, चाहे कहीं पैदा हुआ, पर विकसित हुआ पूरे पश्चिम देश में— पूरे हिन्दी-भाषी क्षेत्र में। उसने इस क्षेत्र की धार्मिकता, अन्धविश्वास, पुनरुत्थान की भावना, हिन्दुत्व और इसकी समूची सांस्कृतिक स्थिति का

लाभदायिक उपयोग किया। पूरी हिन्दी-भाषी जनता ने इस रंगमंच की आ-
लोचना और इसकी दर्शक की हैसियत से अपना उन्मुक्त संरक्षण दिया। पर उस
विशेष युग और काल के बुद्धिजीवी—विशेषकर, हिन्दी लेखक ने इससे अपने को
दूर रखा और जैसे उस काल में बुद्धिजीवी का रुख उस काल के अंग्रेजी के
प्रति 'अनाहयोग', 'पलायन' और 'संघर्ष' का था, वही दृष्टिकोण उसने इस
'थिएटर' के प्रति भी अपनाया। इसे उसने स्वभावतः 'भ्रष्ट', 'अश्लील', 'फ्रिवल'
'असाहित्य', 'चलू' कहा और भारतेन्दु-काल से ही उसने दो विरोधपूर्ण रुख
अपनाए :

(क) पारसी रंगमंच और नाटक को उसने 'थिएटर' और 'ड्रामा' कहा।

(ख) इसकी प्रतिक्रिया में उसने नाटक को रंगमंच से (जो थिएटर था
उस समय) दूर कर उसे साहित्यिक बनाने के लिए भाव, विषय
और कथा-अभिव्यक्ति, सभी स्तरों से अत्यन्त गम्भीर, क्लिष्ट
और उद्देश्यमय बनाया। इसे सीधे संस्कृत नाट्य से जोड़कर,
रसबोध-बोध, प्राचीन भारतीय गरिमा, शुद्ध भारतीयता आदि से
पोषित करना चाहा।

रंगमंचीय नाटक और साहित्यिक नाटक—ये जो दो दुर्भाग्यपूर्ण परस्पर-
विरोधी धाराएं हिन्दी में बहीं, उनका उद्गम-बिन्दु यहीं है। जब कि सच्चाई
यह है (संस्कृत के भी सारे नाट्यशास्त्री और नाट्यकार मानते हैं) कि जो
नाटक रंगमंचीय नहीं, अर्थात् जो मंचस्थ नहीं किया जा सकता उसे नाटक
की संज्ञा ही नहीं दी जा सकती। जो 'रचना' मंच पर अभिनेताओं द्वारा
प्रस्तुत 'रंगशाला' में बैठे हुए दर्शकों द्वारा रागात्मिका नहीं होती वह कोई नाटक
ही नहीं, उसमें चाहे कितनी 'साहित्यिकता' क्यों न हो। क्योंकि यहां अन्तो-
गत्वा सर्वाधिक मूल्य 'रंग' का नाट्य का है, साहित्य नहीं। और इस बुनियादी
मूल्य का अभिमान रंगमंच है। नाटक की रचना-प्रक्रिया नाटककार की कल्पना
से शुरू होकर निर्देशक, अभिनेता, रंगशिल्पी और दर्शक तक पहुंचकर सम्पूर्ण
होती है। इस बुनियादी सत्य की उपेक्षा अथवा अज्ञानता ने हिन्दी रंगमंच की
जैसे कमर ही तोड़ डाली।

पारसी थिएटर के रंगमंच ने और नाटककार जिस तरह पश्चिम के रंगमंच
का वास्तविक, मूलभूत 'ड्रामा' नहीं पढ़ सके, ठीक उसी तरह यह के बुद्धि-
जीवी (उस काल के साहित्यकार) संस्कृत रंगमंच का मूलभूत 'नाट्य' नहीं
पा सके। दोनों ने अपने-अपने रास्तों में केवल बाह्य को, या ज्यादा से ज्यादा
'रूप' को पा सके, 'सौन्दर्य' से दोनों वंचित रह गए। इसका कारण था—एक लम्बे
काल तक रंगमंच-परम्परा में दुर्भेद्य व्यवधान।

इस काल में भारतेन्दु पहले ऐसे व्यक्ति हैं, जिन्होंने इसी दुर्भेद्य व्यवधान
को अपने ढंग से, अनेक प्रयोगों में पाटना चाहा है, और स्वयं एक सेतु बनकर
अपनी एक नई परम्परा को पाना चाहा है।

यह सच है कि हिन्दी-क्षेत्र में लोकरंगमंच की अपनी परम्परा अबाध रूप से विद्यमान थी। रामलीला, कृष्णलीला, स्वांग, भजन आदि सब थे। पर इनका सम्बन्ध उस बदले हुए समय, युगबोध में कतई नहीं था। राम या कृष्ण की कथा में न कोई परिवर्तन कर सकता था, न उस परम्परा के लोगों में यह प्रतिभा थी कि 'लीला' और 'स्वांग' को समकालीन स्थितियों में जोड़कर उसे जीवंत बनाते तथा उसमें समसामयिकता के तत्त्व भी देते; जैसे कि बंगाल में उनके परम्परागत लोकनाट्य 'यात्रा' में हुआ और उसमें से आगे चलकर एक नई नाट्य-परम्परा।

हिन्दी में उस नई नाट्य-परम्परा की एक सार्थक शुरुआत भारतेन्दु का 'अंधेर नगरी' नाटक है, और यह एक शुरुआत भारतेन्दु ने बड़ी लम्बी यात्रा तय करके की है, संस्कृत के सभी नाट्यप्रकारों, रूपों को लिखकर; रंगमंच पर विचार करके और नाट्य-परंपरा स्थापित करके, नाटकों के स्वयं अभिनय-निर्देशन करके। 'अंधेर नगरी' जिसकी परम्पराओं को अपने में पचाकर अपने समय के यथार्थ राजनीतिक-सामाजिक जीवन का एक यथार्थ रूपक है, जिसकी भाषा, रूपबंध और गहरा रंग-विधान हिन्दी की अपनी पूँजी होते हैं। पर इसके बाद यह परम्परा यहीं की यहीं रुक गई। और धीरे-धीरे उसमें विकसित पारसी थियेटर चित्रित होता रहा। विकसित इस अर्थ में कि यह समय के अनुसार राष्ट्रीय चेतना, देश और समाज की पुनरुत्थान की चेतना को अपना विषय बनाने लगा। इसलिए नहीं कि इसे इन विषयों में किसी प्रकार की स्वयं आस्था थी, बल्कि इसलिए कि उस काल का दर्शक वर्ग यही विषय चाहता था और इसी भावना से वह रंगा था।

पर यह विषय-भावना उतनी ही ग्राह्य थी जितनी कि उस समय की अंग्रेजी हुकूमत की नजर में कहीं खटके नहीं। प्रथम स्वाधीनता युद्ध के बाद से तीसरे दशक के अन्त तक, यह इतना काल पारसी थियेटर का चरम सफलता का काल है—और हिन्दी-भाषी क्षेत्र के लिए यह काल स्वदेशी आन्दोलन, 'असहयोग आन्दोलन', 'अधिकारी संघर्ष' का काल है। इसके उलट में अंग्रेजी हुकूमत की ओर से क्रमशः यह 'लोकेल एक्ट', 'जलियांवाला हत्याकाण्ड', 'कम्युनल अवार्ड' और दमन के अन्य कुर चक्रों का काल है।

ऐसी परिस्थिति में पारसी थियेटर को दोधारी तलवार पर चलना पड़ा—एक ओर हिन्दी-भाषी क्षेत्र की जनता की भावना का ख्याल और दूसरी ओर अंग्रेजी हुकूमत से भय। इन दोनों परस्पर विरोधी दिशाओं का हल पारसी थियेटर ने कुछ निकाला। राष्ट्रीय चेतना, पुनरुत्थान की भावना पर शृंगार, वीररस तथा रोमानिकता का चटक रंग चढ़ाकर। इसके बाद भी यदि कहीं राष्ट्रीय चेतना, भारत का गौरव, स्वदेश-भावना, हिन्दुत्व दिखे, तो उसे अजीबो-गरीब सीन-सीनरियों, चमत्कारपूर्ण रंगसंगी कविताओं में इस तरह ढक दिया जाए कि दर्शक उसी ग्राह्य में चमत्कृत रह जाए। और उसके ऊपर

[illegible], 'रसख', नाच [illegible] की नाइयों में सब कुछ अजीब ढंग से पीटा पीसा कर दिया जाए।

इस प्रसंग में यह एक बात और उल्लेखनीय है कि जैसे-जैसे राष्ट्रीय चेतना हिन्दी भाषा और उसकी संस्कृति से जुड़ती गई है, वैसे-वैसे पारसी कम्पनियों ने धर्मकथा वाचकों (नाचियम्म); हिन्दू धर्म, पुराण और इतिहास की उसी दिशा से उभरने वाले चेतनाओं (नारायणप्रसाद 'बेताब') को महत्त्व देना शुरू किया। शुद्ध हिन्दी भाषा और हिन्दी के छन्द, गीत और इतिहास पुराण की गीतिकथा, राष्ट्रीय भावधारा, हिन्दू [illegible] की [illegible] पर कुर्बान हो जाना [illegible] इसका पारसी नाटक में दिखाया गया है :

"[illegible] देवकृष्ण, सुन, आप लड़के-बाले के दिल में मोह का इस दूर करने के लिए चुप [illegible] की [illegible] थी, और सुन है [illegible] में [illegible] लेकिन मोहराज के लिए नहीं, अपने मुल्क के लिए, मुहब्बत के लिए नहीं, अपने वतन की खिदमत के लिए....."

(पं. आगा [illegible] 'बाप दुश्मन', तीसरा अंक, [illegible] व मोहराज)

"[illegible] कहे [illegible], तो कहना [illegible]।
और [illegible] कर, [illegible] में [illegible] 'चमत्कार'।"

(इन्द्रजाल : [illegible] अंक, [illegible] 'वीर अभिमन्यु')

"[illegible] देख, यह [illegible] की हिन्दू लड़की, जिसकी जान में [illegible] ने [illegible] की खूबसूरत [illegible], मीरा का [illegible] धर्म और राधिका का प्रेम [illegible] कर दिया है, इसके लिए मुहब्बत का बनाव और अपने [illegible] आशिकाना स्वभाव [illegible]।"

(रामदास : पहला अंक, [illegible] सीन, 'विल्वमंगल')

"[illegible] पड़े [illegible] हैं [illegible], बैठे हुए जो [illegible] हैं,
[illegible] तो दिल से [illegible] भारत निवासी [illegible] हैं।
जो [illegible] [illegible] [illegible] जाती [illegible] [illegible] हैं,
[illegible] भी तो है भूले हुए किस [illegible] की [illegible] है।
जो [illegible] किया करके [illegible] [illegible] [illegible] [illegible],
[illegible] नहीं [illegible] धर्म [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।"

(अलाव—'महाभारत', पहला दृश्य, [illegible])

पर ये सारे [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] ने [illegible] उस [illegible] किया, मुहब्बत की दीवानगी ने, [illegible] बहादुर और [illegible] ने विदूषकत्व ने, सौभाग्यवती, [illegible] भारतेन्दु चरित्रों, [illegible], [illegible], [illegible] ने तथा [illegible] कुमार, [illegible] ने इनमें [illegible]।

बिल्कुल ठीक इसीके समानान्तर इस काल में जयशंकर प्रसाद अपने पौराणिक तथा ऐतिहासिक नाटकों में इसी पुनरुत्थान की भावना और राष्ट्रीय गौरव की विजयोन्मुख की भावुकता और छायावादी कुहेलिका से उबरकर, उस-

पर अस्पष्टता का झीना-सा आवरण चढ़ाकर अभिव्यक्ति कर रहे थे। यह अत्यन्त उल्लेखनीय है कि भारतेन्दु ने ऐसा कहीं नहीं किया है। वह जहाँ है, वहाँ एक ही स्पष्ट सीधे है और उन्होंने पारसी थियेटर के नाट्य-तत्त्वों को अपना माध्यम बनाया है। जो उन्होंने प्रयोग भी करना चाहा है, उसके लिए उन्होंने पारसी थियेटर से स्वतंत्र अपना अलग रास्ता तैयार किया है। उनका मानना था कि प्रसार के विपरीत भारतेन्दु प्रत्यक्ष रंगमंच से जुड़े थे और स्वतन्त्र नाट्य-परम्परा के लिए संघर्षरत थे।

प्रसाद ने ठीक इसके विपरीत किया। उन्होंने नाटक का साहित्य और रंगमंच का पूरा विधान सीधे पारसी थियेटर से उसी का लिया ले लिया और पारसी थियेटर के विपरीत उन्होंने उसमें काव्यात्मकता, सांकेतिकता भर दी। यदि प्रसाद ने भारतेन्दु की परम्परा में रामचन्द्र की तरह देखा होता तो वह प्रत्यक्ष सम्बन्धित होने का निर्णय ही वह अनुभव करते कि काव्यात्मक वस्तुनिष्ठ के लिए पारसी रंगमंच का माध्यम बिलकुल विपरीत पड़ता है। इससे भी अच्छा प्रसाद ने अपने लिए एक रास्ता ढूँढ़ने की प्रयत्न भी रखना था जिस वह अलग नहीं कर सके। कथा और चरित्र विधान में पारसी थियेटर के विपरीत (मुख्यतः आगा हश्र की नाट्यकला के) उन्होंने तीन अंकों, ज्यादा नायकों से अधिक 'फ्लैशबैक' (फ्लैशबैक) और समाचार ('टेलीग्राम'—टेलीग्राम) तक नाटक में बनाये। अभिनय और अभिनेय योजना बनाई। संस्कृत रंगमंच का नाटक 'भारतेन्दु' से लेकर 'फ्लैशबैक' तक पहुँचने के लिए, और टेलीग्राम के थियेटर के 'ड्रामा', 'उदयन' से लेकर 'स्कन्दगुप्त' तक जाने के लिए पारसी थियेटर ने रंग-विधान को सहारा न लेकर शुद्ध अभिनयवादी, काव्यात्मक (पोएटिक) रंग-विधान को अपना माध्यम बनाया है और उसी निर्देशन, अभिनय और दर्शक की कल्पना, सुजन शक्ति को जगाता हुआ नई भूमि पर अपने-आप को निर्मित और सम्पन्न करता है।

पारसी थियेटर का सारा रंग-विधान प्रसाद के नाट्य-विषय और भावबोध से बिलकुल विपरीत पड़ने के कारण, नाटककार प्रसाद की शक्ति को खंडित ही नहीं करता, उसे विभक्त देता है। पारसी थियेटर जैसे एक और सस्ती-सस्ता के दो विरोधी छोरों पर खड़ा था, ठीक उसी तरह प्रसाद की सशक्त नाटककार पारसी थियेटर और आगा की [illegible] अनुभूति के परस्पर विरोधी रूपों पर आसीन थे। जहाँ लाल दृश्यबन्ध रंगे हुए पर्दों, तीन सीढ़ियों और अभिनय से लेकर यांत्रिक प्रभावों तक सीमित है वहाँ काव्य के लिए कल्पना और गहराई की कोई गुंजाइश नहीं हो सकती। वहाँ काव्य केवल रूपाकार में ही सम्भव है या कोरी है। यही प्रसाद ने नाटकों में हुआ भी।

अन्यत्र ही नहीं, प्रसाद के काव्य-स्वर पर वही अंकित, सुचित, परिभाषित

राष्ट्रीयता, सर्वधर्मता, समाज-सुधार का अनिश्चर छाया रहा :

"आर्य ... इस गुरुभार उत्तरदायित्व का सत्य से पालन कर सकूं, और आर्य राष्ट्र की रक्षा में सर्वस्व-अर्पण कर सकूं, आप लोग इसके लिए भगवान से प्रार्थना कीजिए और आशीर्वाद दीजिए कि स्कन्दगुप्त अपने कर्तव्य से, राष्ट्र-सेवा से कभी विचलित न हो।"

(स्कन्दगुप्त—मालव में युवराजाभिषिक्त होने पर)

"भट्टारक, यदि मेरे मांगने पर मिलता तो साम्राज्य के लिए नहीं, जन्मभूमि के उद्धार के लिए मैं अकेला युद्ध करूंगा।"

(स्कन्दगुप्त)

समूचे चरित्र-चित्रण-विधान पर यही आग्रह स्पष्ट है :

* राष्ट्रीय स्वतन्त्रता और एकता के लिए सब कुछ उत्सर्ग कर देने वाले महा-पुरुष पात्र।

* शकुन्तला व प्रतिमुखी चरित्र।

* भारतीय गौरव, ब्राह्मणत्व और चरम आध्यात्मिकता के प्रतीक पात्र, महात्मा और ऋषि।

* भारतीय नारीत्व की प्रतिनिधित्व करने वाली सुकोमल, काव्यमयी नारियां।

दो परस्पर-विरोधी रंग-प्रवृत्तियों के प्रयोग के कारण, तथा नाटक में पात्रों के आग्रह के कारण विषय, कथा, चरित्र और अंक-विधान के स्तर पर अनेक सीमाएं सामने आती हैं।

एक ओर प्रसाद ऐतिहासिक नाटक लिखने के पीछे प्राचीन भारत का 'सांस्कृतिक इतिहास' या 'अन्वेषक' होना चाहते थे, दूसरी ओर वे 'विशाख' और 'राज्यश्री' के क्रमशः 'महाभारत' और 'वीर अभिमन्यु' के समूचे 'महाभारत' का सार और पूरी अभिमन्यु-गाथा कह डालना चाहते हैं, ठीक इसी तरह प्रसाद ने 'चन्द्रगुप्त' और 'स्कन्दगुप्त' में समूची तत्कालीन सांस्कृतिक परिस्थितियों को अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया है। और उन्हें 'नाटक' भी बनाना चाहा है। इसका फल यह हुआ है कि इन दोनों नाटकों में कथावस्तु-काल पर्याप्त लम्बा हुआ है—ठीक वैसे 'विशाख' के 'महाभारत' में : 'चन्द्रगुप्त' में कथावस्तु-काल पन्द्रह वर्ष का है (जो भारतीय नाट्यशास्त्र से वर्ज्य है, पर पारसी थियेटर के अनुकूल है)। इस लम्बे कथावस्तु-काल से जिस प्रकार नाटक को हानि पहुंचती है, वह इससे स्पष्ट हो जाता है कि जो लोग आरम्भ में किशोर या युवा थे, उन्हें स्वभावतः अन्त में प्रौढ़ या वृद्ध हो जाना चाहिए। पर नाटककार 'विशाख', 'राज्यश्री' की तरह इस तथ्य पर ध्यान न देकर उन्हें वही रखते हैं। और 'कार्नेलिया', 'कल्याणी', 'मालविका', 'पुरगुप्त', 'चन्द्रगुप्त', 'रामगुप्त' आदि पन्द्रह वर्ष बाद भी युवा ही हैं। 'इतिहास' और 'नाटक' दोनों स्तरों पर ऐसी अनेक सीमाएं, दोष सामने आते हैं।

पारसी थियेटर ने दर्शकों को लुभाने तथा पूरी कथा बताने के लिए एक से एक चमत्कारमूलक दृश्यों की अवतारणा की जाती थी। 'चन्द्रगुप्त' में भी ऐसे चमत्कारमूलक दृश्यों के मोह ने इसे स्वाभाविक यथार्थकता से भर दिया है। पात्र अर्थों का यह नाटक उपनाम दृश्यों में फैला है जैसे 'विक्रम' का 'महाभारत'। घटना-वैचित्र्य लाने के लिए अवतारणा दृश्य बढ़ाए गए हैं और गाने भी। चन्द्रगुप्त का कल्याणी को चीते से और कार्नेलिया को वनपुष्पकी चीते सिलिस्स से बचाना, 'रुस्तम' की याद दिलाता है। इसी और भी अनेक घटनाएँ, कृपाण-युद्ध, कार्य-व्यापार विशुद्ध पारसी थियेटर के प्रभाव होने के कारण नाटक को अत्यन्त रूप में मनोरंजन-प्रधान बनाते हैं और इसके कलापक्ष को स्वभावतः तोड़ते हैं।

अंकों की शुरुआत 'रुस्तम-सोहराब' के विधान की याद दिलाता है, और इसका अन्त शायद (रैक्सो)-विधान के अनुकूल होता है और 'बेनाब', राधेश्याम का प्रभाव सामने आता है। दृश्य, प्रवेश, प्रस्थान, कार्य-व्यापार—इन सबपर हरि, 'बेनाब', डी० एल० राय, राधेश्याम के परम्परा-विरोधी प्रभाव उल्लेखनीय है। अन्ततः प्रसाद की कोई रंगशैली नहीं स्पष्ट उभरकर नहीं आती :

लगता है प्रसाद ने अपनी इस रंगमंच-सीमा को 'ध्रुवस्वामिनी' तक पहुँचते पहुँचते स्वीकार किया है और 'ध्रुवस्वामिनी' में वह यथार्थवादी रंगमंच शैली की ओर झुके हैं। इनके पहले के किसी भी नाटक ने उन्होंने दृश्यखण्ड का मंचदृश्य का इतना विशिष्ट विधान नहीं किया है। केवल 'एकघोषणा', 'राजपाल', 'राजप्रासाद', 'प्रकोष्ठ', 'उपवन', 'युद्धस्थल' आदि एक-एक शब्द से वह पूरे दृश्य का संकेत कर देते थे, पर 'ध्रुवस्वामिनी' में उन्होंने वास्तविक दृश्यों का 'शीर्षक', एक सामग्रीसहित चयन किया है। पर ध्यान देने की बात यह है कि यथार्थवादी रंगमंच जैसा उनका नाटक-विधान ही नहीं है। वहाँ मंच-सामग्री, मंच-विधान नाटक के जीवन में इतनी घनिष्ठ न हो, पात्र उसकी सीमा के रूप में उपस्थित हुए हैं। इसमें भी आए यथार्थवादी मंच की अनेक वस्तु भूत पात्र के रूप में सजीव रूप में नियोजित होती हैं और उनसे व्यंजना, अवधारणा पैदा की जाती है। यह सब 'ध्रुवस्वामिनी' की नाटक-दुनिया से बाहर की बातें हैं।

इन सब सीमाओं के बावजूद प्रसाद के नाटक की कुछ उपलब्धियाँ उल्लेखनीय हैं, जिन्हें उनकी रंगमंचगत सीमाओं से अलग कर देखा जा सकता है।

काव्यतत्त्व प्रमुख उपलब्धि है, जो नाटक को सही अर्थों में नाटक सिद्ध करता है। इसी तत्त्व में मुख्यतः 'स्कन्दगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी' में एक अजब तरह का सम्मोहन है, जो आज तक बना हुआ है।

उन्होंने इतिहास-पुराण को पारसी थियेटर के नाटककारों की तरह

ने देखकर उसे अपने समय से जोड़ा है और इस तरह उनकी रचना भी की है। आगे समय की समस्त राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक चेतना को उन्होंने अपने ढंग से छुआ है और उनकी ऐतिहासिक-मानवीय गहराइयों में वे गए हैं।

इसके साथ कालक्रम को जोड़ने का प्रयत्न इनमें उल्लेखनीय है। उदाहरण यदि पारसी थिएटर की परंपरा मुक्तकर या फाइनल कलाना की आँखों से एक-दृष्टि को देखा जाए तो उसमें से एक महत्वपूर्ण नाटक और रंगमंच उभरता है। ऐसा रंगमंच जो हिन्दू सौन्दर्य-बोध, स्थापत्य, वस्त्र, रंग-रूप सबकी ओर सजग संकेत करता है।

उनके चरित्रों में कई आयाम हैं जो उन्हें उनकी परिवेश से जोड़कर मानवीय और नाटकीय दोनों गुणों से मंडित करते हैं। उनमें तस्वीर सदर्भ दिया है, वे चरित्र में व्यक्तित्व-प्रोफाइल की ओर बढ़ने लिए होते हैं, और कभी-कभी तो वे तत्कालीन परिवेश की आंतरिक अंतर्द्वन्द्व-मानों से हमारे मस्तिष्क में घर कर लेते हैं। एक-दृष्टान्त, जिसमें ऐसे ही अर्थपूर्ण नाटक हैं।

प्रसाद ने एकांकीपूर्ण, एकाध्यायों नाटकों में, पारसी थिएटर से सहमत आगे, पूर्वापर प्रयोग किया है और नाटक की कथावस्तु, चरित्र को लिए नाटकीय बिन्दु से उभारा है। यहाँ से यह संभावना और पूर्वदृष्टि परम्पराओं और विकासों से कलात्मक सम्बन्ध जोड़ते चलते हैं।

अन्य नाटककार

इस काल के अन्य नाटककारों में उल्लेखनीय हैं :

1. लक्ष्मीनारायण मिश्र
2. सेठ गोविन्ददास
3. हरिकृष्ण प्रेमी
4. गोविन्द वल्लभ पंत।

जिस प्रकार नाटककार प्रसाद के भीतर भारत के अतीत के प्रति आस्था, कवि का भावुक स्वातंत्र्य, तथा पारसी थिएटर के एकवाद और दृश्य-विधान के स्वर पर प्रभाव और विषयवस्तु, भाषा, चरित्र आदि के प्रति गहरी प्रतिक्रिया प्रमुख शक्तियों के रूप में कार्यरत थीं, ठीक उसी प्रकार नाटककार मिश्र के भीतर प्रसाद की नाटककला के प्रति तीव्र प्रतिक्रिया, पारसी थिएटर के प्रति लेखक दृष्टि और उनके स्थान पर विश्व और इब्सन के नाटकों के रंग-विधान की स्वीकृति कार्य कर रही थी। उन्होंने स्वयं पहले भावनात्मकता के विरुद्ध बुद्धिवाद का स्वर बुलन्द किया :

"आँख मूँदकर स्वीकार कर लेने से तो अच्छा है अस्वीकार करना। आज दिन जिसे हम बुद्धिवाद या बौद्धिक मीमांसा कहते हैं, उसके मूल में यही प्रेरणा काम कर रही है। मेरा अपना विश्वास तो यह है कि बुद्धि

बात स्पष्ट, अलग विन्यास है। उसमें भ्रम और मिथ्या की स्थान नहीं [illegible] बुद्धिवादी व्यक्तिवादी भी हो सकता है।[illegible]

बुद्धिवाद से व्यवस्था, व्यक्तिवाद को जोड़कर मिश्रजी ने व्यक्तिगत मौलिकता, सामाजिक रीति-रिवाज के रूप में बड़े ही निर्भीक और स्वतन्त्र ढंग से रखा। [illegible] क्षेत्रों में [illegible] है, जिस रूप में है, उसे तो वह स्वीकार [illegible] लेकिन [illegible] बड़े हैं, उसे [illegible] और [illegible] है, वह किसी जंजीरों में बाँधी गई है, उन बातों को वह स्वीकार नहीं करता। 'संन्यासी' (1930), 'राक्षस का मन्दिर' (1931) लिख चुकने के बाद बुद्धिजीवी [illegible] अधिकार में उन्होंने बड़े विश्वास के साथ बुद्धिवाद की स्थापना की। [illegible], बुद्धिवाद किसी रूप का हो, किसी कोटि का हो, समाज या साहित्य को हानि नहीं कर सकता। बुद्धिवाद में [illegible] कुंठित की व्यवस्था है ही नहीं। वह तो नीरव सत्य है। उसका भाव गहरा या होता है लेकिन अंग-भंग करने के लिए नहीं, मवाद निकालने के लिए, हमारी प्रसुप्त चेतना को जगाकर हमारे भीतर नवीन गति और नवीन स्फूर्ति देने के लिए।'

इस बुद्धिवाद और व्यक्तिवाद के भीतर से मिश्रजी ने नाटक सम्बन्धी जो मान्यताएँ बनाईं, उन्हें इन बिन्दुओं में देखा-समझा जा सकता है :

* बुद्धि और तर्क के भीतर से ही यथार्थ की अभिव्यक्ति नाटक में हो सकती है, कल्पना या कल्पना से नहीं।

* यही और ऐसा ही यथार्थवादी नाटक [illegible] का अधिकारी है; [illegible] भाव-संवेदनाओं को देखने से प्रकट है कि यथार्थवाद की यह प्रेरणा उन्होंने इब्सन से ली। मतलब जहाँ पारसी नाटक और रंगमंच, तथा उसके नाटक और रंगमंच शेक्सपियर और विक्टोरियन [illegible], उत्कृष्ट-अभिनय ढंग से जुड़े हैं, वहाँ उन्होंने इन दोनों की प्रतिक्रिया में, अपने नाटकों को सम्बन्ध बनाने वाले पहलू इब्सन से लिए।

यह इब्सन के नाटक का यथार्थवाद [illegible] है, जो मिश्रजी ने ग्रहण किया। यह नाटक इसके [illegible] का वाहनी हुआ है, जो ऊपर से मनोरंजन, सामाजिकता और [illegible] के प्रति विरोध का दिखता है। यह यथार्थ इतना ही नहीं है जो [illegible] की [illegible] में (फ्रायड-नियोग) प्रकट होता है, या फ्रेजर, [illegible] या [illegible] के [illegible] के भीतर से आता जो [illegible] है। वह यथार्थ नहीं, बल्कि यथार्थ इन सब गाँठों से कहीं आगे अपने [illegible] के विभिन्न, स्वतन्त्र होकर काव्य-सत्य यथार्थ के धरातल पर जा पहुँचता है।

और बुद्धिवादी नवाल यही [illegible] है। मिश्रजी ने इब्सन से इस बारीकी

[illegible] बुद्धिवादी [illegible] मिश्रजी, [illegible] का [illegible] की [illegible] की [illegible], पृष्ठ [illegible]

स्वार्थ ही क्यों ग्रहण किया? क्यों उन्होंने इब्सन के सम्पूर्ण यथार्थवादी रंगमंच को नहीं लिया? उन्होंने क्यों प्रत्यक्ष, बुद्धि तर्क के ही स्तरों मानव-समस्या को केवल सामाजिक समस्या के ही स्तर में सोच-विचार किया?

रंगमंच नाटक और रंगमंच की दुनिया एक अजब प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष संसार है। यह वह प्रत्यक्ष तो सबसे ज्यादा है, पर नाटक का यह प्रत्यक्षीकरण अभिनेता, निर्देशक, रंगशिल्पी की माध्यमता से मंच पर दर्शक के सामने होता है। यह एक विशिष्ट विधा ही नहीं, सब विधाओं से ज्यादा यह दायरों में (दूसरी कलाओं, मनुष्य, व्यवहार, अनुभव, गुजरा) सम्पृक्त है।

पारसी थियेटर की प्रतिक्रिया में, यही सम्पृक्तता पहले प्रसाद ने टूटी, और प्रसाद के बाद दूसरी प्रतिक्रिया से वह मिश्र, सेठ, प्रेमी आदि के द्वारा तोड़ी गई। प्रसाद काव्यात्मकता को लेकर टूटे, पर इससे पारसी थियेटर का ही रहा। इसलिए वह कैसे भी हो, रंगमंच के विधान के अंदर कहीं न कहीं सम्पृक्त है। काव्यात्मकता इस टूटन में कहीं महत्वपूर्ण तत्व भी बनी है। यह सब इसलिए भी हुआ कि प्रसाद ने यथार्थ को कवि के दृष्टिकोण से ग्रहण किया। और उनका नाटककार व्यक्ति की अपेक्षा 'सामाजिक' ज्यादा रहा।

प्रसाद के बाद नाटककारों (गोविन्दवल्लभ पंत को छोड़कर) ने रंगमंच से सरोकार रखकर जिस दुनिया में जाकर नाटकों को लिखा, उसे यदि हम कोई शास्त्रीय नाम देना चाहें तो उसे निम्नलिखित संज्ञा दे सकते हैं :

* भाषा का रंगमंच
* प्रस्ताव, थीसिस, प्रवचन का नाट्य
* कथात्मक रंग-विधान का अभाव।

भाषा का अत्यधिक प्रयोग पारसी थियेटर और प्रसाद दोनों में हुआ है। पारसी थियेटर में इसके अति प्रयोग के दो कारण थे। वहां अभिनेता एक ही बात को, भावना को दो तरह से दूसरे ढंग से कहता था। —पहले वह दर्शक को बताता था, फिर वही स्वयं कहकर (मुख्यतः बेहरे-तवील और अन्य छन्दों में) उसीका अभिनय करता था। दूसरा, उनमें प्रचारक का अत्यधिक हस्तक्षेप था, इसलिए भाषा को अराजक प्रयोग हुआ था। पर बुनियादी रूप से इस भाषा-प्रयोग में अभिनेता इसके भीतर विद्यमान था और साथ ही इसमें दर्शक भी शामिल था—अर्थात् भाषा का यह भाषाप्रयोग रंगमंच में तब्दील गया था। इसके अतिरिक्त उसमें अतिरंजना-प्रधान, चमत्कारमूलक पंक्तियां और कार्य-व्यापार थे, इसलिए भी भाषा-प्रयोग की वह अराजकता उसका अभिन्न अंग बन जाती थी। प्रसाद में वही अभिनेता और दर्शक पारसी थियेटर की तुलना में, भाषा के भीतर से दूर हट गया। इसमें जो अन्तर पैदा हुआ उसमें दो नये तत्व आ घुसे :

* दार्शनिकता
* व्याख्या

और यहाँ इनाम के स्थान पर कवि का तख्तोत्ताज आ गया।

प्रसाद के बाद मिश्र, सेठ, प्रेमी ने भाषा-संयोग में अभिनय, दर्शन अपेक्षाकृत गौण ही हो गए। इनके स्थान पर क्रमशः आ गए परस्पर वाद-विवाद करने वाले रवी दृश्य (परिचय नहीं) और पाठक। और यह अवसर, लय के स्थान पर तार्किक वकील और बुद्धिवादी लेखक आ गए। इस गुजरात-यूनियन पर, जब इन नाटककारों ने इतिहास, पुराण की कथावस्तु और चरित्र लिए तो अपनी संस्कृति से स्वयं को जोड़ने के लिए ये इनाम, प्रसाद, दीन दयाल राय, पारसी थियेटर सबको बुद्धि द्वारा देखते हुए सीधे ये अवस्मृति तक पहुँचे और अपने नाट्य का सम्बन्ध अपने पूर्वजों से जोड़ने लगे।

"अश्लील को गल्प करने की यह विचित्र पद्धति शेक्सपियर के नाटकों तक अपने वेग से चलती रही। इब्सन ने शेक्सपियर के विरुद्ध आवाज़ उठाई, पर हमारे दुर्भाग्य से जिसेन्द्र लाल राय ने आज मुंबइया शेक्सपियर का अनुकरण किया और वह अनुकरण देश की सभी भाषाओं पर छा गया। अब समय आ गया है जब इस देश के नाट्यकार अपने भारतीय सिद्धान्तों को समझें और अब से भी अपना सम्बन्ध अपने पूर्वजों से जोड़ें।"[1]

इस सम्बन्ध-जोड़ ने भी इन्होंने संस्कृत रंगमंच के कवित्व और कलात्मकता को नहीं ग्रहण किया, और इसके लिए जो तर्क दिया, वह इब्सन के प्रभाव में आकर दिया।

"....काव्येषु नाटकं रम्यं ....नाटक में इस कथन से यह निश्चित हो जाता है कि लोकवृत्ति का चित्रण, उत्तम, मध्यम और अधम मनुष्यों के व्यापार, क्रिया-कलाप का निदर्शन नाटक या साहित्य का कोई भी अंग हो सकता है लोकवृत्त प्रकृति की बनाई है। कोई कवि कल्पना में उसका निर्माण नहीं करता।"[2]

जाहिर है, जहाँ सारा रंगमंच भाषा का है वहाँ नाट्य का कवि-कल्पना से क्या मतलब? यहाँ मतलब होता ऐसी आंतनाटकीय स्थितियों से जहाँ जन्मकर

"आर्य-अनार्य, ब्राह्मण-शूद्र, धर्म और संस्कृति, दर्शन और धर्म, उदात्त और अनुदात्त, श्रेय और प्रेय, ('जयोक', 'गरुड़ध्वज', 'नन्द की वीणा', 'सत्य-राज', 'दशाश्वमेध') तथा व्यक्ति और समाज, नैतिकता बनाम अनैतिकता, साधन बनाम साध्य, काम और मोक्ष, आचार बनाम दुराचार, सामाजिक सदाचार और व्यक्ति, हिंसा और सद्वृत्ति ('संन्यासी', 'राजन का मन्दिर', 'मुक्ति का रहस्य', 'सिन्दूर की होली') पर वाद-विवाद और बहस हो सके। जहाँ भाषा के तीखे वारों से अतीत का 'पर्दाफाश' किया जाए।"[3]

1. 'प्रसादनिधि', 'नवजी', पूर्णिमा, पृष्ठ 13
2. वही
3. सर्वेश्वरदयाल मिश्र

"जहाँ हिन्दू धर्म की कट्टरता बनाम मज़हबी तअस्सुब, हिन्दू-मुसलमान की एकता, समाज और इसलाहिया, छूत-अछूत, साम्प्रदायिकता और राष्ट्रीयता, मराठे, राजपूत और हिन्दुस्तान बनाम मुग़ल संस्कृति ('शाबाश-बन', 'शिवसाधना', 'प्रतिशोध', 'पराजय-भय', 'आहुति') और

"राम बनाम रावण, कर्तव्य और अधिकार, ज्ञान और शक्ति, बुद्ध धर्म बनाम इसाई धर्म, संस्कृति और सभ्यता, पाश्चात्य बनाम भारतीय जीवन-दृष्टि ('राम ने रावण', 'पाप', 'हवा', 'सिरजाह', 'अग्निगुप्त') तथा समाज और शोषण, मज़दूरों का दुःख, हिंसा-अहिंसा, मेरा और तुम्हारा, व्यक्ति और युग ('दधिचि-पुत्र', 'प्यार का बंधन', 'हिंसा या अहिंसा', 'बदला चाहो कौन ?', 'मज़दूर ने किसे ?', 'देश क्यों') आदि ऐसे अनगिनत नाटकों के माध्यम, मुख्यतः उन्नीसवीं की इन विधाओं पर तत्कालिन प्रकाश डाले। कहीं ज्ञान भी हो और मनोरंजन भी प्राप्त हो।

"यदि पारसी की रचना निरुद्देश्य नहीं थी है। तत्कालीन इतिहास हमारी दर्दनाक और दुर्बलता का दर्पण है। मैंने बार-बार यह दर्पण अपने देशवासियों के समक्ष रखा है ताकि हम अपने देश के अतीत को देखकर व्यक्तिगत, सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन में उन दुर्बलताओं को दूर करें, जिन्होंने हम पराधीनता के पाश में बाँधा है।"

पारसीय विषयों और समस्याओं पर वाद-विवाद करने का तत्व इसमें खूब था, पर यहाँ ('दादा हरफ़ा', 'बोस्टन' आदि) हर नाटक के विषय एक ही था और समस्या भी एक ही थी जाती थी और नाटक का सारा यथार्थ-वादी ढाँचा आती लगाम था। वाद-विवाद, तर्कों के बावजूद एक रंग-मंचीय तर्क में डूबा हुआ था। यहाँ इन नाटकों में—अलोक नाटकों में कई विषय, कई समस्याएँ, हंसी है और इसमें इतना सारा रंगमंचीय विधान। किसी एक निश्चित कार्य से उत्पन्न होता है, न किसी ऐतिहासिक वस्तु परिस्थिति से इनका कोई सम्बन्ध जुड़ता है।

पारसीय भावनाओं, क्रिया-प्रतिक्रियाओं पर व्याख्या, टीका-टिप्पणी चरित्रों के मनोवेग को सुचित-परिकल्पित करने का सम्पदा मस्तुल नाटक से लेकर शेक्सपियर, पारसी थियेटर और प्रसाद तक हमें मिलती है। पर वहाँ पर विशिष्ट तत्व, उनके संयोजन-प्रकार और कथानक-शैली के भीतर से आता है।

पर यहाँ रंगमंच की प्रकृति और उसकी रंग-शैली, परम्परा-विरोधी शैलियों के चाक्षमेल तथा गड़बड़ के कारण और मूलतः इसमें जीवित सम्भव बोध की विहीनता के कारण पारसी तत्व पराभूत हुआ। और उसमें भी नाटकीय, जीवनाधर्म जैसे भारतीय-अभारतीय विधाओं का भार पड़ा। फलतः यहाँ सब कुछ मूल

1. शरदचन्द्र वर्मा
2. मैं० रामकृष्णदास
3. 'शरदिन्दु', शरदिन्दु वर्मा, पृष्ठांक, पृष्ठ ?

रूप में 'कहा गया', 'लिखा गया', 'सुनाया गया' 'विचार-संप्रेषण हुआ,— 'जिया' और 'रचा' नहीं गया।

तीसरी विजेयर का पश्चिमी प्रभाव के दबाव और प्रतिक्रियास्वरूप और अपनी संस्कृति के फलस्वरूप भावबोध और प्रस्तुति में रूपांतर और अभिनय-शैली की जो तलाश है, वह बड़ा सर्वथा नूतन है। यहाँ मानव-जीवन इतिहास, संस्कृति, जीवनादर्श, चारित्र्यता, व्यक्ति-समाज के विविध तल पर है।

इन नाटककारों के नाटकों में चरित्र या निर्णय लेने की क्षमता होती है। कभी-कभी विशेष में चरित्र बोलते भी थे, और वही कार्य भी करते थे—ठीक वैसे ऐसमीलियर और संस्कृत रंगमंच में चरित्र करते थे। वहाँ वस्तुतः कार्य-कथन और [illegible] की धारणाओं पर उस रंगमंच-प्रकृति के अनुरूप प्रस्तुत होता था। कथन, संकथन, कथोपकथन, सूचना देने के उद्देश्य से और [illegible] दर्शकों के लिए होता था। अर्थात् एक ही दोष को एकदम से किसी [illegible] तक [illegible] करना, यथा। देखना, ताकि उसमें मानवीय गति, कार्यशैली [illegible] हो।

पर यहाँ संवेदना केवल वाद-विवाद, सामाजिक संघर्षों के सूचनार्थ और ज्ञान प्रदर्शन के ही स्तर पर होता है। इसलिए यहाँ नाट्य-सम्प्रेषणीय या अभिनय कथन पाठक के एक ही स्तर पर होते हैं। यहाँ अनेक दृश्यों का अभिनय, [illegible] पात्रों का अभिनय कथन [illegible] हो, जिन्हें [illegible] मानता है। इनका जैसे विश्वास था कि नाटक [illegible] संकेतों द्वारा ही प्रस्तुत हो सकता है।

यहाँ [illegible] प्रहसन, [illegible] और सामाजिक सभी प्रकार के नाटकों में, [illegible] भाषा, [illegible], [illegible], [illegible] द्वारा ही प्रयोग [illegible]। [illegible] चरित्र [illegible] और [illegible]। [illegible] के नाटकों [illegible] के विविध [illegible] हो गई हैं [illegible] विज्ञापन, [illegible] के लिए [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] और [illegible] किए जा रहे हैं। [illegible] एक [illegible] नाटकों के [illegible] मुक्तिका, [illegible], [illegible] और [illegible] करते [illegible]। [illegible] वृत्त और [illegible] [illegible] [illegible] है।

[illegible] के कारण इन नाटकों के विषय, [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

[illegible] तीसरी [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] के परिणाम की [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

और रहस्य—इन दोनों परंपराओं से।

हर नाटक [illegible] पूर्व निश्चित, निर्धारित प्रस्ताव, [illegible] का प्रबन्ध गद्य पर आधारित हुआ।

"[illegible] के लिए कभी-कभी ऐसे कार्य करने पड़ते हैं, जो देखने में अधर्म प्रतीत होते हैं।"—('अशोक'—मिश्रजी)

"नारद (भारतीय संस्कृति की) आत्मा है, आप बुद्धि और [illegible] हैं।"
('आनन्द की वीणा'—मिश्रजी)

"'राक्षस का मंदिर' लिखने के बाद मुझे यह नाटक 'मुक्ति का रहस्य' लिखना अनिवार्य हो उठा। कुछ तो इसलिए कि उस नाटक में जीवन के जिस पहलू पर मैंने प्रकाश फेंका था—सदाचार और पतन[illegible]" ('भूमिका, 'मुक्ति का रहस्य'—मिश्रजी)

"हमारे भारतीय साहित्य में हिन्दुओं और मुसलमानों को एक-दूसरे से दूर करने वाली पुस्तकें ही बहुत रही हैं; इन्हें मिलाने का प्रयत्न बहुत थोड़े-से साहित्यकार कर रहे हैं। इसी लक्ष्य को सामने रखते हुए 'ऐतिहासिक नाटक' ('रक्षाबन्धन', 'विद्यासाधना', 'प्रतिशोध', 'एकलव्य', 'कर्तव्य' आदि)[illegible]" (भूमिका, 'ऐतिहासिक नाटक'—हरिकृष्ण प्रेमी)

"एक आदमी एक से ज्यादा औरतों से और औरत एक से ज्यादा आदमियों से एक ही वक्त में प्रेम नहीं कर सकती।" ('दक्षिण ध्रुव'—नेहजी)

"प्रेम का अर्थ यदि मैंने कुछ समझा है, तो वह देन-लेन है, लेना नहीं।" ('त्याग का महत्त्व'—नेहजी)

"यदि वर्ण और वंश का महत्त्व है, तो वह तो भूतकाल को महत्त्व देना हुआ। अतीत को बीच अपने भविष्य काल का रखे है, तो मुझे वर्तमान का एवं भविष्य का।" ('[illegible]'—नेहजी)

[illegible] ये सारे नाटककार मानवतावादी थे। [illegible] संग्राम और पुनरुत्थान की भावना से बहुत नजदीक से जुड़े थे। [illegible] इनके [illegible] पर आदर्श और यथार्थ, [illegible] और विद्रोह, [illegible] और [illegible] के बीच [illegible] विश्वास, [illegible] तथा विचार थे। इन्होंने [illegible] नाटक में [illegible] किया। इन्होंने [illegible] और [illegible] से [illegible] कर [illegible] एक [illegible] हल पर [illegible]। यही कारण है कि इन सभी नाटककारों की नाटक-[illegible], [illegible] बुद्धि और [illegible] पर खड़ी है, अनुभूति और [illegible] पर नहीं। [illegible] की पहचान से स्पष्ट है कि वे सभी आज [illegible] विचार, [illegible], [illegible] के [illegible] और [illegible] का [illegible] नूतन [illegible]। इसी [illegible] में [illegible] बनी [illegible], [illegible] और [illegible] मिलेंगे।

[illegible] यह [illegible] का आरम्भ एक विचार, [illegible] प्रस्ताव, [illegible] का आरम्भ है और [illegible] का [illegible] [illegible], [illegible]

पात्र-विन्यास का मध्यभाग है और अन्त इस विचार, प्रस्ताव और उस समस्या की समाप्ति, हल या उपसंहार का है। यहाँ नाटक की समस्या उत्पन्न, विकसित, प्रसार की तरह आने पूर्वापर सम्बन्धों पर नहीं टिकी होती न वह भविष्य के लिए खोल दी जाती है। अन्त प्रस्ताव, पात्र-चयन के अनुरूप हर [illegible] की समस्या एक होती है और उसके अन्त न वह समस्या समाप्त हो जाती है। [illegible] और [illegible] कुशल है। [illegible] आदि और अन्त में [illegible] नहीं है, इसके लिए उन्होंने आगे [illegible] उपसंहार का सहारा लिया है। [illegible] एक लेखक, तथा सुधारक, बुद्धिजीवी के चिन्तन का प्रभाव पात्रों पर और समस्या पात्रों में भी शेष न रह जाए।

लिखते में यदि वह यहीं शेष नहीं लगती है तो वह 'दृश्यान्तर' नाटक में बीरबल द्वारा [illegible] की [illegible] का मंदिर अन्त में देते हैं, [illegible] का मंदिर में [illegible] द्वारा [illegible] विश्वनाथ [illegible] देते हैं।

[illegible] तथ्यों का अन्तर्विरोधी प्रभाव इनके [illegible] पर पड़ता है। इस प्रसंग में सर्वाधिक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि यहाँ नाटक का सारा [illegible] बुनियादी तौर पर [illegible] की अपेक्षा [illegible] पात्र-विन्यास के समीप आ गया है।

कथा और चरित्र विधान में यह [illegible] —आदि मध्य और अन्त, बल्कि उपसंहार तक फैली हुई है और नाटकीय गति में यह [illegible] और [illegible] कार्यों को परिणतियों में।

इस तथ्य की पहचान इन नाटकों के पात्र-विन्यास और दृश्य-योजना से होती है। चाहे पारंपरिक-ऐतिहासिक नाटक हो चाहे सामाजिक, अंक अथवा दृश्य-विधान बिलकुल कथा-साहित्य-सा (नाट्य) होता है। कुछ पात्रों को सामने रखकर दृश्य बदले जाते हैं, कथित एवं [illegible]—रंगमंच को [illegible] में रखकर नहीं।

'पुरुष का रहस्य' नाटक [illegible] का पहला अंक और दृश्य:

"[illegible] किनारे दुमंजिला [illegible]। बंगले में [illegible] तक [illegible] जमीन। उसमें छोटा-सा [illegible]। सड़क से बंगले तक [illegible]। इसपर उगे हुए [illegible] और घास। बंगले की [illegible] के दोनों ओर फूलों के पौधे [illegible] का क्या कहना, पौधों की [illegible] भी [illegible] नहीं है। [illegible] तक तो बंगले की [illegible]। बंगले की [illegible] देखने से यही लगता बंगले की बनावट अच्छी है [illegible] बंगले की है।

"[illegible] हो रही है। डूबते हुए सूरज की किरण बंगले के ऊपर वाले कमरों के [illegible] और खिड़कियों के शीशे पर [illegible] चमक पैदा कर रही है। गर्मी का दिन है। [illegible] शाम होने पर भी अभी गर्मी [illegible] नहीं हुई है।"

यह दृश्य-विधान निश्चय ही पाठक की कल्पना के लिए है ठीक जैसे

कथा-साहित्य में होता है। देश काल, परिस्थिति [illegible] कुछ चरित्र-कथित। क्योंकि ये तत्व नाटक के जीवन में एकमेकित नहीं होते [illegible]। इनके उदाहरण जब हमने चरित्र की अवतारणा होती है, तो उनकी अनुरूप चरित्र के बारे में भी इसकी चाहत। पाठक को बता दी जाती है :

"इस व्यक्ति का नाम [illegible] शर्मा है। शायद सन् 1921 में अच्छे नाटकों के साथ [illegible] पास किया था। हिन्दी-कलकत्ती [illegible] सगि-तेशन भी हो गया था। लेकिन आपने असहयोग की लहर में इस्तीफा दे दिया और दो वर्ष के लिए जेल गए।" ('पृथ्वि का रहस्य', पृष्ठ 31)

"[illegible] इन्हीं थोड़ा-सी चीजों से यह पता चलता है कि [illegible] साहब इस पीढ़ी के उन विकल हृदय और विकल मस्तिष्क युवकों में हैं, जिनके कि [illegible] जीवन के शोक में [illegible], चारित्र-बल या किसी [illegible] की महत्ता को [illegible] के ऊपर उठाए रहती है, और दिया है, जो प्रवृत्तियों के गुलाम हैं। [illegible] यह कि [illegible] साहब उन पीढ़ी के उन लोगों में हैं, जिनकी [illegible] पतन को [illegible] देख सकती है।" ('पृथ्वि का रहस्य', पृष्ठ [illegible])

नाटक में चरित्र जो अभिनेता के माध्यम से मंच पर जीवित खड़ा करने के उद्देश्य से निर्मित होता है, उसकी सारी चरित्रता पिछलग्गू, कुंठित उसके भीतर छिपी रहती है, जो मंच पर दर्शक के सामने [illegible] कार्यों, व्यवहारों और स्वरूप से एक-एक कर स्वतः प्रकट होने को होती है और दर्शक को इस नाटकीय चरित्र का इस तरह आत्मबोध होता है। पर इस गद्य के विपरीत यहाँ चरित्र की सारी [illegible] बताई जाती है। इसमें आगे वह क्या विचार-निर्णय करता है, [illegible] करता है, पाठक उसे पढ़ सकते हैं।

इस पीढ़ी का प्रभाव भाषा-प्रयोग में संवाद-विधान पर [illegible] होने पड़ा है।

संवाद में अभिनेता का बोध न होकर केवल एक ऐसे चरित्र का बोध है जो एक विचार, प्रस्ताव, अथवा जीवन-पक्ष का वकील है, अभ्यासी है, अध्येता और प्रवक्ता है। [illegible] भाषा शैली सर्वत्र एक समान है। उसमें बुद्धि का [illegible] आग्रह है। [illegible] विषयों के प्रायः सभी चरित्र [illegible] बोलते [illegible] हैं। इसके लिए भाषा संवाद-विधान [illegible] से भरा हुआ है :

आशादेवी : [illegible] कीजिएगा [illegible] समझा [illegible] आपने मेरी बात नहीं सुनी और चले गए।...

रमाशंकर : [illegible] है [illegible] आपको ?

आशादेवी : [illegible] ही नहीं [illegible] कब ? किस काम [illegible]...

रमाशंकर : ठीक नहीं कह सकता। [illegible] चुनाव है। [illegible] लोगों की [illegible] क्या है ? आप भी कहीं [illegible] चाहतीं...

आशादेवी : [illegible]

[illegible] ने यह [illegible] में, सब तरह के [illegible] भी लगता है कि [illegible] प्रतिक्रिया में। [illegible] यह [illegible] में संवाद में [illegible] बातें एक-[illegible] दिखाते हैं

मेरे [illegible] विधान की [illegible] विधान के नाम [illegible] कथन। [illegible] नाटक [illegible] केवल, इसके भीतर [illegible] इन नाटकों में कुछ भी [illegible] अवाध स्वतन्त्रता है [illegible] हो सका, [illegible]

* [illegible] स्वयं [illegible]
* [illegible] में [illegible] कि पात्र [illegible] जाती।
* [illegible] [illegible] देता है।

[illegible]-विधान की [illegible] चलती है।

* [illegible] हर [illegible] [illegible] हो जाता [illegible] इन [illegible] [illegible], [illegible]
* इसमें [illegible] हर नाटक [illegible] सकता है।
* [illegible] अहकम [illegible]

आजादेवी : मिलेगा [illegible] नहीं [illegible] शायद [illegible] देर [illegible]

(पुतिल का रहस्य', पृष्ठ 31-35)

इंदर्स में यह भयावह-कराल [illegible] सब तरह के नाटकों में, सब तरह के पात्रों में, सब तरह के देश-काल-परिस्थितियों में समान रूप से मिलता है। ऐसा भी लगता है कि इंदर्स अभिनय-बोध की प्रतिक्रिया में हुआ है या स्वयं की प्रतिक्रिया में। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि पारसी थियेटर की अभिनय शैली में संवाद में भावनात्मक उतार-चढ़ाव और चमक-दमक पैदा करने के लिए बातें एक-एककर बोली जाती थीं; ये संवाद उसी शैली, विराम की याद दिलाते हैं।

मैक्सिम गोर्की-स्तानि और [illegible] प्रेमी के नाटकों में कथा और संवाद-विधान की यह इतिवृत्तात्मकता, कथात्मकता सर्वत्र समान है। अंक और दृश्य-विधान के साथ एक वहीं देश-काल-परिस्थिति का कथात्मक वर्णन, चित्रण और कथन। चूँकि यहाँ नाटक में जीवनगत यथार्थपरक देश-काल-परिस्थितिगत चेतना, उसके कोणों [illegible] होकर, उसके बाहर से जोड़ा गया है, अतएव इन नाटकों में कुछ भी कहना, बताने और हर स्तर से उसे अलंकृत करने की अबाध स्वतन्त्रता है। चरित्र के बारे में तो स्तानि-स्लावस्की ने यहाँ [illegible] ही सका, उसे इन सभी [illegible] में कह दिया गया :

- चरित्र स्वयं इस [illegible] को कह देता है।
- चरित्रों में [illegible] इतनी [illegible] होती है कि पाठक [illegible] को कुछ सोचने-समझने की जरूरत नहीं रह जाती।
- [illegible] दृश्य योजना, पात्र के प्रवेश, प्रस्थान तथा उसके बारे में परिचय देने के बहाने सब कुछ पूर्वनिर्धारित कर देता है।

नाटक-विधान की स्वतन्त्रता की [illegible] पश्चिमी विद्वानों [illegible] समान रूप से चलती है :

- चूँकि हर नाटक, चाहे वह सामाजिक हो या ऐतिहासिक, अपनी रचना प्रक्रिया के अन्तर्गत ही नाटकीय औचित्य के साथ सम्बन्धित हो जाता है, इसलिए उसमें कथा, चरित्र और विषय—इन सभी दृष्टियों से एक अजब तरह की [illegible], [illegible]-यता, घटना-प्रधानता भर जाती है।
- इसमें नाटकीय अन्विति की कोई परवाह नहीं रहती, उपन्यास, हर नाटक से छलाँग-कर जिसके बारे में कुछ भी कहा जा सकता है।
- नाटकीय कार्य और प्रभाव-एकता की उपेक्षा से इसमें संवाद, अनुक्रम कभी एक में से एक निकलते रहते हैं, और कभी

सहसा स्वतन्त्र ढंग से किसी पुरोहित पर ध्यान दिए बैठा कर लिए जाते हैं।

* लेखिकों की वंशवृक्ष (स्त्रीलाभ्य) प्रकृति के कारण। प्रवेश-प्रस्थान कराने के लिए बड़ी पूरी आजादी है।

पारसी थियेटर में दृश्य-विधान, कथा, नाटक तथा संघर्ष के विकास के अनुरूप इस तरह होता जाता था कि जब एक दृश्य हो रहा है, तब तक उसके पीछे का दृश्य तैयार हो रहा है, उसीके अनुसार और पीछे और पीछे [illegible] अंक की समाप्ति तक यही 'ड्रामा' मिलता है, वहाँ [illegible] के बाद एक [illegible] लुकाव चलता रहता है और एक अंक की समाप्ति पर [illegible] 'ड्रामा' ही पूरा फिर जाता है। अंधे और पुतली के लिए उस दृश्य को [illegible] देना पड़ता था। [illegible] को [illegible] है, [illegible] तब और [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] और [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible]

और कथात्मक सुख दिया है, दूसरे यह बुद्धि और तर्क को सन्तोष देने वाला है। यह संसार उतना ही बड़ा और मौलिक भी है, जहाँ लगता है कि नाटककार अपनी बुद्धि से अपने बाहर भीतर के संसार और यहाँ की वस्तुओं में व्यापार सम्बन्ध स्थापित करता है।

मेहदी और प्रेमी का नाटक भावुकता और विचार की दुनिया में से पैदा हुआ है। मेहदी के सारे ऐतिहासिक नाटक इतिहास और विचार की पृष्ठभूमि में रचे जाते हैं :

'इस नाटक को लिखने में मुझे निम्नलिखित ग्रन्थों से सहायता मिली है— 1. कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, प्रथम भाग, 2. दि हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ इण्डियन पीपुल या दि एज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी, दूसरा भाग, 3. डाक्टर भण्डारकर कृत अशोक, 4. डाक्टर राधाकुमुद मुकर्जी कृत मौर्य एण्ड पोस्ट मौर्य एज तुलसीदास' ... आदि आदि।

ये पुस्तकें तो इतिहास-ग्रन्थ हैं, जो नाटक के रूप में लिखे गए हैं :

'वस्तुतः नाटक की रचना अशोक की जीवनी ... की गई है ... इसका न तो कोई पात्र काल्पनिक है और न कोई घटना।'[1]

प्रेमी का नाटक मेहदी की अपेक्षा न केवल ... के कारण ... नाटक पर ... आगे है तथा ... ।

पारसी थियेटर और नाटक के ... एक ... नाटकों की ... नाटकों ... । ... रंगमंच के ... ।

जीवन ने ... सम्पन्नता और बुद्धि की दुनिया में जाकर रहने की अभिलाषा होती है, ठीक उसी प्रकार रंगमंच ने कल्पना नाटक नाटक के 'जगत्' में भटकने की विवश होता है।

किन्तु दूसरी ओर यह भी उल्लेखनीय है कि इन नाटककारों ने जिन आदर्श और शिल्प के मिश्रण का

- कथानक रूप (मिश्रजी)
- नाटकीय रूप (प्रेमी)
- सांस्कृतिक रूप (मेहदी)

अपने नाटक-संग्रहों में उठाया है वह नाटक-लेखन की उपयुक्त भूमि है। इस भूमि को लेकर और अपना नाट्य-कार्य अपने नाटकों के अनुसार प्रसाद, मिश्र, प्रेमी और मेहदी ने किया। मिश्रजी ने सारी समस्याओं के प्रति तेजी सक्रियता और हीनभाव से भी नाटक को मजबूत करता है।

चेतना के स्तर पर स्वभावतः यह इस काल राष्ट्रीय चेतना का काल है। इस चेतना के विभिन्न रूपों को नाटक का विषय बनाना इस नाटक की प्रमुख विशेषता है। मिश्रजी ने इसीके परिदृश्य में ... ।

1. 'अशोक' मेहदी, भूमिका ।
2. वही

तीसरे बुद्धिवादी ढंग से देखा है और भारतीय जीवन की मानवीय एवं सामाजिक [illegible] दिया है।

इस काल में कुछेक और नाटकों का उल्लेख आवश्यक है :

* आनन्द प्रसाद खत्री का 'जीवन व्रत' (1922)
* माधवलाल चतुर्वेदी का 'कृष्णार्जुन-युद्ध' (1914)
* रामनारायण मेहता का 'कोल्हापुर' (1919)
* विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' का 'भीष्म' (1918)
* मैथिलीशरण गुप्त का 'अनघ' (1925)
* गुरुभक्त का 'अजामिल' (1922)
* गोविन्दवल्लभ पंत का 'वरमाला' (1925), 'राजमुकुट' (1935)
* नेमन शर्मा 'चंद्र' का 'पहला पत्ता' (1941)
* प्रेमचन्द का 'कर्बला' (1924)
* जयशंकर प्रसाद, मिश्रबन्धु का 'अरुण प्रतिज्ञा' (1928), उदयशंकर भट्ट का 'मुक्तिदूत' (1931), 'विक्रमादित्य' (1933), 'मत्स्यगन्धा' (1937), 'अन्धायुग' (1937)
* चन्द्रगुप्त विद्यालंकार का 'अशोक' (1935)
* कैलाशनाथ भटनागर का 'कुणाल' (1937)
* भृंग का 'जय पराजय' (1937)
* परिपूर्णानन्द वर्मा का 'रानी कथानी' (1938)

के सारे नाटक स्वदेश प्रेम, राष्ट्रीय चेतना, राष्ट्रीय एकता के ही विषयवस्तु के आधार पर लिखे गए हैं। इनमें कुछ ऐसी कालिक सामाजिक समस्याओं को है, जहाँ इस काल के अनेक लेखकों ने (नाटककारों ने) सामाजिक समस्याओं पर सीधी चोट की है और उनके समस्त सुधार वाली प्रवृत्ति को स्पष्ट स्वर दिया है।

अब प्रश्न है, इस काल में इतना सारा नाटक-लेखन क्योंकर हुआ? बहु-विज्ञापित नवोदय का मानने है कि यह राष्ट्रीय चेतना और आन्दोलन का प्रत्यक्ष लेखित काल है। और नाटक इस चेतना और आन्दोलन को सम्प्रेषित करने का अत्यन्त प्रभावपूर्ण माध्यम था।

पर जितना अधिक नाटक-लेखन और नौटंकियों द्वारा नाटक-प्रदर्शन इस पूरे काल में हुआ है, उसके अनुपात में इतना तर्क बराबर नहीं लगता। क्योंकि समस्याओं तथा विशेषकर 'नारों', 'मूल्य' के व्यक्तित्व तथा साधनों के प्रति इस काल का दृष्टिकोण सर्वथा बदला हुआ है।

दरअसल यह पूरा काल, राष्ट्रीय आन्दोलन का वह काल है, जिसका नेतृत्व गांधीजी कर रहे थे। उन्होंने स्वराज्य-आन्दोलन को सर्वथा एक मानववादी

रूप दिया। इसीलिए [illegible] पत्रकारों, व्यापक सुधारवा[illegible] केवल उद्बोधन का [illegible] शान्ति-चिन्तन में अभिव्य[illegible]

बड़ी मात्रा में [illegible] मिश्रबंधु से लेकर [illegible] उद्बोधन, जोश, भावुक[illegible] सांस्कृतिक [illegible] में हैं

ये नाटक बहुत आ[illegible] विद्यालयों में [illegible] 'पाठ्यक्रम' होता [illegible] आन्दोलन में [illegible] संघर्ष [illegible] में सामने आया है। [illegible] अपने [illegible] के [illegible] के भीतर [illegible] काफी चाहता है, और [illegible] उसी [illegible] 'शांति' [illegible] होकर [illegible] सुधार और [illegible] डालकर स्वयं के [illegible] 'चन्द्रगुप्त', 'देवसेना', [illegible] 'मूर्तीकार', [illegible] हास और कल्पिताओं [illegible] के मानव-प्रतीक, [illegible] रहा था और [illegible] चेतना से जोड़े हुए था

दूसरी ओर इस पूरे [illegible] साथ राष्ट्रीय चेतना के भीतर [illegible] पूरी मात्रा [illegible] था। आगा हश्र, राधेश्या[illegible] दर्शकों के लिए आकर्षण के [illegible] भयानक प्रतिस्पर्धा थी।

कर दिया। इसीलिए भीतर से दो नई कृतियाँ राष्ट्रीय चेतना से जुड़ी थीं—पहली, आदर्श सुधारवाद की; दूसरी, सामाजिक-नैतिक क्रान्ति की। यह पूरा काल उद्बोधन का काल है। समाज के हर स्तर का आदमी इसी 'सुधार' और क्रान्ति-चेतना से अभिभूत था।

यही सामाजिक क्रान्ति-चेतना नैतिक और सुधारवादी इन दोनों स्तरों पर मिश्रणों से लेकर इस पूरे काल के सामाजिक नाटकों में है। वही क्रान्ति, सुधार, उद्बोधन, जोश, भावुकता राष्ट्रीय आन्दोलन-स्तर पर, समस्या ऐतिहासिक और सांस्कृतिक नाटकों में है।

ये नाटक बहुत व्यापक स्तर पर पढ़े जाते थे। स्कूल कालेजों, विश्वविद्यालयों में पढ़ाए जाते थे। (और अब तक पढ़ाए जा रहे हैं।) इनमें इतना पाठ्यपन्थ होना भी अनिवार्य हुआ। चरित्र निर्माण के पीछे व सारे राष्ट्रीय आन्दोलन के तत्त्व कार्यरत थे, इसी पाठ इतने कथात्मक और सम्पूर्ण हैं। इनमें सपाट व्यापक स्तर पर है तभी इनमें तोड़ना कम है और संघर्ष स्पष्टोक्त रूप में सामने आया है। ज्यादातर संघर्ष सम्प्रदाय वालों में है, और पात्रों के अपने-अपने निजी पक्ष बहुत मजबूत और दृढ़निश्चय हैं। यह सारा तथ्य उस काल के पाठक समाज और श्रोता का सत्य है। जो व्यापक मानव-नाटक पूरे भारतवर्ष के भीतर गांधी और नेहरू ने अनुभूत किया और पाया कि कालखण्ड परिवर्तन, करना चाहता है, और इस सोच ने उन्हें देश का गांधी-जवाहर बनाया, वैसा उसी स्तर पर इस समाज ने अपने-अपने ढंग से इसी परिवर्तन, उसी 'शांति' की इतनी व्यापक नाटक-अभिव्यक्ति दी कि उन्हें अन्तर्विषय होकर रही रही। क्योंकि उस पूरे काल का समाज, मनुष्य अपनी-अपनी दासता, मुक्ति और मोक्ष के राष्ट्रीय आन्दोलन की तरह में पत्र-पुष्प, तन, मन, धन डालकर स्वयं के अस्तित्व को गौरव दे रहा था। 'अशोक', 'हर्ष', 'चन्द्रगुप्त', 'चन्द्रगुप्त', 'देवसेना', 'कर्णवती', 'भारती', 'मालावती', 'पद्मावती', 'पद्मावती', 'पुनीतक', 'लाल', 'ईशा', 'बुद्ध', 'शिवाजी', 'अशोक' एक और गौरवपूर्ण इतिहास और क्रान्तिकारी समाज के पात्र हैं। दूसरी ओर ये इस काल के इतिहास के भावात्मक, तीसरे इनके माध्यम से नाटककार अपने-अपने ढंग से रख रहा था और इस जीवन काल में अपने-अपनी इतनी भावनात्मकता, बौद्धिकता से जोड़े हुए था।

दूसरी ओर इस पूरे काल में समानान्तर रूप से पारसी थियेटर अपने अर्थ-मार्गिक रंगमंच के साथ भी रहा था। वह रंगमंच भी अपने अनोखे ढंग से इसी राष्ट्रीय चेतना के भीतर से पैदा हुई सारी भावनाओं को अपने 'नाटक' में पूरी मानवता, गान, तान तथा पूरे रंग चमत्कार के साथ इस्तेमाल कर रहा था। आगा हश्र, राधेश्याम, 'बेताब' के नाटक पूरे हिन्दी-भाषी क्षेत्र के दर्शकों के लिए आकर्षण-केन्द्र थे। इनमें आगा हश्र के साथ हिन्दी के लेखकों की भयानक प्रतिस्पर्धा थी। हिन्दी-उर्दू के सवाल को भी लेकर परस्पर तनाव रहता

था। शायद इसी प्रतिस्पर्धा और प्रतिक्रियात्मकता आगे चलकर प्रेमी ने अपने ऐतिहासिक नाटकों के मुसलमान चरित्रों ने भी उर्दू बोलवाना छुड़ा दिया। यह दुर्भाग्य की ही बात कही जाएगी कि पारसी थियेटर मुख्यतः हिन्दी-भाषी क्षेत्र में पनपा, वह हिन्दी जनता के लिए किया गया, फिर भी हिन्दी ने अतिशुद्धि के कारण उसे हिन्दी का, अपना नहीं स्वीकार किया और रंगमंच-दर्शक, रंगमंच-नाटक, विषयवस्तु और नाटक, पात्र और दर्शक, व्यवहार और सांस्कृतिकता के बीच दूरियाँ एकदम वर्षों का अन्तराल पैदा कर दिया।

उस पूरे काल में हिन्दी नाट्य-लेखन के समान ही पारसी थियेटर की प्रतिक्रिया, प्रकाश और सांस्कृतिक चेतना के फलस्वरूप असंख्य प्रतीकात्मक अव्यवसायिक नाट्यदल तैयार हुए, छोटे, मंझले और भारी साधनहीनता के बावजूद लगातार उत्साही और नाट्य-प्रदर्शन करते रहे। हिन्दी भाषी क्षेत्र में इतना रंग-उत्साह शायद कभी नहीं देखा गया, पर यदि साहित्यिक नाटककार, समाज के नेतागण इस व्यापक उत्साह-प्रवाह को न दिशा दे सकें, न उसके दुष्परिणामों से उसे बचा सकें, एकदिन यह पारसी थियेटर की तरह रंग-उत्साह हमारी जिन्दगी का घर और नहीं बन पाया, जो हमें बराबर दे बंगाल, महाराष्ट्र और गुजरात में उनकी संस्कृति का सहज, अभिन्न अंग बन गया। वह मात्र नाट्य और रंगमंच साधनहीन, संगठनविहीन और प्रायः निरुद्देश्य ही अग्रसर नहीं रहा, बल्कि अपनी दुर्भाग्यपूर्ण मृत्यु या अमंगल, अवसान छोड़ गया। यह आगे एक सांस्कृतिक युग के रूप में हिन्दी-भाषी क्षेत्र में प्रेत की तरह आ गया और जो अब तक हिन्दी अंचल में विद्यमान है और हमारे नाट्य-उत्साह और रंगकर्मी को समुचित रूप से पनपने से रोके हुए है।

मैं व्यक्तिगत रूप से उस व्यापक संस्कारहीन नौटंकी, हिन्दी रंगमंचीय कार्यकलाप की उस काल की सबसे बड़ी उपलब्धि मानता हूँ, जिसकी अब भरसक चर्चा करते हुए शिशु-विस्मृत जैसा आनन्द मेरे भीतर उमड़ता है और भर आता है।

इस काल की प्रगति की गहराई में जाकर पाँचे देखा जाए तो राष्ट्रीय चेतना के अतिरिक्त ही कोई महत्वपूर्ण कारण नहीं है विकास की रहा था। उस काल में राजनीतिक और आर्थिक उन दोनों कारणों से अंग्रेजी शासन की ओर से दोनों शोषण का चक्रव्यूह चल रहा था, उनसे उस विकसित और हुए महत्वपूर्ण तथा विशेषकर बुद्धिजीवी का ध्यान एक ओर राजनीतिक उथल-पुथल की ओर गया, दूसरी ओर वह जीवन के प्रति एक उद्दाम दृष्टि लेकर चला—नयी गुदगुदाहट, नयी विद्रोहमय और नयी वैज्ञानिक स्वतंत्रतामय होकर।

उस समय नव-उत्थान महानगर नहीं बन पाए थे, न ऐसा कोई व्यापारिक या औद्योगिक शिल्प ही था जब, जिसके सहारे बुद्धिजीवी मजदूरों से एकत्र होता और नाटक-रंगमंच जैसे सामूहिक प्रयास के लिए अवसर देता। उस समय

प्रयाग में माधव शुक्ल ने सौखिन हिन्दी रंगमंच की स्थापना की, लेकिन उन्हें जीविकोपार्जन के लिए कलकत्ते जाना पड़ा। इस तरह के अनेक उदाहरण हैं, जहाँ प्रयाग, काशी, कानपुर, मथुरा, लखनऊ, आगरा, नागपुर, दिल्ली और कोई में हिन्दी नाटक-मण्डली किसी स्थानीय बड़ी हस्ती के दुःख और मरना एक बिन्दु पर आकर स्थिर गया। उन्नीसवीं सदी का या तो लोकरुचि के लिए उपयोग-उपहार अपनाना पड़ा, नहीं तो उन्हें किसी राजनीतिक आन्दोलन के घर बनाया। इस तरह इस काल में असंख्य नौटंकियाँ नाटकमंडल बने, उनका रंगमंच कार्यक्रम बना हुए, पर कहीं पारसी थे, तथा हिन्दी-क्षेत्र की एक विशाल सांस्कृतिक कमाई ने, रंगमंच की जड़ों को इस तरह गहरी और अपनी सांस्कृतिक पहचान का अवसर नहीं दिया जैसे बंगाल, महाराष्ट्र और गुजरात में सम्भव हुआ।

हिन्दी क्षेत्र का दर्शक मनोरंजन पुराण-पारसी थियेटर, विशेषकर न्यू अल्फ्रेड और ओ-पेरा के तथा पारसी नाटक में बड़ी लगाव मंडलियों के प्रदर्शन देख रहा था। सौ की भूमिका अब स्त्रियाँ निभा रही थीं, नाच अब थियेटर के अंग के रूप में आने लगे थे। दर्शक मनोरंजन को इससे कोई परहेज नहीं था। पर ईसाई-हिन्दू सांस्कृतिक चेतना और आजादी की लड़ाई दीक्षा लेने वाले इन प्रदर्शनों के प्रति बुद्धिजीवियों में विरोध था। विशेषकर रंगमंच के अवसरों पर कलकत्ता-मंडल नाटक-प्रदर्शन शुरू हुए और यह क्रम इसी तरह चला।

इस प्रसंग में प्रयाग की एक मण्डली का उल्लेख करना है। नाम लक्ष्मी ललित कला मण्डली। इस मंडली के संस्थापक थे एक बालकवि भट्ट के सुपुत्र पं० लक्ष्मीनारायण भट्ट, मालवीय जी के सुपुत्र पं० रमाकान्त मालवीय, बेनीप्रसाद गुप्त, बेनीप्रसाद बनर्जी आदि। इस नाटक मंडली ने 'पाण्डवविजय नाटक' के अलावा एक मौलिक सुन्दर प्रयोग 'सीता स्वयंवर' नाटक, और भारतेन्दु के 'नील देवी' जैसे नाटकों की विशेषी बात किया। आगे रामानुशासन की 'पद्मावती' प्रकाशन मण्डल गया।

इस मण्डली के संस्थापक प्रयाग, काशी, कानपुर, लखनऊ में हिन्दी-नाटक मण्डलियाँ बनीं। अच्छे-अच्छे घरों के युवक इसके अंग बनने लगे। लड़के ही स्त्रियों की भूमिकाएँ करते रहे। दर्शकों को आकर्षित करने के लिए नाट्य-प्रदर्शन के पहले कोरस-सम्मेलन और गुलाबी रंगे जाते, प्रहसन जैसे जाते। हिन्दी साहित्य सम्मेलन अपने अधिवेशनों के उपलक्ष्य में विभिन्न नगरों में हिन्दी में नाटक लिखवाने शुरू किए। नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से भी नाटक लिखने शुरू हुए। श्यामसुन्दरदास, शिवपूजन सहाय, पं० माधव शुक्ल जैसे अनेक साहित्यिक व्यक्तियों ने हिन्दी-रंगमंच को पहचान दिया। विश्वविद्यालयों, कालेजों, स्कूलों में भी प्रायोगिक रूप में नाटक खेले गये।

1. देखिए, शिवपूजन सहाय का लेख, 'गावपुरी', अलवर, पृ० 10, 1934 (पूरी पुस्तक 1 से 1934 तक)

इस रंग-वातावरण का व्यापक प्रभाव पड़ा। नाटकीय चेतना से ओतप्रोत नथा हिन्दी-प्रेमियों की सद्भावना-सहयोग से जगह-जगह कुछ उल्लेखनीय नाट्य-संस्थाएं बनीं :

* कलकत्ता की 'नागरी नाटक मंडली'
* कलकत्ता का 'भारतेन्दु नाट्य समाज'
* काशी की 'हिन्दी नाट्य मंडली', 'नटराज', 'नागरी प्रचारिणी सभा', 'नागरी नाटक मंडली'
* काशी की 'भारतेन्दु नाट्य मंडली'
* पटना का 'हिन्दी नाट्य समाज', 'हिन्दी नाट्य मीमांसा'
* प्रयाग की 'रामलीला नाटक मंडली'
* प्रयाग में प्रो० रायप्रसाद द्वारा संचालित कायस्थ पाठशाला की 'नाटक प्रिय मंडली'
* जयपुर की नाट्य समिति
* आरा की 'मनोरंजन नाटक मंडली'
* मुजफ्फरपुर की 'नवयुवक समिति'
* लाहौर की 'शारदा नवयुवक समिति'
* लखनऊ में 'अवध नाट्य मंडल'
* फैजाबाद में 'रामलीला नाटक समाज,' 'कला मंडल'
* कानपुर की 'उन्नतशील समाज', 'नागरी नाटक'
* बरेली में 'पनवा बाजार नाटक मंडली'
* मेरठ के 'नाटकीय भावों के उपरान्त' तथा 'भारत समाज'
* आगरा में 'हिन्दी नाटक समाज'
* मथुरा में 'हिन्दी नाट्य परिषद्'

इस तरह का सर्वत्र सोत्साह नाट्य-संचार पूरे हिन्दी-भाषी क्षेत्र में छा गया। इन नाट्य-संस्थाओं के प्रदर्शन एकाकी भी हुआ करते थे। विशेषतः, सार्वजनिक पर्वों और सामाजिक उत्सवों के अवसर पर नाट्य-प्रदर्शन आयोजित रूप से होते थे। इनमें ऐसे ही नाटक खेले जाते थे, जिनके विषय राष्ट्रीय चेतना अथवा समाज सुधार हों। संवाद-शैली और प्रदर्शन का ढांचा पारसी थियेटर से ही ग्रहण किया जाता था। इन नाट्य मंडलियों में 'पैनाथ', राष्ट्रीयता और देश के भी अनेक नाटक खेले गए—पर काट-छांट करके। डॉ० एल० राय के सारे रोमांटिक-ऐतिहासिक नाटक खेले गए।

काशी में बाद को 'नागरी नाट्य कला मंदिर' 'प्रवर्तक मंडली,' 'भारतीय महामंडल' और 'भारतेन्दु नाट्य मंडली' में जो नाट्य-प्रदर्शन हुए, उनमें दृश्य-सीनरी बनवाने का काम पीला प्रेस के प्रसिद्ध चित्रकार टी० के० और सी० के० मिश्रा से लिया जाने लगा और पारसी रंगशैलियों का भी बड़ी उदारता से ग्रहण किया गया।

इन लोकप्रिय हिन्दी नाटक-मंडलियों की स्थापना, प्रदर्शन तथा अभिनय की शैली का अन्दाज लगाने के लिए इस काल के अभिनेता, निर्देशक और उत्साही संचालकों की लोकप्रियता लिए 'नाटकों' का एक विचार ही पाठ का सकता है।

[illegible] नाटक कंपनियां पेशेवर पारसी थियेटर की भद्दी नकल हैं। भद्दापन इसलिए कि परदेशियों की यह चुहलबाजी, यह मस्ती, यह प्रोफेशनल रंगमंच की यहां नहीं होती, केवल हाव-भाव और अंग-मुद्रा के बेतरतीब संचालन, वेशभूषा तथा उच्चारण की तोड़ी बहुत स्थूल अवस्था की जाती है। इसमें भी विलास, विलासकुमार एवं नकल संचालन का प्रयोग अधिकतर देखने और बेढंगे ढंग पर किया जाता है। [illegible] होने के कारण इसको (पारसी 'थियेटर की') और भी भद्दी नकल कहा जाता है। थियेट्रिकल कंपनी की तो और भी मट्टीपलीद हो [illegible] वेशभूषा की भी भद्दी नकल की जाती है। [illegible] अंग्रेजीपन 'हिन्दी भाषा-भाषी इलाका (बंगला, अंग्रेजी वाचिक अभिनय) अनुकरण अधिक करता है। साधारण बातचीत में भी खाल्यानुवाद ढंग से बातचीत करते हैं। [illegible] इसमें भी बड़ा आवेग और प्रवाह है, किन्तु अस्वाभाविकता में [illegible] नहीं है। कुछ इस तरह के पात्र हैं, जो [illegible] करते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ [illegible] मंडलियों में [illegible], [illegible] और [illegible] कम [illegible] लिये जाते हैं।

पारसी थियेटर और [illegible] के तीखेपन [illegible] की और [illegible] की परस्पर तुलना से इस काल की [illegible] और [illegible] स्पष्ट हो जाती है। पारसी नाटक और [illegible] की [illegible] में जो हिन्दी नाटक लिखे गए उनके [illegible] के कारण [illegible] हुआ। [illegible] उर्दू-[illegible] होने की से हिन्दी नाटक की भाषा [illegible] के आग्रह से [illegible] हुई। एक [illegible] में [illegible] हुआ, दूसरे की भाषा में [illegible] आ [illegible] पारसी थियेटर में ही किया गया। [illegible] के अपने [illegible] के [illegible] और [illegible] किया। [illegible] के [illegible] अपनी [illegible] से न तो [illegible] दे सके न [illegible] हो।

[illegible] पारसी थियेटर [illegible] था, तथा प्रदर्शन के बाद [illegible] प्रवृत्ति थी।

[illegible] के प्रसंग में [illegible] कहा जा सकता

[illegible]

है कि यह युग काल जहाँ एक ओर पारसी थियेटर का स्वर्णकाल था, वहीं उसीकी छाया में किसी नाटक और उसका शैक्षिया रंगमंच विकसित हुआ। इस विधान को छोड़कर भारतीय नाट्य-परम्परा में कोई नई रंग-शाला, भारतेन्दु के बाद से इस काल तक नहीं हुई। रंगमंच-सेवा में न अपना कोई महत्त्व-पूर्ण योजना हुआ न निर्देशक—यहाँ तक कि कोई एक भी ऐसा रंग-मर्मज्ञ तक नहीं प्रकट हुआ, जो इस काल के समूचे रंगमंच को किसी भी दृष्टिकोण से देखता। यहाँ तक भी न हुआ कि पारसी थियेटर और हिन्दी शौकिया रंगमंच कार्य-कलापों का कुछ लेखा-जोखा रखता, या मात्र तथ्य-संग्रह ही कर सकता।

रंगमंच-जगत् से इतना उदास, कटा हुआ और अपने पलायित रूप हिन्दी नाट्यशास्त्र ने अपनी रंग-प्रतिक्रिया केवल नाट्य-लेखन तक ही सीमित रखी, और उसमें इसने पूरे राष्ट्रीय चरित्र को, साथ ही पूरी सामाजिक चेतना को, अभिव्यक्ति दिया। आशा-निराशा तथा विद्रोह-क्षोभ की भावुक अभिव्यक्ति देनी पड़ी।

परिशिष्ट-1

हम कुछ ऐसे नाटकों के सारांश प्रस्तुत कर रहे हैं, जिनसे पाठकों को यह अनुभव हो सकेगा कि पारसी नाटक का रचना-विधान व्यावहारिक रूप से कैसा था। इस परिशिष्ट में जिन नाटकों के सारांश दिए जा रहे हैं उनमें केवल दृश्य, कथा, संगीत और काव्य के ही उदाहरण हैं। उन गानों और नृत्यों की कोई सम्भव सम्भव नहीं है जो इनके भीतर रखे जाते थे। प्रायः प्रत्येक अंक में दो गाने होते थे जिनमें कुछ गाने नृत्य के होते थे, कुछ एक स्वर और कुछ बहुत स्वरों के।

आइए हम उनके उस रंगमंच की एक गंभीर नाटकों के सामने आएँगे।

इन तीनों नाटकों के नाट्यसार यहाँ दिए जा रहे हैं। पहला नाट्यसार पारसी थियेटर के प्रथम चरण, जब रंगमंचीय के नाटकों का भारतीय करण होता था, तब के एक नाटक का है। दूसरा नाट्यसार उस नाटक का है जब मौलिक रचना होनी थी और तीसरा वह नाट्यसार है जिसका नाटक पारसी थियेटर के उत्कर्ष-काल के बाद यहाँ विकसित हुआ था।

[illegible] थियेट्रिकल कम्पनी
(आज बम्बई)
प्रसिद्ध नाटक लेखक
[illegible] मुन्शी [illegible] साहब
[illegible] का [illegible]
[illegible] के आधार पर
[illegible]
[illegible]
[illegible] का खुलासा।

वहमी जंगी

[illegible] आलो,

इस ड्रामे के गाने की तर्जे बम्बई जमा [illegible] और [illegible] उस्ताद [illegible] [illegible] की बनाई हुई हैं जिनकी बनाई हुई तर्जे [illegible], महाभारत, रामायण के [illegible] में हैं।

प्रथम अंक

[illegible] इस [illegible] दृश्य को [illegible] में [illegible] [illegible] हैं। [illegible] दिखावटी [illegible] [illegible] [illegible]

साथ आता है। शातिर शेरदिल के साथ अपनी अदावत का कारण बयान करने के बहाने जरनिसार से सम्बन्ध करने का वादा करके बहलोल से 1000) ऐंठ लेता है। जरनिसार के आगमन का हाल सुनने के लिए दिलावरजंग के मकान पर आने की राह बताता।

5. दिलावरजंग का अपूर्व स्वप्न—शातिर के जगाने से बहलोल का शोर मचाना दिलावरजंग हाल पूछता है। बहलोल जरनिसार का हाल सुनाता है। दिलावरजंग सुनकर क्रोध करता है और बहलोल के साथ शेरदिल की खोज में जाता है।

6. शेरदिल का सुन्दर मकान—दूसरे शातिर का ख्याल है कि शेरदिल मेरी जोरी मकैदा पर आशिक है- इसलिए बदला लेने का इरादा पक्का करता है- प्रकट सामना होने ही शेरदिल की खैरख्वाही करता है। शेरदिल जरनिसार के भगा लाने की वजह से दरहाल अफसोस करता है। शातिर नसीहत देता है। दिलावरजंग दुष्ट सिपाहियों को लेकर शेरदिल को गिरफ्तार करना चाहता है। वह गिरफ्तार नहीं होता। दिलावरजंग बादशाह के पास फरियाद करने जाता है। बादशाह के याद करने पर शेरदिल दरबार को जाता है। दरबार का अपूर्व दृश्य।

7. आज दरबार। वेनिस के राजा राजभक्त प्रजा की अरज सुनते हैं। साइप्रस की लड़ाई और वहाँ की बहादुरी से राजा चिन्तातुर होते हैं। शेरदिल सेना की कमान होता है। दिलावरजंग शेरदिल की शिकायत करता है। जरनिसार अपना नाजायज प्रेम प्रकट करके शेरदिल को गिरफ्तार बनाती है। जिन्दगी-भर उसके साथ रहना चाहती है। बादशाह स्वीकार करता है। शेरदिल साइप्रस के सूबेदार बनाया जाता है। (पर्दा गिरा)

द्वितीय अंक

1. साइप्रस की नदी का किनारा—बड़ा सुन्दर दृश्य है। शेरदिल अपने नायब सज्जाद तथा जरनिसार वगैरह के साथ जहाज से उतरकर वहाँ की प्रजा की बन सरदार का मिल जाना है जो साइप्रस पर हमले किया करता था। सब खुश होते हैं।

2. रास्ता—प्रेम की अदीबल बहलोल की [illegible] होती है। शातिर उस सिपाहियों से बचाकर सज्जाद के रास्ते से लेकर तैयार करता है।

3. किला—यह किला नदी के किनारे है। सूबेदार सज्जाद—शातिर के बहकाने से नाजायज अपने शराब में बदल हो जाता है। बहलोल अपने मालिक अच्छा है। पुराने किलेदार अच्छाई और बुराई बताना चाहता है। सज्जाद के हुक्म से वह कैदी होता है। शेरदिल सज्जाद को गिरफ्तार देता है। शातिर सज्जाद को जरनिसार के पास सिफारिश के लिए भेजता है और खुद जरनिसार को दूसरा प्रलोभन देने की तदबीर सोचता है।

4. गज्जाद सिफारिश चाहता है—जरनिगार जायदा कर उसे विदा करती है। शातिर शेरदिल को बहकाता है, कि गज्जाद का जरनिगार से कुछ सम्बन्ध है। जरनिगार आती है; शेरदिल उपेक्षा करके सिर के दर्द का बहाना करता है। जरनिगार शादी का रूमाल बांधना चाहती है जो शिवा पति के किसीको नहीं दिया जाता। शेरदिल रूमाल फेंककर चला जाता है। मईदा रूमाल उठाकर शातिर को देती है। शातिर उसी रूमाल को अपने काम का साधन बनाता है।

5. हलीम—यह बड़ा बेवकूफ हीजड़ा है। बहलोल जरनिगार की मुहब्बत में विचार बांधता हुआ आता है। हीजड़ा पुष्प प्रीति-चषक करके स्वागत करता है।

6. शेरदिल का पतन—शेरदिल शातिर से जरनिगार की दुष्टता का प्रमाण मांगता है। शातिर गज्जाद के पास रूमाल दिखाने का वादा करता है।

7. बोध—वह शातिर शैतान है। शेरदिल जरनिगार की रूमाल न लाने का कारण गलीचे बदकार समझता है। (द्वितीय मोड़)

तृतीय अंक

1. रूमाल—शेरदिल शातिर को गज्जाद के कत्ल का हुक्म देता है, शेरदिल को बेनिश जाकर जाने की आज्ञा मिलती है।

2. हलीम—बहलोल मेहरा बांधकर जरनिगार से शादी करने आता है। शातिर के बहकाने से गज्जाद लड़ता है। दोनों जख्मी होते हैं। शातिर के हुक्म से बहलोल पाखाने पहुंचाया जाता है।

3. हलीम—इसके पीछे पाखाना है। बहलोल का बाप बहलोल को तलाश में आता है। पाखाने की दीवार तोड़कर पागल हीजड़ा में घुस आते हैं। बहलोल का बाप बहलोल को गर्दन पकड़कर उसको घर के पास ले जाता है।

4. दृश्यांतर जनान-खाना—शेरदिल गुस्से में आता है, जैसा शिकार जरनिगार को जलाता है और वाद-विवाद के बाद उसे मार डालता है। मईदा से रूमाल का हाल जानकर शेरदिल आत्महत्या करता है, जरनिगार की दुष्टता के लिए सजा पाता है, वहम और भ्रम के फल से पतन शैली हासिल करता है।

(अन्त)

पण्डित नारायणप्रसाद 'बेताब' कृत

'रामायण'

नाटक का सारांश

जिसे

पारसी अल्फ्रेड नाटक कम्पनी के मालिक

बाबूमल्लो पालतजी नाटक

ने खेला

रामायण

प्रथम अंक

ईश्वरोपासना के पश्चात् सूत्रधार और परिपार्श्विक इस विषय पर विचार करते हैं कि रावण को दशमुख तथा बीस भुजाओं वाला बनाएं या एक मुख, दो भुजाओं वाला ? इसी प्रकार हनुमानजी को बन्दर बनाएं या एक विद्वान योद्धा ? इन गम्भीर प्रश्नों का उत्तर वाल्मीकीय रामायण के अनेक प्रमाणों से प्राप्त करके रावण को एक मुख और दो भुजाओं वाला और हनुमान को एक गम्भीर पण्डित और महावीर योद्धा बनाना ही उचित समझकर नाटक आरम्भ करते हैं।

[दृश्य]

1. सुर समूह रावण के अत्याचार से दुखी होकर विष्णु भगवान से मनुष्यावतार धारण करने की प्रार्थना करता है जो स्वीकार होती है।
2. कौशल्या देवी के गर्भ से विष्णु का मनुष्यावतार (राम-जन्म)।
3. रावण का पुष्पक विमान कैलास पर्वत पर आकर अटक गया है जिससे रावण क्रोध करके कैलास पर्वत को जड़ से उखाड़ कर समुद्र में फेंक देने की शेखी मारता है। पार्वती और नन्दीगण उसे समझाते हैं परन्तु समझाने से नहीं, कैलास के न उठने से वह लज्जित होता है और दयालु महादेव से 'चन्द्रहास' नामक तलवार प्राप्त करके जाता है।
4. सूर्यकुल में राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न का वेदारम्भ संस्कार।
5. शंकर का धनुष (शिवजी) न उठा सकने से लज्जित हो राजकुमार जनकपुरी से वापस जाते हैं (इसी तरह अनेक जा चुके हैं)।

6. ऋषि विश्वामित्र महाराजा दशरथ के पास आते हैं और अपने यज्ञ की रक्षा कराने के लिए राम-लक्ष्मण को मांगकर ले जाते हैं।
7. जनकपुरी के बगीचे में राम और जानकी की पहली प्रथम दृष्टि और प्रेम सृष्टि।
8. रामचन्द्रजी शिव का धनुष तोड़ते हैं और जनक अपनी प्रतिज्ञानुसार सीता को रामचन्द्र के साथ ब्याह देते हैं।
9. रानी कैकेयी को मन्थरा राम-राज्याभिषेक में विघ्न डालने के लिए उभारती है।
10. कैकेयी के दो वर—रामचन्द्र को 14 वर्ष के लिए वनवासी बनाने हैं और दशरथ को दुःखित करके हमेशा की मूर्छा में सुला देते हैं।

द्वितीय अंक

[दृश्य]

1. दशरथ की मृत्यु और राम-वनगमन पर अवध-वासियों का शोक।
2. श्रृंगवेरपुर में निषादराज गुह से राम की भेंट तथा वन-निवास।
3. अयोध्या की सूनी गद्दी पर राम के बदले राम की खड़ाऊँ रखने के सिंहासन से वापस होते हुए भरतजी से नारदजी का मिलन।
4. शूर्पणखा रामचन्द्र से विवाह करने के लिए दुराग्रह करती है। लक्ष्मण उसकी नाक काट लेते हैं।
5. बहन की नाक कटने से रावण क्रुद्ध होकर पंचवटी पर अत्याचारी बनकर आता है और सीताजी को हर ले जाता है।
6. नीच नगरी के प्रति राम की उदासीनता।
7. अद्भुत जाति बिल्लियों के साथ रामचन्द्र का महायुद्ध, और कर्म के अधीन वर्ण-व्यवस्था का प्रचार। हनुमानजी और सुग्रीव से रामचन्द्रजी की भेंट तथा वार्तालाप।
8. सीता की तलाश में हनुमानजी का लंका में आना।
9. अशोकवाटिका में सीता पर रावण का अत्याचार, मन्दोदरी की महानुभूति, हनुमानजी का सीताजी को राम का सन्देश पहुँचाना।
10. हनुमान-रावण-सम्वाद, हनुमान के लांगूल में आग लगाने की आज्ञा।
11. हनुमानजी का लंका जलाना।

दृश्य

तृतीय अंक

[दृश्य]

1. रावण की सभा में मन्दोदरी का जाना।
2. रावण की सभा में अंगद के प्रश्नोत्तर और पदाघोरण से लंकेश को

अर्जित करना।

3. कुम्भकरण-वध तथा मेघनाद के शक्तिबाण से लक्ष्मण का मूर्च्छित होना।
4. हनुमानजी का मृतसंजीवनी बूटी लाना, लक्ष्मणजी का चेतन होकर मेघनाद के मारने की प्रतिज्ञा करना।
5. सूर्यलंका के महल में मेघनाद की कटी हुई भुजा अपना हाल लिखती है।
6. रावण सीताजी को राम के बनावटी सर से धोखा देकर उन्हें हताश करना चाहता है कि दैवयोग से स्वयं हताश हो जाता है।
7. सुलोचना राम के पास से अपने पति का सर लाकर सती हो जाती है। रावण और कुछ न करके क्रुद्ध त्यागता है। दुर्गादेवी उसके शुद्ध भावों की साक्षी देती है। जानकी की अग्नि-परीक्षा और मनोरथ की विजय। विभीषण को लंका का राजतिलक। रामचन्द्रजी का भ्राता और स्नेही-जनों के साथ अयोध्या को वापस लौटना।
8. अयोध्या में राम-राज्याभिषेक और सानन्द समाप्ति।

इति

दि पारसी
कारपोरेशन थियेट्रिकल कम्पनी

(संक्षिप्त विवरण)
गाजी
मुस्तफा कमाल
(लेखक [illegible] 'पिंकल' [illegible])

संचालक
मि० पेसी फरामी
म्यूजिक
मा० बृजलाल वर्मा,

डायरेक्टर
मा० माणिकलाल
मीन नीलकी
मि० दीनशाह ईरानी ।

सन् 1937

गाज़ी मुस्तफ़ा कमाल

प्रथम अंक

प्रथम दृश्य

वजीरे-जंग रोशिया, सरहदी मुसलमानों को सजा देने के लिए अपनी बेटी मीना के साथ आया हुआ है। उसी समय तुर्की कमाण्डर गाजी मुस्तफ़ा कमाल पाशा का नायब रुकबत बे, कमिश्नर का अत्याचार देखने आता है किन्तु जालिमों द्वारा गिरफ्तार हो जाता है। मीना अत्यन्त मोहित हो जाती है और रूस के तुर्क मुसलमानों की रक्षा का भार लेकर उसे छोड़ देती है।

द्वितीय दृश्य

कारखाना—वजीरे-जंग मुसलमानों पर तरह-तरह के अत्याचार करता है। उसकी बेटी मीना आकर अत्याचारियों को रोकती है और निरपराध मुसलमानों को अत्याचार से बचाती है।

तृतीय दृश्य

कल्पित

चतुर्थ दृश्य

तुर्की का सेनाधिकारी शौकत पाशा, जो किसी समय सुलतान तुर्की से नाराज होकर रूस में चला आया था, अब अपनी बहादुरी की बदौलत फौजी जनरल का पद प्राप्त कर लिया था; उस समय शहंशाह जार की आज्ञानुसार दरबार में उपस्थित होने के लिए अपने बीवी-बच्चों से विदा हो रहा है।

पंचम दृश्य

तुर्की के आक्रमण का समाचार पाकर शहंशाह जार ने एक फौजी दरबार किया, जिसमें तमाम जनरल तुर्की हमलों को रोकने और उनसे मुकाबिला करने के लिए तैयार होते हैं, किन्तु शौकत पाशा अपने मुसलमान भाइयों पर हमला करने से साफ इन्कार कर देता है। हुक्म-अदूली से जार नाराज होकर शौकत पाशा को गिरफ्तार कराके साइबेरिया भेज देता है, साथ ही उसके मकान को उजाड़ने और बीवी-बच्चों को बे-सहारा फिराने की आज्ञा देता है।

षष्ठ दृश्य

कल्पित।

सप्तम दृश्य

शौकत पाशा का मकान। शहंशाह जार के हुक्म से शौकत पाशा के बीवी-बच्चों की गिरफ्तारी। (ड्रॉप)

द्वितीय अंक

प्रथम दृश्य

तुर्की छावनी। गाजी मुस्तफा कमाल पाशा शहंशाह जार को रूसियों से की मदद पर रुलाने-जब भेजता है और रूस में अड़ाने बाद जब देखे कि रूस ने बेचैन होकर इसी समय हमलावरी फौज लेकर किला पाशा की तरफ रवाना होता है।

द्वितीय दृश्य

कल्पित।

तृतीय दृश्य

शहंशाह जार के जन्मदिन का उत्सव। मीना बाजी बजाकर अलाप रही है, रूसियन से तुर्कों से युद्ध की घोषणा लेकर आता है, जिसको शहंशाह के

हुक्म से जंजीरें पहनाकर अन्दर लाने की आज्ञा मिली थी। जार रफ़अत बे के कत्ल का हुक्म देता है, लेकिन मीना अपने प्रयत्न से उसे बचा लेती है।

चतुर्थ दृश्य

मीना अपने बाप से जिद करके मैदाने जंग में जाने की इजाज़त लेती है।

पंचम दृश्य

तुर्की तुर्कों और अरबों का व्यापार, लगन और साहस द्वारा किला शत्रुम पर उनकी जीत देखकर मीना मैदाने-जंग में इस्लाम को कबूल करती है।

(ड्राप)

तृतीय अंक

प्रथम दृश्य

इसी जनरल रात के समय शीशे के हमलावर, मीना और रफ़अत बे दोनों को गिरफ्तार करवाता है।

द्वितीय दृश्य

कारागार- जार की तरफ से शौकत पाशा को चेकी और बेटी को अपना मकसद छोड़ने के लिए मजबूर किया जाता है, मगर वे दोनों इस्लाम पर पर मिटने के लिए तैयार होती हैं। जार उन्हें मासवेरिया भेजकर शौकत के सामने कत्ल करने का हुक्म देता है। (सीन ट्रान्सफर)

मासवेरिया—जार की आज्ञानुसार गार्डों पुरतक्रा कमाल पाशा जल्लाद के वेष में आकर सबको बचा लेता है।

तृतीय दृश्य

कार्निक।

चतुर्थ दृश्य

रफ़अत बे के कत्ल और मीना के पतित्रत धर्म के खतरे के समय इस्लामी लश्कर का हमला करना और दोनों को बचाना। (सीन ट्रान्सफर)

तुर्की दरबार में मीना की शादी और शौकत की ताजपोशी।

नीचे एक प्रसिद्ध क
जिनके आधार से यह अ
प्रदर्शन-स्तर क्या थे।

दि पार

130 कारपोरेशन स्ट्रीट
भारत प्रसिद्ध
श्रीमान् ए० नारायण
द्वारा रचित—
नया नाटक !

हर शनिवार
रात्रि 9 बजे

क

अमर-बलिदान

दल की

डायरेक्टर -पार० मा

की आज्ञा मिली थी, जार रफ़अत ने के
अपने प्रयत्न से उसे बचा लेती है।

दृश्य

डाकेज़न में जाने की इजाज़त लेती है।

दृश्य

जाल और साहस द्वारा बिल्ला बातूम
में इस्लाम कबूल करती है।

अंक

दृश्य

इस्लाम पर मौत और रफ़अत ये दोनों

दृश्य

पुत्र को बीवी और बेटी को अपना
के गमन से दोनों इस्लाम पर पर
गायकोंपया भेजकर नौकरी के सामने
पर;
समय गाज़ी मुस्तफ़ा कमाल पाशा
है।

दृश्य

घर में मुसलमान के समय इस्लामी
ना। (सीन ट्रान्सफर)
कल की नाज़रीनी।

परिशिष्ट-2

प्रचार और विज्ञापन

नीचे एक प्रसिद्ध कम्पनी के दो पैम्फ़लेटों की सत्य-प्रतिलिपियाँ उपस्थित हैं, जिनके आधार से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि पारसी कम्पनियों के प्रदर्शन-स्तर क्या थे।

दि पारसी कारपोरेशन थियेट्रिकल कम्पनी

★ मैडन थियेटर ★

130 कारपोरेशन स्ट्रीट फोन- कलकत्ता 5855

भारत प्रसिद्ध नाट्याचार्य

श्रीमान् पं० नारायणप्रसाद 'बेताब' की प्रातिभ और अनुपम लेखनी द्वारा रचित —

नया नाटक ! नया नाटक !!

हर शनिवार रात्रि 9 बजे	हिन्दी सामाजिक नाटक !	हर रविवार दिन 4½

"हमारी भूल"

कम्पनी के अन्य विख्यात नाटक

अमर-बलिदान	प्रजा की पुकार	हिन्दुस्तानी मजदूर
दिल की प्यास	गाज़ी मुस्तफ़ा कमाल	

डायरेक्टर —नाथ माणिकलाल। मैनेजिंग प्रोप्राइटर—पेसी केरानी।

दि

पारसी कारोनेशन थियेट्रिकल कं०

आज रविवार 30 जनवरी, दिन 4½ बजे शाम

★ राजी ★

मुस्तफ़ा कमाल

जिसमें :

मा० मास्टरलाल।
मा० सूरजराम।
मि० मोहम्मद हुसेन।
मा० अब्बास।
मा० हीरालाल।
मा० अब्बासलाल।
मि० आशीक़ जान।
मि० देवीदयाल।
मि० कावसजी पन्तकी।
मा० वासुदेव शर्मा।
मि० फ़ज़ल डलाली।

विथ

जहान आरा बेगम
(बुलबुले-बिहार)
मिस रेना बाई।
मिस रेचल।
मिस फूलकुमारी।
मिस अल्लरखा।
मिस तारा।
मिस लीला।
मिस जोहरा।

इत्यादि के सुन्दर कार्य हैं
साथ-साथ
गोरी-गोरी मिसों के
मनमोहक नाच-गाने भी होंगे

सेंट्रल थियेटर
136 कारपोरेशन स्ट्रीट

फोन —कलकत्ता 3555

नया नाटक। नई सीन-सीनरी! नई पोशाकें!

नये नाटक की तारीख नोट कर लीजिए— बृहस्पतिवार ता० 3 फरवरी, शाम 5 बजे तारीख महफ़िले इण्डियन ऐमेचियर —आगा हश्र पारसीजी की अनुपम लेखनी द्वारा प्रणीत :

★ ★ शहीदे-वफ़ा ★ ★

जिसमें— कम्पनी के मुख्य 3 अभिनेता और अभिनेत्रियों के भावपूर्ण कार्य हैं :

प्लाट खुला हुआ है- सीट पीछे रिजर्व कराइए :

कम्पनी को बिना सूचना दिए हर प्रकार के परिवर्तन करने का पूर्ण अधिकार है

सोल प्रोपराइटर—
बाबू कन्हैयालाल कानोडिया

परिशिष्ट-1

सहायक पत्र-पत्रिकाएं तथा पुस्तकें

1. पत्र-पत्रिकाएं

दैनिक विश्वमित्र (कलकत्ता), भारत मित्र (कलकत्ता), अजरग पत्रिका (कलकत्ता), हिंदू पंच (कलकत्ता), रंगपंच (श्री नरोत्तम व्यास, कलकत्ता), भविष्य (कलकत्ता), वर्तमान (कलकत्ता), वसुमति (बंगला, कलकत्ता), त्यागभूमि (अखिल साहित्य मण्डल, अजमेर), हाइस्कूल ऑफ इण्डिया (अंग्रेजी, बम्बई), इलस्ट्रेटेड वीकली (अंग्रेजी, बम्बई), रोहिल खंड गजट (उर्दू, बरेली), सरस्वती (मासिक), कान्यकुब्ज (मासिक), देवनागर (मासिक), जासूस (मासिक), हनुमान (मासिक), हिन्दी-बंगवासी, अखिल हिन्दी केसरी, श्री वेंकटेश्वर समाचार, अभ्युदय, गजेंद्र, आलाप (दैनिक, दिल्ली), मधुरी (लखनऊ), धर्मयुग (बम्बई), माधुरी, हिन्दुस्तान, हिन्दू बंगवासी (साप्ताहिक, कलकत्ता), निरुपम (मुंबई, बम्बई), चांद (इलाहाबाद), कायस्थ (कलकत्ता), हमारा (उर्दू, मुरादाबाद), हंस (बनारस), जागरण (साप्ताहिक, बनारस), कलकत्ता समाचार, नटराज (दिल्ली)।

2. पुस्तकें

हिन्दी

1. प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक—डा० जगदीशचंद्र जोशी,
2. देवयानी—श्री नारायणप्रसाद बेताब
3. भारतेन्दु कालीन नाटक साहित्य—डा० गोपीनाथ तिवारी
4. भारतेन्दु ग्रंथावली—श्री ब्रजरत्नदास
5. मेरा नाटक-काल—पं० रूपेश्वर कथावाचक
6. संस्कृत साहित्य का इतिहास—डा० कीथ, अनु० डा० मंगलदेव शास्त्री
7. सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रन्थ—सं० नंददुलारे
8. हमारी नाट्य-परम्परा—श्री श्रीकृष्णदास
9. हरिश्चन्द्र—श्री बाबू शिवनन्दन सहाय
10. हिन्दी साहित्य कोष—प्र० ज्ञान मण्डल, वाराणसी
11. हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास—डा० दशरथ ओझा
12. हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास—डा० सत्यनाथ गुप्त
13. हिन्दी के पौराणिक नाटक—डा० देवर्षि सनाढ्य

14. आधुनिक हिन्दी साहित्य —डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
15. प्राचीन भाषा काव्य-संग्रह —श्री माथुर और डा० ओझा।

गुजराती

16. आर्यो : एक अध्ययन —श्री उमाशंकर जोशी
17. अभियंत्रणी (कहानी) —परिणदनी अहेवाल
18. अभिनयकला —श्री नरसिंहराव मोलानाथ दिवेटिया
19. कविकर्म (लेख)—श्री उमाशंकर जोशी
20. गुजरात : एक परिचय— —कांग्रेस स्मृति ग्रंथ
21. गुजराती नाट्य शताब्दी महोत्सव स्मारक ग्रंथ
22. जवनिका— श्री नगीन दलाल
23. पारसी नाटक मंडलनी नवारीख —डा० छनजीभाई न० पटेल
24. रंगभूमि परिषदनो अहेवाल (1937)
25. रंगभूमि परिषद : (1937-39)
26. संस्कृति (गुजराती, अहमदाबाद),
27. गुजराती नाटक (गुजराती, बम्बई)
28. गुजराती साहित्य परिषद् पत्रिका (गुजराती, बम्बई)
29. रंगभूमि (गुजराती, बम्बई)।

अंग्रेजी

30. ड्रामा— ऐले ड्यूरम
31. यूरोपियन थ्योरीज ऑफ दि ड्रामा —बैरट एच० क्लार्क
32. हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर —वेबर
33. दि आर्ट ऑफ दि ड्रामाटिस्ट—जे० जी० बिस्वाडी
34. दि इण्डियन थियेटर—जी० वी० गुप्ता
35. दि इण्डियन थियेटर—डा० आर० के० वार्लिक
36. दि ओरिजिन ऑफ हिन्दी ड्रामा— डा० एस० एन० घोष
37. दि संस्कृत ड्रामा —डा० ए० बी० कीथ
38. कांत विलास—एडिटेड बाई के० डी० व्यास
39. बम्बई ड्रामा—ए० निकोल
40. मद्रास यूनिवर्सिटी जरनल।

मराठी

41. आत्मकथा —श्री बाल गन्धर्व
42. मराठी रंगभूमि—श्री अप्पाजी विष्णु कुलकर्णी

43. [illegible] माहिमाची [illegible] — [illegible] दुर्गाबाई [illegible]।

बंगला

44. [illegible] — श्री सुकुमार सेन

उर्दू

45. [illegible] और उनके ड्रामे — डॉ० [illegible]।

3. महायक नाटक

खूबसूरत बला (उर्दू), फूलभलैया (उर्दू), [illegible] (उर्दू), [illegible] की [illegible] (उर्दू), [illegible], [illegible], अबला की [illegible], [illegible], [illegible] गुरुदास, [illegible] का [illegible], [illegible] बालक, [illegible] [illegible] तुर्की [illegible] प्रेम की [illegible], [illegible] का [illegible] अनन्तकुमार, [illegible], [illegible], [illegible],

पारिभाषिक शब्द-सूची

अध्ययन	study
अभिनय	acting
अभिनेत्री	actress
अभिव्यक्ति	expression
अश्लीलता	obscenity
अस्तित्व	existence
आधारभूत	fundamental
आधुनिक	modern
आन्दोलन	movement
आमंत्रित	invited
आर्थिक	economic
उद्घाटन	inauguration
उद्देश्य	aim, object
उद्धरण	quotation
उपकथा	episode
उपलब्धि	achievement
उल्लेख	mention
ऐतिहासिक	historical
कथानक	plot
कथा-वस्तु	plot
कलात्मक	artistic
कृत्रिमता	artificiality
चरित्र-चित्रण	characterisation
तथ्य	fact
तथाकथित	so-called
तत्वावधान	auspices
त्रासदी	tragedy
वैधानिक	legeral
दशक	decade
दस्तावेज़	document
दायित्व	responsibility
दुर्भिक्ष	famine
धार्मिक	religious
ध्वनि-प्रभाव	sound effect
निर्देशन	direction
नैतिक	moral
प्रक्रिया	process
प्रचार	publicity
प्रतिनिधि	representative
प्रतिभा	genius
प्रतीकात्मक	symbolic
प्रत्यक्ष	direct
प्रशिक्षण	training
प्रस्तुतीकरण	presentation
पृष्ठभूमि	background
परम्परा	tradition
परिस्थितियाँ	circumstances
पाण्डुलिपि	manuscript
पुनर्निर्माण	reconstruction
भावात्मक	emotional
भूमिका	preface, prologue
मंच-विधान	stage setting
मनोरंजन	entertainment
महत्व	importance
माध्यम	medium
मूल्यांकन	evaluation, assessment
मौलिक	original
योगदान	contribution
रंगमंच	stage
राष्ट्रीयता	nationa
लक्ष्य	
लोकप्रिय	popu
वातावरण	atmosph
विज्ञापन	advertisem
व्यक्तित्व	personal
व्यावसायिक	commer
शताब्दी	cent
शास्त्रीय	class
शैली	s
शौकिया	amat
संगीत	mu

शब्द-सूची

[illegible]	responsibility
[illegible]	feminine
[illegible]	religious
[illegible] प्रभाव	sound effect
[illegible]	direction
[illegible]	manual
[illegible]	process
[illegible]	publicity
[illegible]	representative
[illegible]	genius
[illegible]	symbolic
[illegible]	direct
[illegible]	training
[illegible]	presentation
[illegible]	background
[illegible]	tradition
[illegible]	circumstances
[illegible]	manuscript
[illegible]	rehearsal
[illegible]	emotional
[illegible]	produce, role
[illegible]	stage setting
[illegible]	entertainment
	importance
[illegible]	medium
[illegible]	evaluation, assessment
[illegible]	original
[illegible]	contribution
	stage

राष्ट्रीयता	nationality
लक्ष्य	aim
लोकप्रिय	popular
वातावरण	atmosphere
विज्ञापन	advertisement
व्यक्तित्व	personality
व्यावसायिक	commercial
शताब्दी	century
शास्त्रीय	classical
शैली	style
शौकिया	amateur
संगीत	music

संदर्भ	reference
संरक्षण	patronage
संवाद	dialogue
संस्कृति	culture
संस्मरण	memoirs
सामाजिक	social
साहित्यिक	literary
सुविधाजनक	convenient
स्रोत	source
स्वगत कथन / स्वगत भाषण	soliloquy
हास्य-अभिनेता	comedian

○ ○ ○